

कारण नहीं करा दिया गया पर जब कारणों की तह में गये सहज ही कारण समझ में आ गया। वास्तविकता यह है कि इस ग्रन्थ की प्रतियां बड़ी दुर्लभ हैं और जो हैं भी वे इतनी अशुद्ध और अस्पष्ट हैं कि उसका हिन्दी अनुवाद करना तो दूर, शुद्ध स्वरूप में लिखना भी बड़ा जटिल और दुस्साध्य कार्य है।

जैन इतिहास और जैनागमों के उद्भट विद्वान् पंन्यास कल्याण विजयजी महाराज साहब ने बहुत वर्षों पहले अपने भण्डार के लिए इस ग्रन्थ की एक प्राचीन ताड़पत्रीय प्रति से लिखित प्रति अपने गुरुदेव से प्राप्त की और उसमें संशोधन करने का तथा उसे प्रकाशित करवाने का प्रयास किया। अन्त्याय अत्यावश्यक कार्यों में व्यस्त रहने के कारण वे उस कार्य को सम्पन्न न कर सके और इस प्रकार इस ग्रन्थ का प्रकाशन स्थगित ही रहा।

इसी वर्ष जैन आगम-साहित्य तथा प्राकृत एवं संस्कृत भादि भारतीय प्राच्य भाषाओं के विद्वान् ठाकुर गजसिंहजी राठोड़ का जैन इतिहास विषयक खोज हेतु पंन्यासप्रवर श्री कल्याणविजयजी महाराज साहब की सेवा में णालीर आना हुआ। श्री केसरविजय जैन ग्रन्थागार की हस्तलिखित ऐतिहासिक प्रतिपों का अवगाहन करते समय ठाकुर साहब की शोधप्रधान दृष्टि तिरयो-भायी पद्मनय की उक्त हस्तलिखित प्रति पर पड़ी और उन्होंने पं० कल्याण-विजयजी महाराज के निर्देश एवं मार्ग दर्शन में इस ग्रन्थ का विशुद्ध रूप में पुनर्लेखन, संस्कृत छाया और हिन्दी अनुवाद करना मई, १९७५ में प्रारम्भ किया। इस ग्रंथ की अन्य प्रतियों के अभाव में पं० श्री कल्याणविजयजी और ठाकुर साहब को इस ग्रंथ के अशुद्ध पाठों को शुद्ध करने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। ठाकुर साहब की प्रार्थना पर स्वानुवासी परभारा के भास्करजी महाराज साहब ने ठाकुर साहब द्वारा लिखित इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि का अत्यन्त ही ध्यानपूर्वक रूप में लिखा और उसे

यह ग्रंथ प्रेम में छपना प्रारम्भ हो गया था उनके पश्चात् स्वनामधन्य स्व० बाबाय्ये श्री राजेन्द्रसूरीजी महाराज के झाहीर नगर स्थित ज्ञान भण्डार में इस ग्रंथ की एक प्रति प्राचीन प्रति मिली । झाहीर भण्डार के व्यवस्थापकों के सौजन्य से श्री राठोड़ को उस प्रति की फोटोस्टेट कापी करवाने की सुविधा मिली और उस फोटो कापी की सहायता से इस ग्रन्थ के कतिपय पाठों को मुद्रण स्वल्प प्रमान करने में बड़ी सुविधा हुई । इसके लिए हम अभिधानराजेन्द्र नामक विमान संस्था के रचनाकार स्व० श्री राजेन्द्रसूरी जी के झाहीर स्थित ग्रंथालय के व्यवस्थापकों के प्रति भी आभार प्रकट करते हैं ।

हमारे यह प्रांतिरिक्त उत्कृष्ट अभिनाया की कि इस ग्रंथ को प्रकाश में लाने वाले पंन्यासप्रवर श्री कल्याणविजयजी महाराज माह्व के कर-कर्मनों में इस ग्रंथ की मुद्रित प्रति भी प्राप्तिसौत्र समर्पित करें पर कराल काल ने हमारी मधु पानाओं-अभिलाषाओं को कठोर पश्चादात कर कुचल डाला । केवल जैन जगत् ही नहीं, बलित् इतिहास शिक्ति के प्रकाशमान प्रवण्ड मातृण्ड पंन्यासप्रवर श्री कल्याणविजयजी महाराज दृढनीला समाप्त कर स्वमंश्य हो गये । हमें केवल इतना ही संतोष है कि इस ग्रन्थ के कतिपय मुद्रित फार्म उनके कर-कर्मनों में उनके स्वमंश्य होने में एक मास पूर्व पहुँच गये थे और उन्होंने इस ग्रन्थ के फार्म देखकर प्रांतिरिक्त सन्तोष अभिव्यक्त किया था ।

इस ग्रंथना प्रकाशन, प्रजनेर के प्रविष्टता और कर्मचारी वर्ग के प्रति भी अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं कि उन्होंने इस ग्रन्थ के प्राकृत मूल पाठ, संस्कृत छाया को भी यथाशक्ति मुद्रण रूप में मुद्रित करने में पूर्ण परिश्रम किया ।

सदस्यगण,

श्री श्वेताम्बर जैन (चार मुर्ति) संघ, जालौर
एवं

श्री श्वेताम्बर जैन (चार मुर्ति) संघ तारातपड़ ।

जिला पाली

स्व. श्री ज्योत्समलाली बालगोता के पुत्रुद :-

सर्व श्री अक्षयधरजी और माणोमानजी

समित्तुमारजी और मरु-रुमारजी

मोठभाड़ा जिला जालौर

साइन्सरी भण्डार को देगा । वे गुरुदेव के अगाध ज्ञान एवं गरिमापूर्ण बहुमुखी प्रतिभा से अत्यन्त प्रभावित हुए । उम समय जो उनके मुख से उनके हृदय के जो उद्गार निकले, उनसे पन्थासप्रवर कल्याणविजय जी म० सा० की अतिमानव महानता का महज ही आभास ही जाता है । अतः प्रति संशय में उनके उन उद्गारों का उल्लेख किया जा है । उन विद्वान ने कहा—

“महाभारत के मान्ति पर्व में एक बड़ा ही हृदयग्राही उल्लेख उपलब्ध होता है । भीष्म वितामह कुरुक्षेत्र के रणोत्तम में शरणाथ पर लेटे हुए हैं । शिखण्डी को प्राणों की अर्जुन द्वारा किये हुए गांठीय धनुष के शरप्रहारों से संसार के इस अप्रतिम योद्धा के वृष्टभाग का रोम-रोम छननी के छेदों के समान बिधा हुआ है । देह के विजरे में इतने गहरे इतने अघिक मर्मन्तिक प्रण गांठीय के अमोघ बाणों में हो रहे हैं कि प्राण पर्येष्ट को उम विजरे में से उड़ जाने के लिए कोई किंचित्मात्र भी बाधा नहीं है । पर मानवहृत्पारो भीष्म इच्छामृत्यु का परम करने के लिए वृत्तसंकल्प है और मूर्ध के अक्षिपावन में जाने की प्रतीक्षा कर रहे हैं ।

हृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा—ओन्तेय ! संसार का ज्ञानमूर्ध अस्त होता ही पाहता है । महान् रणयोगी भीष्म मूर्ध के उत्तरायण में प्राते ही देह त्याग देगे । तुम्हें संसार के किसी भी विषय का; धर्म के मर्म का अथवा विमुक्ति का ज्ञान प्राप्त करना हो तो उनके चरणों में बैठ कर मूर्ध के उत्तरायण में जाने से पहले-पहले, यह ज्ञान प्राप्त कर सक्ते हो । उम नर-येष्ट भीष्म के दिवंगत होने ही विनिष्ट ज्ञान का मूर्ध अस्त हो जायगा—

तस्मिन् हि पुरवध्याये, कर्मभिर्यं दिवंगते ।

अधिष्ठति मही पार्थ, मष्टकत्रैव जयंती ॥२०

तद् युधिष्ठिर गणेशं, भीष्मं भीमरराक्रमम् ।

अभितमनोवर्तमान, वृकथं यदी मनीषतम् ॥२१

तस्मिन्मन्ममिहे भीष्मे, शीरयात्ता धुरंधरे ।

ज्ञानात्प्राप्त ममिधमिति, शरमाशशां शोभयाम्बहम् ॥२३

—शांतिपर्व, अध्याय ५६

भीष्म की महाभारत में योगेन्द्र हृष्ण ने ज्ञान का पूर्णपरम अद्वय दिवंगति बताया है, उनी प्रकार भाव है मूर्ध में से महाभारत पन्थासप्रवर कल्याणविजय की विविध दिवंगों के शरणाथ मानमूर्ध है । अंत विद्वान् ही

जन्मभूमि का त्याग घोर उधर एक मात्र यात्रय माता की करणता ।
 वि. सं. १९१७ में प्रापकी माता कदीबाई भी अपने मबोध बच्चों को
 समहाय छोड़ परलोकवासिनी बन गई । १३ वर्ष की छोटी वय में ही हमारे
 चरित्रनायक को किस प्रकार की भीषण घापत्तियाँ सहनी पड़ीं, इसका
 अनुमान प्रत्येक वाचक सहज ही लगा सकता है । पर वस्तुतः विपत्ति ही
 जोरों घोर विचारकों को जन्म देती है । एक राजस्थानी कवि ने कहा भी
 है—
 संग जल जाये तारियाँ, घर नर जाये कहु ।
 घर बालक मूना रम्य, टण घर में रजवट्ट ।।

हमारे चरित्रनायक उस समय के तोलाराम ने भी घापत्तियों से
 परबराबर ध्रुवं नहीं छोड़ा । उतर पड़े वे कर्मक्षेत्र में । माता की मृत्यु के
 पश्चात् आपने देन्दर के सेठ हंमराजजी प्रेमराज जा पोरवाल के यहाँ
 ब्राजीविबोपार्जन हेतु कार्य करना प्रारम्भ किया । बारह-तेरह वर्ष की आयु का
 बालक तोलाराम खेप्टो के घर के काम में जुझने लगा । घर के छोटे बच्चों
 को रचना, गाय धीर भँस को चारा, बाटा नीरना, गाय भँस का दूध
 निकालना और अधिमग्न करना, ये बालक तोलाराम के जिये मुख्य काम
 थे । इनके प्रतिष्ठित घर के घोर भी घाववृक कार्यों को करने में हमारे
 चरित्रनायक ने किसी प्रकार की घानाधानी नहीं की । “सब को काम प्रिय
 है न कि काम (मुन्दर नीरवर्ण)” इस बहुमत के अनुसार बालक तोलाराम
 ने पर भर के लोगों का मन जीत लिया । सभी तोलाराम को अपने घर का
 ही एक सदस्य समझने लगे ।

घानापक के काम घर में बालकों को पढ़ते देवपर तोलाराम भी उनके
 पास बैठ जाता । तीप्रबुद्धि तोलाराम छोड़े ही दिनों में प्रारम्भिक सिखना
 पढ़ना घोर करना सीख गया ।

जिम पर से बालक तोलाराम रह रहा था वह घर जैनधर्मविमन्त्री था ।
 विविध छेपों से विचारना करते हुए जैन साधु-शास्त्रियों का देन्दर में घाना-
 धाना रहता ही था । तोलाराम पर निहातिरेक से घर के लोग जहुषा साधु-
 धर्मियों को बालक तोलाराम के हाथ से ही साहान-धानी घादि सहारते थे ।

संयोग से कीर्तिकण्ठजी महाराज का देन्दर से बधार्थक हुआ । उनके
 साथ मुन्नाबकण्ठजी नामक एक पैरासी से जो घाज भी महान् तोलारामवासी
 कीर्तिकण्ठजी के नाम से महाकला के रूप में विराजमान है । पैरासी
 मुन्नाबकण्ठजी को भी कीर्तिकण्ठजी महाराज के पास लड़े हुए देख कर बालक

तोलाराम के अन्तर्मन में भी अध्ययन और ज्ञानार्जन की भूछ बढ़े ही तीव्र वेग से जागृत हुई। बालक तोलाराम ने श्रेष्ठीपरिवार के समक्ष अपनी आन्तरिक अभिलाषा प्रकट की। उदार श्रेष्ठी-परिवार ने अपना महोपाय समझ तोलाराम को श्रमणश्रेष्ठ कान्तिचन्द्रजी महाराज की सेवा में रहने की अनुमति सहर्ष दे दी।

बालक तोलाराम वैरागी गुलाबचन्द्र के साथ-साथ कान्तिचन्द्र जी महाराज से शिक्षा ग्रहण करने लगा। अहर्निश आत्मार्थी साधुओं के सम्पर्क में रहने के फलस्वरूप बालक तोलाराम भी वैराग्य के गहरे रंग में रंग गया। अनेक वर्षों तक वैरागी शिक्षार्थी के रूप में मुनि कान्तिचन्द्रजी के पास शास्त्रों का और लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् आशुकवि नित्यानन्दजी श्रीमाली के पास सारस्वतचन्द्रिका, सिद्धान्त कौमुदी, सिद्ध हेम शब्दानुशासन, धर्मशर्माभ्युदय कादम्बरी, रघुवंश, श्रुतबोध, बृहद्दर्त्नाकर एवं ज्योतिष, न्याय आदि विषयों के अनेक ग्रन्थों का मार्मिक अध्ययन किया।

विक्रम सं० १६६४ में वैशाख शुक्ला ६ के दिन सिंह लग्न में ऐतिहासिक नगर जालोर में महामुनि केसरविजयजी महाराज के पास हमारे चरित्रनायक वैरागी तोलाराम पुरोहित ने २० वर्ष की युवा वय में अपने साथी वैरागी गुलाबचन्द्र के साथ निर्ग्रन्थ श्रमण धर्म की दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा के समय केसरविजयजी महाराज ने तोलाराम का नाम कल्याणविजय और गुलाबचन्द्र का नाम सौभाग्यविजय रखा।

श्रमण धर्म में दीक्षित होने के पश्चात् मुनि कल्याणविजयजी ने प्रमाण नयतत्वालोक, स्याद्वादमंजरी, रत्नाकरावतारिका आदि नेक न्यायशास्त्रों, आगमों, नियुक्तियों, चूर्णियों, महाभाष्यों, ज्योतिषविद्या के ग्रन्थों और इतिहास ग्रन्थों का बड़ी ही सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन किया।

मुनि कल्याणविजयजी के अध्ययन की एक बहुत बड़ी विशेषता यह रही कि विविध विषयों के ग्रन्थों का अध्ययन करते समय जो भी विशिष्ट, अश्रुतपूर्व और किसी भी दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात किसी भी ग्रन्थ में दृष्टिगोचर हो गई तो उसे उसी समय डायरी में लिख लिया। सरस्वती के इस महाव् उपासक सन्त ने जीवन भर अध्ययन करते समय यही क्रम जारी रखा। उनके इस अथक परिश्रम का ही फल है कि उनके हाथ की लिखी हुई सैकड़ों डायरियाँ, नोटबुकें, रजिस्टर, लेख आदि आज भी उनके ज्ञानमण्डार में विद्यमान हैं, जो अनेक विद्वानों के अभिमत के अनुसार विविध

की तीव्र
प्रती
मान
रहने

[घो]

विद्वानों के सोपानियों के लिए बड़े ही उपयोगी और मार्गदर्शक हो सकते हैं।

दस वर्षों के अपने साधनापूर्ण जीवन में इस महासत ने भारत के गुरुरस्य विभिन्न शोषों में भूम-भूम कर नगर नगर, ग्राम-ग्राम घोर घर-घर में भगवान् महावीर का दिव्य संदेश पहुंचाया। अपने प्रमोद्य उपदेशों से समाज में स्वास्त बृरुद्धियों और अज्ञान की दूर करते हुए, अपने लेशों घोर प्रश्नों से भावों की सदा के लिए सत्य का दिमागिर्देश करते हुए अपना स्वयं का घोर पर का जो बल्यारण कर अपने बल्यारणविजय नाम को सायंक किया।

विश्रम सं० १९६४ में मार्गशीर्ष शुक्ला ११ के दिन महामहाबाद में धापकी तथा मुनि सोमाय्यविजयजी महाराज की धापके गुरु एव स्य द्वारा गणित्य प्रदान किया गया। उसी दिन हमारे चरित्रनाटक को गणित्य के साथ पर्यायपद भी प्रदान किया गया।

पर्यायपद ग्रहण करने से पूर्व और पश्चात् धापने स्थान-स्थान पर अनेक मी-ठों की प्रतिष्ठाएं कराईं। जालौर में धापकी प्रभावपूर्ण प्रेरणा से जालौर में मन्दीर तीर्थ की स्थापना एवं समाज बल्यारण के विविध कार्यों के लिए एक अति विशाल भूयस्य खरीदा गया। धापकी प्रेरणा में ही संप ने उन भूयस्य में धापके अमूल्य निदेशन में एक अति मध्य घोर विशाल मन्दीर तीर्थ का निर्माण करवाया, जो भारतवर्ष में सबसे बड़ा मन्दीर तीर्थ है। इस मन्दीर तीर्थ का निर्माण बार्ध वर्षों तक चलता रहा और अंततः मन्दीरों वि. सं. २००५ की माघ शुक्ला ६ के दिन धारधो के करकमलों में ही इन महान् तीर्थों की प्रतिष्ठा करवाई गई। प्रतिष्ठा के समय इस तीर्थ में ५०० कुटियों की प्रतिष्ठा करवाई गई।

इसी भूयस्य में समाज के लोगों की सुविधा के लिए तथा इन तीर्थ की यात्रा करने हेतु धापे हुए धापियों की सुविधा के लिए एक विशाल मन्दीरालय का निर्माण करवाया गया। इसी भूयस्य में सतिष्ठा के प्रसार प्रसार के लिए सर्वप्रथम एक मास शाकाहार का निर्माण करवाया जो सभी प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की गईं थीं।

इस सब विशाल भूयस्य शुक्ल मासवाह राज्य के प्रजासमल महा-राजा की उभेतिजी महाराज महाराज के रूप-प्रसाद। बल्यारण की सुविधा-इतनी की महासत ही प्राप्त हुआ था।

[श्री]

वाणी की ही तरह पंन्यासप्रवर श्री कल्याणविजयजी महाराज की लेखनी में भी बड़ा चमत्कार और अद्भुत प्रभाव था। सच्ची बात को सघोक्तिक रूप में डके की चोट के साथ कहना और लिखना यह उनकी जन्मजात विशेषता थी। सच्ची बात को समाज के समक्ष रखने में उन्होंने अपने जीवन में कभी किसी से किंचित्मात्र भी भय का अनुभव नहीं किया।

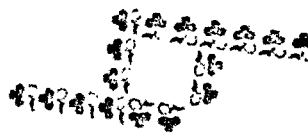
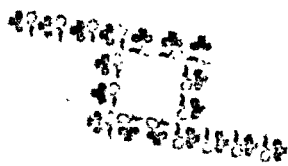
एक अजैन कुल में उत्पन्न हुए शिशु ने अपने दृढ़ संकल्पों एवं अक्षयव्रतों के बल पर कालान्तर में एक विशाल कलत्र के समान विराट् स्वरूप धारण किया, धर्मप्रेमी मानव समाज को अपने अमृतोपम त्रिविधता से संतप्त मानव समाज को और विशेषतः धर्मप्रेमी समाज को शीतल सघन छाया से शान्ति और उद्देशामृतफलों से तृप्ति प्रदान की और इस प्रकार ६८ वर्ष तक समाज को शान्ति पहुंचाने के अनन्तर इस महासन्त ने विक्रम सं० २०३२ आषाढ शुक्ला १३ के दिन प्रातःकाल ६.१५ बजे ६८ वर्ष की आयु में इहलोक समाप्त कर स्वर्गारोहण किया। ज्ञान का सूर्य अस्त हो गया।

आज हम महासन्त का भौतिक शरीर हमारे समक्ष नहीं है पर इनके द्वारा किये गये समाजहित, संवहित और जनकल्याण के कार्य शताब्दियों तक भावी पीढ़ियों को मार्गदर्शन कराते हुए प्रेरणा देते रहेंगे।

कोटि-कोटि प्रणाम है उस महात्मा विभूति को।

● मुनि मुक्तिविजय





सम्पादकीय

'वित्तोपार्जो पदम्भा'—नामक इस वैज्ञानिक एवं इतिहास ग्रन्थ के सम्पादन, छाया एवं विन्दी समुदाय करने की हमें वर्ष (१९७५) के प्रथम परमा में सम्मान श्री कल्याणविजयजी महाराज माह्य ने मुझे प्रेरणा की। मैंने उन महामुन्य की आज्ञा निर्देशार्थ कर उनके द्वारा प्रदर्शित प्रति के आधार पर अपने लिए प्रति सम्पादन हम कार्य की वर्ष १९७५ में प्रारम्भ किया। प्रति बड़ी ही सज्ज की। अनेक स्थलों की देखकर ही प्रयत्न निराना भी हुई। दुर्भाग्य से जो वहाँ कि हम प्रहार का सम्पादन कार्य में सम्पन्न कर भी सम्पूर्ण सम्पन्न नहीं। पर जिन कार्य की एक बार हाथ में ले लिया उसे सम्पूर्ण छोड़ने की आवश्यकता में इच्छित नहीं था।

वही तो मैं इस ऐतिहासिक ग्रन्थ में पूर्णतः पररिचित नहीं था। इसके अनेक उदाहरण अनेक जगहों पर इतिहास विपन्न स्थलों में क्यों में बदला पा रहा था। वर्ष १९७१-७२ में सर्वोच्च पठित समुदाय मालवविद्या के श्रीमान् के मुने 'कदाकाली' के नाम-नाम विन्दीनाली पदम्भा का अभिन्न प्रदर्शन की जगह ही इच्छितकर सम्पूर्ण सम्पादन में बदले की किया था। इस दोनी बदली के सम्पादन की हमें ही हम सम्पन्न कार्य में पररिचित हुई की। विन्दीनाली पदम्भा की जिन जगहों पर भारतीय इतिहास में सम्पादन करने वाली इच्छित सम्पादन करने का अनुभव हो ही है।

अवस्थाओं में कतिपय ग्रहोराश्रों तक चिन्तन का विषय भी रह चुकी थीं। विद्यार्थी जीवन में कुछ प्रागमों का अध्ययन करते समय अन्तःस्थल में एक तीव्र उत्कण्ठा उत्पन्न हुई थी कि सीमाय से यदि कभी सुषवसर मिला तो प्रागमों का सुन्दर अनुवाद और विवेचन करूँगा। चालीस वर्षों के लम्बे व्यवधान के पश्चात् उस उत्कण्ठा के अनुरूप अवसर मिला है तो इस अवसर को निराशा के घने कोहरे में खो देना उचित नहीं इस विचार से मनोबल जागृत हुआ और इस कार्य को पूर्ण करने का दृढ़ संकल्प किया। उत्कट चिन्तन और अहर्निश प्रयास से उत्तरोत्तर सफलताएँ मिलती गईं, उत्साह बढ़ता गया। अन्ततोगत्वा ढाई मास के कठोर बौद्धिक परिश्रम से ग्रन्थ की मूल गाथाओं, संस्कृत छाया और हिन्दी अनुवाद का आलेखन पूरा हुआ। मेरे आराध्य गुरुदेव आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज साहब ने अपनी अत्यधिक व्यस्त दैनन्दिनी में से पर्याप्त समय निकाल कर इस ग्रन्थ के पाठों में अपेक्षित संशोधन किया। वास्तविकता तो यह है कि आचार्य श्री की असीम अनुकम्पा से ही मैं इस कार्य को कर सका हूँ।

इस ग्रन्थ की ८०० गाथाओं की छाया और अनुवाद कर लेने के पश्चात् श्री राजेन्द्रसूरिजी महाराज के आह्वार भण्डार से इस ग्रन्थ की एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति भी मिल गई। जोधपुर में २५-६-७५ को इस प्रति की फोटोस्टेट कापियाँ तैयार करवाईं। यद्यपि यह प्रति भी अशुद्धियों से भरी थी पर दो प्रतियाँ हो जाने के कारण पाठों के मिलान और शुद्धीकरण में पर्याप्त सहायता मिली।

इस ग्रन्थ के संपादन के लिये इसकी अनेक प्रतियों की आवश्यकता के साथ-साथ एतद्विषयक शोध के लिये गहन अध्ययन, विपुल ऐतिहासिक सामग्री, कठोर श्रम और पर्याप्त समय की आवश्यकता थी और है। क्योंकि इसकी अनेक गाथाएँ अव्यवस्थित और अत्यधिक अशुद्ध होने के साथ साथ समवायांग आदि प्रागमों में और अन्यान्य ग्रन्थों में भी थोड़े परिवर्तित स्वरूप में उपलब्ध होती हैं। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के मूल तथा टीकागत अनेक शब्द और वाक्यांश भी इसकी गाथाओं में यथावत् स्वरूप में दृष्टिगोचर होते हैं। ये सब तथ्य इस ग्रन्थ के रचनाकार के समय आदि के सम्बन्ध में निर्णय करने के लिये बड़े सहायक हो सकते हैं। इन सब गहराइयों में उतरने के लिये आवश्यक अध्ययन समता, समय, सामग्री आदि साधनों का मैं अपने आप में अभाव अनुभव करता हूँ।

इस ग्रन्थ के विहंगमावलीकन से ही प्रत्येक पाठक को विश्वास हो जाया कि यह श्वेताम्बर परम्परा का ही ग्रंथ है न कि किसी अन्य परम्परा का। यह श्वेताम्बर परम्परा का ही ग्रंथ है, इस तथ्य को सिद्ध करने वाले प्रमाण इस ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर एक नहीं घनेक भरे पड़े हैं। उदाहरण के तौर पर हृण्दायसपिण्णो काल में होने वाले १० प्राश्नियों का इनमें जो गाथा श्वेताम्बर परम्परा के मान्य ग्रन्थों में उल्लेख करने वाली उमी स्वर में इस ग्रन्थ में विद्यमान है। प्रागम माहित्य के पक्षेताओं में से प्राज पश्चिकां को यही धारणा है कि दश प्राश्न्यो केवन जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में प्रवर्तमान सप्तपिण्णो काल की चौथीवी के काल में ही हुए। पर प्रस्तुत ग्रन्थ तिरयोनामो पद्दन्य में स्पष्ट उल्लेख है कि ये दश प्राश्न्यो प्रवर्तमान हृण्दायसपिण्णो काल में ढाई द्वीप के ५ भरत क्षीर पीन ऐरवत—इन दोनों क्षेत्रों में हुई दशो ही चौथीवी के काल में हुए क्षीर उसके परिणामस्वरूप जिस समय भरत क्षेत्र में १६वें तीर्थंकर भगवान् मलिननाथ रत्रोरूप में उत्पन्न हुए उसी समय अन्य ४ भरत क्षीर ५ ऐरवत क्षेत्रों में वे भी १६वें तीर्थंकर स्त्री स्वर में ही उत्पन्न हुए।

जहाँ तक इस ग्रन्थ के प्रमाणकाल का प्रश्न है—इस सुमस्त ग्रन्थ में प्रतिपादित तथ्यों का महार्द्र के विस्तार नवन करने पर भी इस प्रश्न का कोई स्पष्ट प्रामाणिक संधया सर्वमान्य उत्तर नहीं मिलता।

इस ग्रन्थ की गाथा संख्या ८७१ में "निष्वातिपय नियवादे" यह धम्मिज परवत् क्षीर ८७२ क्षीर ८७३ में क्रमशः "जो निदवायं चापति" तथा "जो निदवायं निरंति" इन दो प्रथम परवत्तों की देखकर घनेक विद्वान् इस ग्रन्थ के प्रलेखा का समय अनुमानित करने का प्रयास करते पाते हैं पर वेरी स्वर बुद्धि के अनुसार इस प्रकार की घटकनबाजी से कोई मुनिचित्त सर्वमान्य निर्णय संधया निकाले नहीं निकलने वाला है जिस "निदवाय" (संग्राह) स्वर के साधार पर अनुमान ही दोड़ लगाई जा रही है यह स्वयं ही विवक्षित है। मुनिचित्त स्वर में प्रमाणपुरस्सर पाय कोई विशुन् यह नहीं कह सकता कि प्रसूत समय में "संग्राह" स्वर का जन्म जैन शास्त्र के हूपा शब्द संग्राह स्वर के प्रादुर्भाव का समय ही घने-घार में निश्चित है भी उनके साधार पर घन स्वर का समय दिन पक्ष निश्चित जा सकता है। धम्मिचित्त क्षीर उचितचित्त स्वर की साधार मान कर किसी बात

इन सब अभावों की स्थिति में भी मैंने अपनी स्वल्प बुद्धि के अनुसार इस ग्रन्थ को सर्वांग सुन्दर और विद्वद्भोग्य बनाने का पूरी लगन के साथ प्रयास किया है। मैं इस कार्य में कितना सफल हो सका हूँ, इसका निर्णय तो पाठकों पर ही निर्भर करता है।

इतिहास में थोड़ी अभिरुचि होने के कारण विगत अनेक वर्षों से इस ग्रन्थ को उपलब्ध करने और पढ़ने की तीव्र उत्कण्ठा थी। मैंने यह भी अनुभव किया कि इतिहास के अनेक विद्वान्, कतिपय शोधार्थी और इतिहास में थोड़ी बहुत भी अभिरुचि रखने वाले विज्ञ इस ग्रन्थ को पढ़ने के लिये लालायित रहे हैं। पर अद्यावधि इसका प्रकाशन न होने के कारण उनकी इसे पढ़ने ही नहीं देखने तक भी उत्कण्ठा अपूर्णा ही रही है। पिछले चार पांच वर्षों से इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में कतिपय विद्वानों के ये विचार भी पढ़ने को मिले कि यह ग्रन्थ न श्वेताम्बर परम्परा का है और न दिगम्बर परम्परा का ही, यह तो यापनीय परम्परा के समान किसी अन्य विलुप्त परम्परा का ग्रन्थ है। इतिहास-प्रेमियों की इसे पढ़ने की जिज्ञासा को शान्त करने की इच्छा के साथ साथ यह ग्रन्थ किसी अन्य विलुप्त परम्परा का ग्रन्थ है, इस भ्रान्ति को दूर करने की अदृष्ट प्रेरणा भी न मालूम वर्षों मेरे अन्तःकरण में स्फुरित हुई और उत्तरोत्तर बलवती होती ही गई। यह भी एक बहुत बड़ा कारण है कि अपनी सामर्थ्य से बाहर के इस ग्रन्थ के सम्पादन जैसे गुस्तर भार को अपने सिर पर वहन करने का मैंने साहस कर लिया।

इक्ष्वाकुवंश पर महाकाव्य का प्रणयन करते हुए महाकवि कालिदास जैसे समर्थ विद्वान् ने भी निम्नलिखित श्लोकाद्ध द्वारा उस महान् कार्य के निष्पादन के लिये अपने आपको अल्पभ्रति बताते हुए कहा है:—

‘वत्र सूर्यप्रभवो वंश, वत्र मे अल्पविषया मतिः।’

तो ऐसी दशा में अनादि अनन्त जिनेन्द्रवंश और उस जिनेन्द्र वंश द्वारा प्रतिपादित धर्मतीर्थ के प्रवाहों का विवरण प्रस्तुत करने वाले इस ग्रन्थराज का सम्पादन प्रयास मेरे जैसे स्वल्पातिस्वल्पज्ञ अकिञ्चन व्यक्ति के लिये कितना हास्यास्पद है, इस विचारमात्र से ही किसी अन्य की तो क्या कहूँ मैं स्वयं भी अपने आप पर हंस पड़ता हूँ। पर जो कार्य कर रहा हूँ वह अति श्रेष्ठ है, अति पुनीत है और कर्मकलुष को ध्वस्त करने वाला है, इस विचार से पुनः पापवस्तु और प्रकृतिस्थ हो जाता हूँ।

के किमी तथ्य के निर्णय पर पहुँचने का प्रयास किया जाय तो वह निर्णय भी पनिसीति, अनिश्चित, अप्रामाणिक और असुविधापूर्ण ही होगा।

मैंने भी अपने मासुष्य के अनुसार इस ग्रन्थ के प्रयोग का समय सुनिश्चित करने का पर्याप्त प्रयास किया है। इस ग्रन्थ को एक एक भाषा का पर्यायवाची करने में समय मेरी दृष्टि अनेक ऐसी भाषाओं पर पड़ी, जिन्हें मैंने इस समस्या के समाधान करने में प्राथमिक स्थान प्रदायन करने की बात सोची। उनमें से प्रायः इस प्रकार है—

भगवं बह पुष्पाद्यो, मट्ठाद्यो उपरिमाई चत्वारि ।
एवं जहा विदितं, इत्यहं सम्भावतो कहिं ॥७०३॥

प्रथम—“भगवन् ! ऊपर के (ग्यारहवाँ, बारहवाँ, तीरहवाँ और चौदहवाँ, ये चार) चार पूर्व किसे प्रकार मट्ट ही गये ? इन सम्बन्ध में प्रायः अपने विशिष्ट ज्ञान के द्वारा जैसा देखा—जाना है, यह क्या कर सकते बताइये।”

यह भाषा इस ग्रन्थ के रचनाकाल के सम्बन्ध में किमी निर्णय पर पहुँचने के लिये सामर्थ्य सिद्ध ही सकती है। इस भाषा में प्रथमवर्ती श्लोकवाची श्रमणों के सर्वसाधारण निष्ठात करने पुर से केवल अष्टिम चार (ग्यारहवें, बारहवें, तीरहवें और चौदहवें) पूर्वों के मट्ट होने का कारण ही प्रकृत है। दूसरे यह सिद्ध होता है कि इस ग्रन्थ में उल्लिखित समाह्वयनामा प्रथमवर्ती श्रमणों के समय में एक पूर्व समाह्वय पूर्वसंख्या विद्यमान थे। यदि इन पूर्वों में से पाँच, चार, तीन, दो एकवा एक भी पूर्व उनके समय में विद्यमान नहीं होता तो यह चार पूर्वों के मट्ट होने का कारण ब्रह्मण के स्थान पर भी, एक, ग्यारह, बारह, छठवा १३ पूर्वों के मट्ट होने का कारण हममें निश्चित करने असाध्यनामा पुर में प्रकृत। दूसरे सम्बन्ध यह सिद्ध होता है कि इस ग्रन्थ के प्रकृतन-वाक्य में १३ पूर्वों के मट्ट विद्यमान थे।

इस सम्बन्ध की पुष्टि इस भाग में भी होती है कि प्रकृत 'निशोकावाची श्रमणों' इस में अन्वय मट्ठादी के बादमें पहुँचने वाले अनुसूक्त एक ही मट्ठादी के नाम का उल्लेख है। 'पाद' अनुसूक्त के वाक्यात्, किमी एक मट्ठादी का भी इस भाग में उल्लिखित मट्ठादीयनाम में नहीं किया गया है। यदि मट्ठादी के समाह्वयों नाम में इस भाग का प्रकृतन किया जाता तो 'पाद' अनुसूक्त के वाक्यात्, हर 'पाद' महाविधि, पाद' सुशरी, पाद'

बलिस्सह आदि दशपूर्वधर महान् आचार्यों का तथा वीर नि० सं० ५२५ के आसपास स्वर्गस्थ हुए अन्तिम दशपूर्वधर आचार्य आर्यवञ्ज का और साढ़े नव पूर्वों का ज्ञान प्राप्त करने वाले एवं अनुयोगों का पृथक्करण करने वाले आर्यरक्षित का कहीं न कहीं अवश्य ही उल्लेख किया जाता ।

मेरे इस अनुमान की पुष्टि करने वाले और भी अनेक प्रमाण इस ग्रन्थ में विद्यमान हैं । इस पूरे ग्रन्थ को पढ़ने से ग्रन्थकार की एक विशिष्ट शैली पाठक के समक्ष साक्षात् साकार हो उठती है । जो जो घटनाएँ इस ग्रन्थ के रचनाकाल से पूर्व घटित हो चुकी थीं उनके लिए ग्रन्थकार ने प्रत्येक धातु का भूतकाल का प्रयोग किया है । उदाहरण स्वरूप निम्नलिखित गाथाएँ चिन्तनीय एवं मननीय हैं—

एतेण कारणेन, पुरिसजुगे अठमम्मि वीरस्स ।

सवराहेण पणट्ठाइं, जाण चत्तारि पुव्वाइं ॥८०३

तं एवमंगवंसो य, नंदवंसो मरुयवंसो य ।

सवराहेण पणट्ठा, समयं सज्झायवंसेण ॥८०५

इन गाथाओं पर गम्भीरतापूर्वक चिन्तन मनन करने तथा 'पणट्ठाइं' और 'पणट्ठा' शब्दों के भूतकाल के प्रयोग पर विचार करने से स्पष्टतः प्रतीत होता है कि इस ग्रन्थ के प्रणयन से पूर्व ही चार पूर्व,— स्वाध्याय वंश (अनवष्टप तप, पारंरचित तप और चार पूर्व) और नन्दवश नष्ट हो गये थे । यहाँ जो 'मरुयवंस' के नष्ट होने का उल्लेख है वह शोध का विषय है । मौर्य वंश का द्योतक तो यह नहीं हो सकता क्योंकि इसमें न तो कहीं मौर्यवंश का ही उल्लेख है और न मौर्यकाल की आदि से लेकर अन्त तक की किसी एक भी घटना का ही ।

जो घटनाएँ इस ग्रन्थ के रचनाकाल तक घटित नहीं हुई हैं उनका उल्लेख करते समय ग्रन्थकार ने सर्वत्र प्रत्येक धातु का भविष्यत्काल का रूप दिया है । स्थूलभद्र के समय तक की घटनाओं के सम्बन्ध में भूतकाल का प्रयोग कर चुकने के तत्काल पश्चात् की गाथा संख्या ८०७ के—

'होही अपच्छिमो किर, दसपुव्वो धारणो वीरो'

इस अन्तिम अर्द्धभाग में 'होही' अर्थात् 'भविष्यति' शब्द प्रयोग-स्पष्टतः यही प्रकट करता है कि इस ग्रन्थ के निर्माण के बहुत काल पश्चात् यह घटना घटित होगी । शेष पूर्वों के विच्छेद तथा एकादशांगी के ह्रास

का घागे की जिन-जिन गाथाओं में उल्लेख किया गया है वहाँ सब जगह ऋषिध्वस्तकाल का ही प्रयोग है। गाथा संख्या ८०८—

एयस्स पुष्वसुय सायरस्स, उवहिव्व षपरिमेयस्स ।
 गुणसु ज्ह षय काले, परिहापो शीमते प्रच्छा ॥ में प्रयुक्त 'ज्ह',

'षय', 'काले' और 'प्रच्छा' शब्द माधारण में साधारण विचारक के हृद्य पर यही छाप चर्कित करते हैं कि इस गाथा से पूर्व की घटनाएँ इस ग्रन्थ के प्रणयन काल से पूर्व घटित हो चुकी थीं और इस गाथा से आगे जिन घटनाओं का उल्लेख किया जा रहा है, वे सब घटनाएँ इस ग्रन्थ के प्रणयन से परंपात घटित होंगी।

इन सब प्रमाणों से यह अनुमान किया जाता है कि यह रचना दशपूर्व-घर काल की है। पर इसका स्वरूप थोड़ा विकृत हो चुका है। नन्दीमूल के घाट संसल में उल्लिखित संपस्थुति की तीन चार गाथाएँ प्रस्तुत ग्रन्थ में भी पर्याय रूपेण विद्यमान हैं। इन गाथाओं में यह मिट्ट नहीं किया जा सकता कि यह रचना और निर्वाण सं० १००० में स्वर्गस्थ हुए घागे देवद्वि गणों के परशाद्वर्ती काल की है। क्योंकि इस ग्रन्थ में अनेक गाथाएँ प्रक्षिप्त हैं, यह बात तो इस ग्रन्थ की अन्तिम गाथा में ही मिट्ट हो जाती है। इस ग्रन्थ में मूल विचारक गाथाओं की संख्या १२५६ चर्कित की गई है जब कि इस ग्रन्थ की समाप्ति के पर्याय की गई इस गाथा में इस की मूल गाथाओं की संख्या १२३३ ही दी गई है।

इन सब तथ्यों से बड़ी मिट्ट होता है कि इस ग्रन्थ का रचना काल और वि० सं० २१५ के पर्याय का दशपूर्वघर काल है और नन्दी मूल के घाट संसल की जो गाथाएँ इसमें उल्लिखित हैं वे यन्तुक: इसमें परशाद्वर्ती काल में प्रक्षिप्त की गई हैं। आर्यों, बुद्धियों घाटि ग्रन्थ की चार मय में जो इसकी गाथाएँ उपलब्ध होती हैं वे निश्चितरूपेण इसी ग्रन्थ से प्राचीन काल में की गई हैं।

इस ग्रन्थ की जो साधुमीय प्रति पाटन के संग्रहा में है वह भी अति प्राचीन (संभवतः वि० सं० १४०० के आस पास की)—मेरे पास निम्नलिखित लेखन संस्करण है पर इस संस्करण में से १००० माहल की दूरी पर है। अतः निम्नलिखित और ०४ की इस संस्करण नहीं लिया सकता है। इस साधुमीय प्रति के संस्करण लेखन से यह अनुमान किया जाता है कि महाभारत के अन्तिम घोर

कण्ठ परस्परा से आये हुए इस ग्रन्थ के पाठ उस ताड़पत्रीय प्रति में लिखन के समय तक कतिपय अंशों में विस्मृत और विकृत हो चुके थे ।

प्रेस के व्यवस्थापक ने संशोधन हेतु मेरे पास प्रूफ भेजने में असमर्थता प्रकट करते हुए प्रूफ देखने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ही ले लिया था । प्राकृत और संस्कृत के प्रूफ देखने में तो कठिनाई अवश्य भावी है । इस कारण इस पुस्तक की छपाई में कतिपय अशुद्धियाँ रह गई हैं जो इसलिए क्षम्य हैं कि संस्कृत छाया और हिन्दी अनुवाद को देखने पर किंचित अशुद्धियाँ रह गई हैं उन्हें प्रत्येक पाठक स्वतः ही ठीक कर सकता है ।

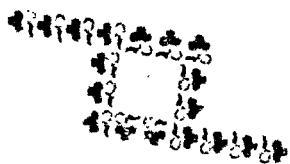
मेरे स्वयं के प्रमाद, बुद्धि व्यामोह अथवा समयाभाव के कारण भी सम्भव है अशुद्धियाँ रह गई हों । मुझे सहृदय पाठकों पर पूर्ण विश्वास है कि वे मुझे इसके लिये अवश्यमेव क्षमा कर देंगे ।

गजेन्द्र सदन, लोटोनी (पाली)

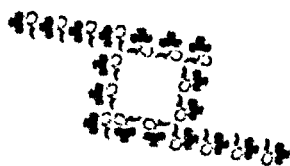
दि० २५-१०-७५

ठाकुर गजसिंह राठीड़

न्यायव्याकरण-तीर्थ



शुद्धि-पत्र



समुद्र	सुद्ध	गाथा	पृष्ठ
पद्य	पद्य	११ छाया	४
नाम विभक्ति	नाम विभक्ति	१७	५
संयु	सु	२२	७
निष्कोट न	निष्कोटन	६८	२१
विद्यासु थ	विद्यासुं	६८ छाया	२१
संज्ञक	सम संज्ञक के संज्ञक	६८ संज्ञक	२१
सुसंज्ञक	सुसंज्ञक	७११	२२०

तित्थोगाली पद्मत्रय तीर्थोद्धारिक प्रकीर्णक

जयद् सतिपाय-निम्मल-तिहुयण-विरिधण्ण-पुण्णजस-कुसुमो ।
उत्तमो केवल-दंसण-दिवायरो दिट्ठदट्ठवो ॥१॥

(जयति शशिपाद०-निर्मल त्रिशुवन विस्तीर्ण पुण्य-यश कुसुमः ।
ऋषभः केवल-दर्शन-दिवाकरः दृष्ट-दृष्टव्यः ॥)

चन्द्रकिरणा के समान समुज्ज्वल, जिनका पावन यश रूपों
पुण्य सम्पूर्ण (कार्य, यशः, तिर्यक) लोगों में व्याप्त है, वे नगर के
नमन्य चर-प्रचर एवं स्त्री-लक्ष्मी पदार्थों को देखने—जानने वाले
व्यक्तियों के मूर्ख प्रभृ ऋषभभेद जयन्त है ॥१॥

वादीमद् च निज्जयपरीसद्-कसाय-विग्घ-संधाया ।
अजियार्थ्या भवियारविन्द-रविणो जयंति जिणा ॥२॥

(श्रविंशति च निर्जित-परीसद्-कपाय-विग्घन-संधाना ।
अजितादिका भविकारविन्दरवयः जयंति जिनाः ॥)

परीसद्ही, कपायों और विग्घों के (सम्पूर्ण) समूहों पर (पूर्यंतः)
विशय प्राप्त करने वाले एवं कमलपुष्प स्वरूप भव्य प्राणियों के लिये
सूर्यो के समान (सुलभ) भगवान् अजितनाथ आदि आर्योण तीर्थंकर
जयन्त हैं ॥२॥

जयद् सिद्धत्थ-नरिन्द-विमल-वृत्त विष्टुल नहयल-मयंको ।
महिपालमनिमहोगामहिदमहिओ महावीरो ॥३॥

(जयति सिद्धार्थनरेन्द्रविमलवृत्त-विष्टुल नभयल-मयंकः ।
महिपाल-महि-महोगा-नरेन्द्र-महिओ महावीरः ॥)

नगराज (महार्थ) के उज्ज्वल वृत्तरूपों मयल मयंक के
प्रसंगपर तथा नरेन्द्रो, महोग्यो, नरेन्द्रो और नरेन्द्रो
भगवान् महावीर जयन्त हैं ॥३॥

नमिळण समण-संघं सुनाय-परमत्थ-पायढं विण्ढं ।
 वोच्छं निच्छययत्थं, तित्थोगालीए संखेवं । ४।
 (नत्वा श्रमण-संघं सुज्ञात-परमार्थ-प्राकृतं विकटं ।
 वक्ष्यामि निश्चितार्थं, तीर्थोद्दिगालिकस्य संक्षेपम् ।)

परमार्थ के पूर्णरूपेण ज्ञाता, अनादि श्रीर विराट् श्रमणसंघ को नमन कर मैं तीर्थोद्दिगार^२ (तीर्थोद्दिगम) अथवा तीर्थ के ओगाली^३ (दश क्षत्रों में) प्रवाहों के सुनिश्चित अर्थ का संक्षेपतः कथन करूँगा । ४।

रायगिहे गुण-सिलए भणिया वीरेण गणहराणं तु ।
 पयसयसहस्समेयं, वित्थरओ लोगनाहेणं । ५।
 (राजगृहे गुणशीलके, भणिता वीरेण गणधरेभ्यस्तु ।
 पदशत-सहस्रमेतं, विस्तरतः लोकनाथेन ।)

त्रिलोकीनाथ भगवान् महावीर ने राजगृह नगर के गुणशीलक नामक उद्यान में विस्तारपूर्वक एकलाख पद-प्रमाण तीर्थोद्दिगारिक अथवा तीर्थ प्रवाहों के प्रकीर्णक का कथन गणधरों को किया । ५।

अइ संखेवं मोत्तुं, मोत्तूण पवित्थरं अहं भणिमो ।
 अप्पक्खरं महत्थं, जह भणियं लोगनाहेण । ६।
 (अति-संक्षेपं मुक्त्वा, मुक्त्वा प्रविस्तरं अहं भणामि ।
 अल्पाक्षरं महार्थं, यथा भणितं लोकनाथेन ।)

अति संक्षेप और अति विस्तार इन दोनों पद्धतियों का परित्याग कर मैं प्रगाढ़ अर्थ भरे स्वल्पाक्षरों में उसका उसी प्रकार वर्णन करूँगा जिस प्रकार कि विश्वनाथ (प्रभु महावीर) ने कहा था । ६।

कालोउ अणाईओ, पवाहरूपेण होइ नायव्वो ।
 निहणविहूणो सो च्चिय, वारस अरगेहिं निदिट्ठो । ७।
 (कालस्तु अनादिकः, प्रवाहरूपेण भवति ज्ञातव्यः ।
 निघन-विहीनः स खलु, द्वादशारकैः निर्दिष्टः ।)

१ महान्तम् । २-३ देखिये 'पाइयसह-महण्णवो

काल अनादिकाल से (नदी के) प्रवाह के समान निरन्तर गतिशील है, यह जानना चाहिए। वह (काल) अन्तरहित है और चारह अंशों (काल विभागों) द्वारा उसका निर्देश किया गया है। ७।

द्व्यट्टयाण् निच्चो, होई अणिच्चो अ नयमण् वीण् ।
एगत्तो मिच्चत्तं, जिणाण आणा अणोगंता ८।
(द्रव्यार्थनया नित्यः भवति अनित्यश्च नयमते द्वितीये ।
एकान्तो मिथ्यात्वम्, जिनानां आज्ञा अर्नकान्ता ।)

वह कालद्रव्य द्रव्याधिक नय अर्थात् द्रव्य को अपेक्षा नित्य-माध्यत और द्वितीय पदार्थाधिक नय अर्थात् पर्याय को अपेक्षा अनित्य (यिनाशशील) है। इसे एकान्तरूप से निश्चय अथवा अनित्य मानना मिथ्यात्व है क्योंकि जिनेश्वरों (वीतराग सर्वज्ञों) ने अनेकान्त (स्वाहा) सिद्धान्त को स्वीकार करने की आज्ञा प्रदान की है। ८।

ओत्तप्पिणी य उत्तप्पणी य, भरहे तहेव एउवण् ।
परियचंति कमेणं, सेतेसु अवाट्ठो कालो ९।
(अवमर्षिणी च उत्तर्षिणी च, भरने तथैव एउवते ।
पर्यटनः क्रमेण, शेषेषु अवस्थितः कालः ।)

हाई हीन के साथ भरत और पात ऐस्वत हीनों में अवमर्षिणी काल और उत्तर्षिणी काल समान; परिभ्रमण करते रहते हैं। हीन सभी हीनों में यह काल अपरिवर्तनीय रूप में सदा एक समान विश-मान रहता है। ९।

ओत्तप्पिणी पमाणं, भणंति लोकोत्तमा निहयमोहा ।
सज्जप्पु जिण-वरिदा, समासभो नं निसामेह १०।
(अवमर्षिणी प्रमाणं, भणंति लोकोत्तमा निहन-मोहा ।
नर्ययाः जिनवन्द्याः, समागतः तस्मिन्नामयत्)

मोह को जिन-ट करने वाले लोकोत्तम सर्वज्ञ जिनेश्वर (समस्त समय पर) अवमर्षिणी काल का (हीन) प्रमाण बताते हैं, तब मोह-पत, मुनिदे १०।

जोयण वित्थिण्णोखलु पल्लो* एगाहिय-परुट्ठाणं ।
 भरिओ असंस-खंडियक्याण वालग्ग-कोटीणं ॥११॥
 (योजन-विस्तीर्णः खलु पत्यः एकाहिक प्ररुट्ठाणाम् ।
 भरितअसंखपखण्डीकृतानां वालाग्र-कोटीनाम् ।)

एक योजन (४ कोस) लम्बे, चौड़े और गहरे एक पत्य (वस्तु रखने का खड्डा) को दो दिन पहले जन्मे हुए यौगलिक शिशुओं के एक एक बाल को करोड़ करोड़ अति सूक्ष्म टुकड़े कर, बालों के उन सूक्ष्मातिसूक्ष्म टुकड़ों से (दवा दवा) कर भर दिया जाय ।११।

वाससए वाससए, एक्किक्कके अवहडंमि जो कालो ।
 सो कालो बोधव्वो, उवमा एकस्स पल्लस्स ।१२।
 (वर्ष शते वर्ष शते, एकैके अपहृते यः कालः ।
 स कालो बोधव्यः, उपमा एकस्य पल्यस्य ।)

उस पत्य में से बाल के एक एक टुकड़े को एक एक सौ वर्षों के अन्तर से निकाला जाय । इस प्रकार उन बालों के टुकड़ों से उस पत्य के पूर्णरूपेण रिक्त होने में जितना समय लगता है, उस समय को एक पत्य की उपमा से समझना चाहिए ।१२।

एतेसिं पल्लाणं कोडाकोटी हवेज्ज दसगुणिया ।
 तं सागरोपमस्स उ, एकस्स भवे परिमाणं ।१३।
 (एतेपां पल्यानां कोट्या कोटिः भवेत् दशगुणिताः ।
 तत् सागरोपमस्य तु, एकस्य भवेत् परिमाणम् ।)

इस प्रकार के दश कोटाकोटि पत्योपमों का एक सागरोपम परिमाण वाला काल होता है । अर्थात् दश कोटाकोटि पत्योपम का सागरोपम काल होता है ।१३।

दस कोडाकोटीए सागरनामाण हुंति पुण्णाउ ।
 ओसप्पिणीपमाणं, तहेसुसप्पिणीए वि ।१४।

* पल्लो-पत्य पत्यकःखलु यत्र कापि वस्तु प्राप्नियते ।

(दश कोट्या कोटिसागरनाम्नां भवन्ति पूर्णास्तु ।
अवसर्पिणीप्रमाणं, तथैव उत्सर्पिण्या अपि ।)

सागरोपम नामक इस काल की दश कोटा-कोटि संख्या जब पूर्ण हो जाती है, तो उन काल को अवसर्पिणी-परिमाण काल कहते हैं । प्रवसर्पिणी काल के समान उत्सर्पिणी काल भी दश कोटाकोटि सागरोपम का होता है । १४।

ओसर्पिणी च उत्सर्पिणी च, दोन्निवि अणाइनिहणाओ ।
न वि होई अति कालो, नवि होही सव्वसंखेवो । १५।

(अवसर्पिणी च उत्सर्पिणी च द्वेऽपि अनादिनिधने ।
नापि भवति अतिकालः नापि भवति सर्व-संक्षेपः ।)

अवसर्पिणीकाल और उत्सर्पिणीकाल—ये दोनों अनादि काल में (इसी प्रकार) चले आ रहे हैं । इनके हम काल-परिमाण में न कभी किञ्चित्मात्र भी आधिक्य होता है एवं न कभी किञ्चित्मात्र न्यूनता ही । १५।

ते चैव कालसमया तासिं चोच्छ्रामहं समाणेणं ।
ओसर्पिणी अनुलोमा, प्राडिलोमुम्सर्पिणी भणिया । १६।

(तां चैव काल समया तयोः वक्ष्याम्यहं समानेन ।
अवसर्पिणी अनुलोमा, प्रतिदोमा उत्सर्पिणी भणिता ।)

ये काल के दो विभाग हैं । इनका ही समान रूप में विवरण प्रस्तुत करूँगा । प्रवसर्पिणी काल अनुलोम कर्षात् तासोन्मुत्त और उत्सर्पिणी काल प्रतिदोम कर्षात् उत्सर्पिण्युत्त कहा गया है । १६।

एतत्तैव काल समया एवंति ओसर्पिणीए भरहंमि ।
तेभिं नामविभतिं, जहकम्पे किणइस्सामि । १७।

(एत् वैव कालसमयाः भवन्ति अवसर्पिण्याः भवन्ते ।
तेषां नाम-विभक्तिः, यथाकर्म कर्तव्यिष्यामि ।)

भवन और वे अवसर्पिणी काल के दो विभाग होते हैं । उनके नाम और विभक्ति का ही स्याजस में बर्णन करूँगा । १७।

सुसमसुसना य सुसमा, तस्या पुन सुसमदूमा होई ।
 चउत्थी दूम सुसमा* दूम अतिदूमना इट्ठी ।१८।
 (सुसमसुसमा च सुसमा, तृतीया पुनः सुसमदुःपमा भवति ।
 चतुर्था दुःपम सुसमा, दुःपमा, अतिदुःपमा पष्ठी ।)

सुसमसुसमा. सुसमा. तीसरा सुसम—दुःसमा. चौथा दुःपम-
 सुसमा पाचवा दुःपमा और छठा अतिदुःपमा ।१८।

एते चैव विभागा, नवरं उत्सपिणीए इत्येव ।
 पडिलोमा परिवाहीए, तेसि होइ नायच्चा ।१९।
 (एते चैव विभागा, नवरं उत्सपिण्यां पड् चैव ।
 प्रतिलोमाः परिपाट्या, तेषां भवति ज्ञातव्याः ।)

ये ही छः काल विभाग उत्सपिणी काल में भी होते हैं परन्तु यह
 ज्ञातव्य है कि ये अक्सपिणी काल के छः काल विभागों के प्रतिलो
 अर्थात् उल्टे अनुक्रम से होते हैं ।१९।

सुसमामुसमाएउ चत्तारि हवंति कोडाकोडीउ ।
 तिणिण सुसमाए कालो, दो सुसमदूसमाए उ ।२०।
 (सुसमामुसमायां तु चतस्रः भवन्ति कोटिकोट्यः ।
 तिस्रः सुसमायां कालः, द्वे सुसमादुःपमायां तु ।)

सुसमसुसमा नामक आरक चार कोटाकोटि सागरोपम का,
 सुसमा नामक आरक तीन कोटाकोटि सागरोपम का और सुसम-
 दुःपमा नामक आरक दो कोटाकोटि सागरोपम काल का होता है ।२०।

एकका कोडाकोडी, बायालीसाए तह सहस्सेहिं ।
 वासाण होइ ऊणा, दूसमसुसमाए सो कालो ।२१।

(एका कोटिकोटिः द्वाचत्वारिंशद् तथा सहस्रैः ।
 वर्षाणां भवति ऊना, दुःपमसुसमाया स कालः ।)

* प्रति में 'सुसमाचउत्थी' पाठ है, जो किसी लिपिकार की त्रुटि का
 आभास कराता है ।

दुःपम नुपमा नामक चारक बयालीस हजार वर्ष न्यून एक कोटाकोटि सागरोपम का होता है । २१।

वह दुःपमाए कालो, वाससहस्राई एकवीस संतु ।

तावद्भो चैव भवे, कालो अद्दुःपमाए वि । २२।

(अथ दुःपमायां कालः, वर्षसहस्राणि एकविंशति तु ।

तावान् चैव भवेत्, कालः अति दुःपमाया अपि ।)

दुःपमा नामक चारक एकवीस हजार वर्ष का और अति दुःपमा (दुःपमदुःपमा) नामक चारक भी उतने ही अर्थात् एकवीस हजार वर्ष का होता है । २२।

नवसागरोपमाण, कोटाकोटीओ होंति दुगुणाओ ।

जा होइ अकर्मभूमि भरतैवणसु वासेसु । २३।

(नव सागरोपमानां, कोटिकोट्यः भवन्ति द्विगुणिताः ।

या भवति अकर्मभूमिः, भरतैवतेषु वर्षेषु ।)

भरत और ऐरवत दोनों में ६ कोटाकोटि सागरोपम काल अवसर्पिणी का और ६ कोटाकोटि सागरोपम काल ही उत्सर्पिणी का—इस प्रकार दोनों के काल को जोड़ने पर १८ कोटाकोटि सागरोपम काल तक भरत और ऐरवत दोनों में अकर्म भूमि (भाग भूमि) रहती है । २३।

साक्षात्पश्यत—ऐसा प्रतीत होता है कि तैवीशर्वा नाया में मोटे रूप में अकर्म भूमि का काम बताया गया है । यद्युक्त अवसर्पिणी काल के नुपमदुःपमा नामक तृतीय चारक को समाधि के ६४ सात पूर्व भाग रहने पर भरत तथा ऐरवत दोनों में अकर्मभूमि का प्रादुर्भाव तथा उत्सर्पिणी काल के नुपमदुःपमा नामक चतुर्थ चारक के प्रारम्भ में ६४ सात पूर्व अवसर्पिणी को जाने पर ५ भरत और १ ही ऐरवत—इन १० क्षेत्रों में अकर्मभूमि का समयमान हो जाता है । इस प्रकार १८ कोटाकोटि सागरोपम के अवसर्पिणी के प्रथम तीन और उत्सर्पिणी के अन्तिम इन छह चारकों में १ करोड़ २८ लाख पूर्व, तीन वर्ष, ८ लाख और २८ लाख पूर्व, तीन वर्ष, ८ लाख और

१५ दिन कम १८ कोटाकोटि सागरोपम काल पर्यन्त भरत तथा ऐरवत क्षेत्रों में अकर्म भूमि (भोगभूमि) रहती है ।

ऐसा प्रतीत होता है कि १८ सागरोपम जैसे सुदीर्घ काल की तुलना में एक कराड २८ लाख पूर्व, तीन वर्ष, साढ़े आठ मास का काल नगण्य समझकर तित्थोगालीय पद्मनाकार ने यहां इस काल का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है । यह भी संभव है कि इस प्रकार का स्पष्टीकरण करने वाली कोई गाथा पूर्व काल में रही हो और वह कालान्तर में लिपिकार के प्रमाद के कारण विलुप्त हो गई हो ।

काल गणना में किसी प्रकार की भ्रान्ति न रहे, इस उद्देश्य से इस गाथा के अनन्तर निम्नलिखित गाथा प्रस्तुत की जा रही है:—

चोवट्टिं सयसहस्सा, पुव्वाण दुगुणिया दन्नि सुसमदूसमासु ।
ता होइ कम्मभूमि, भरहेरवएसु दससु वासेसु ॥

तेवट्टिं च सहस्सा, वियड्ढावासाण होंति उड्ढस्स ।

जा होइ कम्मभूमि, भरहेरवएसु वासेसु । २४ ।

(त्रिपष्टि च सहस्त्राः वैताड्यावासानाम् भवन्ति ऊर्ध्वस्य ।

या भवति कर्मभूमिः भरतैरवतेषु वर्षेषु ॥)

ऊपर के अर्थात् १ करोड़ २८ लाख पूर्व, तीन वर्ष, ८ मास १५ दिन दोनों सुपमदुपमा आरों. ८४ हजार वर्ष कम २ सागरोपम परिमाण वाले दोनों दुःपम-सुपमा आरकों दोनों दुःपम आरकों एवं दोनों दुःपम-दुःपमा आरकों के क्रमशः पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध के ६३ हजार वर्ष परिमित काल और दोनों दुःपम-दुःपमा आरकों के क्रमशः परार्द्ध और पूर्वार्द्ध के २१ हजार वर्ष पर्यन्त वैताड्य (गिरि कन्दराओं में) वास के काल को मिला कर दो सागरोपम, एक करोड़ २८ लाख पूर्व तीन वर्ष साढ़े आठ मास काल पर्यन्त भरत तथा ऐरवत क्षेत्रों में कर्मभूमि रहती है ।

स्पष्टीकरण :—प्रचलित धारणानुसार दोनों दुःपम दुःपमा आरों के प्रारम्भ से अन्त तक पूरे ४२ हजार वर्ष पर्यन्त भरत तथा

ऐरवत क्षेत्रों के मनुष्य एवं तिर्यञ्चों का वंशाद्वय को कन्दराश्रों में
नियत माना गया है। पर इस गाथा से प्रकट होता है कि तित्योगानिय
पद्मत्रयकार ने अवसर्पिणी काल के दुःप.म दुःप.मा क उत्तरार्द्ध में
उत्सर्पिणी काल के दुःप.म दुःप.मा पूर्वार्द्ध तक प्रयात् २१ हजार वर्ष
तक ही इन दश क्षेत्रों के मानवों एवं तिर्यञ्चों का वंशाद्वयवात
माना है। २४।

एसो ठिति विरहिओ, कालो पुण होइ धम्मचरणस्स ।
एत्तो परं तु बोद्धं, अज्जिहमणुमाणओ कालं । २५।

(एषः स्थितिविरहितः, कालः पुनर्भवति धर्मचरणस्य ।
इतः परं तु वक्ष्यामि, शब्दिवर्धे अनु मानतः कालं ।)

यह धर्मचरण की स्थिति से रहित काल होता है। अब इस
से छोटे छः प्रकार के काल-मान का अनुक्रमणः से कथन
करूंगा। २५।

दससु वि कुरुण सरिसं, भरहमिव आनि सुमसुसमाए ।
नवरिमणाड्डियकालो, एरवयादीण वि तहेव । २६।

(दशष्वपि कुरुसु सदसं, भरतमिदं आनीत् सुपम-सुपमायां ।
नपरं वनावर्तितः कालः, ऐरवतादीषु अपि तथैव ।)

सुपम-सुपमा नामक आरक में भरत क्षेत्र की मनुष्य वर्णों कुशक्षेत्रों
तथा उत्तरी प्रकार ऐरवत प्रादि क्षेत्रों में भी यमान रूप से अनुपपत्त्यं
प्रयात् क्षपरिवर्तनीय सुसुसुसु काल रहता है। २६।

एतेनि सैचाणां, मणिकणराविभूमियाड भूमिओ ।
रयणाण पंचवन्निय, सोहंविट भित्ति-निजाओ । २७।

(एतेषां क्षेत्राणां, मणिकणराविभूमिनाः भूमयः ।
रत्नानां पंचवर्षिकाः, शोभन्ति इह भित्ति-निजाः ॥)

उत्त सुपम-सुपमा नामक आरक में उत्तरी पश्चिम सभी क्षेत्रों के
सू-भाग मणिकण एवं रत्न में विभूषित और सर्वत्र पाँच प्रकार के
रत्नों से अतिव मनोहर भित्ति-भित्त सुसुसुसु रहते हैं। २७।

वावीपुक्खरणीओ, देसेदेसेत्थ दीहियाओ य ।
 पेच्छणगसंकुलाओ, मयणामण मंडिय तथाओ । २८ ।
 (वापी पुक्करिण्यः, देशे देशे अत्र [च्छ] दीर्घिकाश्च ।
 प्रेक्षणकसंकुलाः, शयनासनमण्डिताः तथा तु ॥)

उस आरक में स्थान स्थान पर सर्वत्र देखने योग्य अनेक मनोरम दृश्यों से सज्जल. शंया-आसनों आदि से सुसज्जित वापियाँ, पुक्करिणियाँ एवं दीर्घिकाएँ होती हैं । २८ ।

महुघयइक्खुरसोदगखीरासव वरवारुणी जलाओ ।
 काओ य पगइपाणिय फलिय सरिच्छत्थ भरियाओ । २९ ।
 (मधु-घृत-इक्षुरसोदकक्षीरासव-वरवारुणी जलाः ।
 काश्च प्रकृतिपानीय-स्फटिकसदृशा अत्र भरिताः ।)

जो शहद घृत, इक्षूरस द्राक्षा, क्षीर, आसव और उत्तम वारुणी के समान सुस्वादु एवं सुगन्धित जल से परिपूर्ण तथा उनमें से कतिपय वापियाँ आदि स्फटिक मणि के समान स्वच्छ प्राकृतिक पानी से भरी रहती हैं । २९ ।

जाओ वि रयणवेलुय, परिगयाउ सोयणे सुह विहाराओ ।
 तामरस कमल कुवलय, नीलुप्पलसोहिय जलाओ । ३० ।
 (या अपि रत्नवैडूर्य-परिगताः शोभनाः सुखविहाराः ।
 ताम्ररस-कमल-कुवलय, नीलोत्पलशोभित-जलाः ॥)

वे सब वैडूर्य रत्नों से निमित्त अतिसुरम्य सुखपूर्वक विचरण करने योग्य तथा ताम्ररस कमल, कुवलय एवं नीलोत्पल से सुशोभित जल से परिपूर्ण होती हैं । ३० ।

तासिं चडोलरुडहडगविधिह उप्पायज्जगइ पव्वयगा ।
 इंदियसुहोवभोगां, स्वभावजाया रयणचित्ता । ३१ ।
 (तासां च अडोल खंडहटक विविध उत्पाद जगति पर्वतकाः ।
 इन्द्रिय सुखोपभोगा, स्वभावजाता रत्न-चित्रा ।)

उन वापियों, पुष्करिणियों और दीपिकाओं के चारों ओर अति सुन्दर प्राकृतिक प्रकार जगतीया आदि रत्नों से जड़ित और चक्षु आदि इन्द्रियों को बड़ा आनन्द प्रदान करने वाली होती है । ३१।

देशे देशे य सुरम्या, कैलिलयाहरग कैवड घरा य ।
तेसु वि य रयणचित्ता, मणिकणगमिलानला रम्या । ३२।

(देशे देशे च सुरम्या कैलिलता-गृह-केवकि-गृहार्च ।
तेष्वपि च रत्नचित्रितः, मणिकनकशिलानला रम्याः ।)

स्थान स्थान पर नयनाभिराम लताओं से निर्मित कैलि-गृह और कैतकी मण्डप होते हैं । उन निकुञ्जों और कैलि-गृहों में अनेक प्रकार के रत्नमय चित्रों से सुशोभित अति कमनीय मणि शिलाएँ एवं कनक-शिलाएँ समान्स्थान विद्यी रहती हैं । ३२।

एतेषु य अन्येषु य, पद्मानभोगोपभोगपडरेषु ।
विविधे पुष्पफलासे य नककमिरिमणुभवन्ति । ३३।

(एतेषु च अन्येषु च, प्रधान भोगोपभोग प्रसुरेषु ।
विविधान् पुष्पफलासांश्च शकश्रियमनुभवन्ति ।)

पांच भक्त तथा पांच ऐश्वर्य एवं हंसकूर, उत्तरकूर आदि अक्रान्त कोटि के भोगोपभोग प्रधान क्षेत्रों में योगलिक मानव विचार पुष्पफलों के रत्न स्वरूप इन्द्र के समान सुग सुन्दर वा उपभोग करते हैं । ३३।

गाम नगनगराद, पिउर्विटनिवेशणा जम्मपत्त्या ।
एते न संनि भावा, एतेषु सुगलयनिभेषु । ३४।

(शासननगरागारादि, पित्तपिण्डनिवेशना च जन्मपत्त्याः ।
एते न संनि भावाः, एतेषु सुरान्यनिभेषु ।)

उप स्थान में सुन्दर नदियाँ उपमण्डप, छतों में शंख, मधुर, प्रानाद विद्या-दूत वा पारमपरिक कर्मण्य और जन्मफल उपमण्डप, शीत-पौक-जरा-दुःखादि वा अस्तिव्य सुख नहीं रहता । ३४।
स्वमिन्विकिमिन्विकिज्जे, बरदारो नन्धि रायधम्मो वा ।
नेन्नि विदुषणा न्याः, रोगोपौलोपणो वा । ३५।

(असि-मसि-कृपि-वाणिज्यं, व्यवहारः नास्ति राजधर्मो वा ।
तेषां मिथुनानां तदा, रोषः पोषः अपदेशो वा ।)

उस समय के उन यौगलिक मानवों में असि (तलवार), मसि (लेखन), कृपि, वाणिज्य, पारस्परिक आदान-प्रदान, शासक-शासित, आक्रोश, पोषण और परस्पर उपकार-अपकार आदि का व्यवहार नहीं होता । ३५।

पउमुप्पलनीसासा, विरूवितरू निम्भया निरूवलेवा ।
वंगवल्लिपलियरहिया, एतेसु नरा तथा सुहिया । ३३।
(पद्मोत्पलनिश्वासा, विरूपितनु निर्भया निरुपलेपाः ।
वंक-वलि-पलितरहिता, एतेषु नरा तदा सुखिनः ।)

इन क्षेत्रों में उस समय के मानव कमल पुष्प की भीनी मादक सुगन्ध के समान श्वासाच्छ्वास वाले, विशिष्ट सुन्दर शरीरधारो, पूर्ण निर्भय, छल-छद्म द्वेषादि से निर्लिप्त, वांक-टेढ़ श्वेतकेश आदि शारीरिक दोषों से रहित एवं सर्वथा सुखी होते हैं । ३६।

गंभीरनिद्धघोसा, साणुक्कोसा अमच्छर सहावा ।
अणुलोमवाउवेगा, अपरिमिय-परक्कमपलोया । ३७।
(गंभीर निद्धघोषाः, सानुक्रोशा अमत्सरस्वभावाः ।
अनुलोम वायुवेगाः, अपरिमितपराक्रमप्रलोकाः ।)

उस समय मानव-मिथुन धनरवगम्भीर गुंजायमान स्वर, मात्सर्य-मुक्त स्वभाव, वायु के समान अप्रतिहत यथेच्छ वेग और अपरिमित पराक्रम एवं तेज सम्पन्न होते हैं । ३७।

कस्सइ अणभियोगा, अहमिंदा वज्जरिसभसंघयणा ।
माणुम्माणुववेया, पेसलच्छसव्वंगसंघयणा । ३८।
(कस्यापि अनभियोगाः, अहमिन्द्रा वज्रधृपभ-संहननाः ।
मानोन्मानोपपेताः पेशलाच्छसर्वांगसंहननाः ।)

वे सभी मानव युगल सबके प्रति धर्मियोग रहित, समान रूप से सभी में इन्द्र हैं। इस प्रकार को भावना वाले वज्र प्रथम सहनन-धारी, सुधील देहधर, सुगठित एवं सुन्दर अंगोपांग युक्त होते हैं। ३८।
ते नरगणानुसुवा, सुभगा सुवभागिणो सुरभिगंधा ।

मिगरायमरिमविक्रम, वरवारण मत्तसरिमगई । ३९।
(ते नरगणाः सुस्वाः, सुभगाः सुवभागिनः सुरभिगंधाः ।
मृगराजसदृशविक्रम, --वरवारणमत्तसदृशगतयः ।)

वे नर-नारी गण परम सुन्दर, सुभग, सुवभाजन, सुवासित-मनमोहक गुग्गुन्ध मिह के समान पराक्रमी और मदीनमरा श्रेष्ठ गजराज की गति सदृश गमन करने वाले होते हैं। ३९।

पगःपयणुकलाया, अपिन्द्धा अपिहिमंचयञ्चंडा ।
पचीम लक्ष्मणधरा, पुढवी पुष्पफलाहारा । ४०।
(प्रकृति प्रतनुकपायाः, अपिन्द्धा अनिधि-संचय-अचण्डाः ।
आप्रिगण्डक्षणाधराः, पृथ्वी-पुष्प फलाहारा ।)

वे सब स्वभावतः धीला कपाय, स्वल्पेच्छ निधि एवं संघयविहीन धारण, ३२ लक्षकों से युक्त और नृपिज राज तथा फलों का आहार करने वाले होते हैं। ४०।

पुढविरसो य मुमाओ मन्त्रंदिह्यसंठ-सक्कर-समाणो ।
पुष्प पगट उचार रसतरा, अणुवमरमा उ साउकला । ४१।
(पृथ्वीरसदन मुन्वादः, मन्त्रंदि-संठ-अर्थेण समानः ।
पुष्पा प्रकटुचर रसतराः, अनुपमरमान्मु स्वाटु फलाः ।)

उन समय में पृथ्वी का स्वयं मिश्री पदवी धारण के समान मण्डु-पुत्रों का रस निःशब्द परम-मृदुल और मृदुपाटु, फलों का रस इत्यादि स्वादिष्ट होता है कि उन के स्वयं का पालन करने के लिये सारा मे कोई उपाय नहीं है। ४१।

पुष्प फलाणो य रसे, अमपन्न-इट्टपरमं जिणा विंति ।
संबन्धपरि नाजिजय, नवनिधिपद मीपना पराणो । ४२

(पुष्प-फलानां च रसं, अमृतरम-इष्टतरकं जिनाः त्रुवन्ति ।
संवत्सर-परिसज्जित, नवनिधिपति भोजन-गृहात् ।)

जिनेश्वर भगवान उस समय के फूलों तथा फलों के रस को अमृत रस और नवनिधिपति चक्रवर्ती की पाकशाला में वर्ष भर के परिश्रम से निर्मित भोजन की अपेक्षा भी अत्यन्त इष्टतर अर्थात् स्वादिष्ट बताते हैं । ४२।

भरहाइ दस वि खेत्ता, देव-कुराई वि तत्तिया चैव ।
एते वीसं खित्ता. वियाण पढमिल्लुए अरगो (गे) । ४३।

(भरतादि दशापि क्षेत्रा. देवकुर्वाद्यापि तावत्काः चैव ।
एते विंशति क्षेत्राः, विजानीहि प्रथमिल्लके आरके ।)

पांच भरत, पांच ऐरवत पांच देवकुरु और पांच ही उत्तरकुरु। इन बीस क्षेत्रों में सुषमसुषमा नामक प्रथम आरक की अवधि में इस प्रकार की स्थिति समझनी चाहिए । ४३।

आउसरीरुस्सेहो, सागर कोडीउ जाव चत्तारि ।
पलिओवमाई तिण्णउ. तिण्ण य कोसा समा भणिया ४४।

(आयुशरीरोत्सेधः सागर कोट्यः यावत् चत्वारि ।
पल्योपमानि त्रीणि त्रयो क्रोशाः सभा भणिता ।)

इन बीस क्षेत्रों में सुषमसुषमा नामक प्रथम आरक की चार कोटाकोटि सागरोपम की सम्पूर्ण अवधि में समान रूप से योग्य मानवों की आयु तीन पल्योपम और शरीर की लम्बाई तीन कोस बताई गई है । ४४।

एतेसु य खेत्तेसुं, तेसिं मणुयाण पुव्व सुकएणं ।
दसविह दुमाउ तइया, उवभोग-सुहा उवणमंति । ४५।

(एतेषु च क्षेत्रेषु, तेषां मनुजानां पूर्वसुकृतेन ।
दशविधा द्रुमास्तदा, उपभोग-सुखानि उपनमंति ।)

इन बीस क्षेत्रों में उस समय के मानव-मिथुनों को उनके पूर्वोपाजित पुण्य के फलस्वरूप दश प्रकार के द्रुम अर्थात् कल्पवृक्ष श्रेष्ठ सुखोपभोग की सम्पूर्ण सामग्री तत्काल प्रस्तुत करते हैं । ४५।

मत्तंगयाय भिंगा, तुडियंगा दिव्यजोडचित्तंगा ।
 चित्तरमा मणियंगा, गेहागाय अणियणा य । ४६।
 (मत्तंगकाश्च भूंगाः, वृष्टिनांगां दीप-ज्योति-चित्रांगाः ।
 चित्ररसाः मध्यंगा गृहकाग अनग्नाश्च ।)

उन सब प्रकार के कल्पवृक्षों के नाम निम्नलिखित हैं:-
 मत्तंग (१) भूग (२), वृष्टिनांग (३), दीप (४), ज्योति (५) चित्रांग
 (६), चित्ररम (७), मध्यग (८), गेहकर (९) और अनग्न (१०) ४६

मत्तंगंगेषु मज्जं गृहवेज्ज भायणाहं सिंगेण् ।
 तुडियंगेषु य संगय, तुडियाहं तह प्पगागहं । ४७।
 (मत्तंगकेषु मध्यं, मुख-वेद्यं भाजनानि भूंगेषु ।
 वृष्टिनांगेषु च संगन - वृष्टिनानि तथा प्रकाराणि ।)

मत्तंग नामक कल्पवृक्षों से उन मानवों को ग्रहनिग मुद्यानुभूति
 में मग्न करने वाला पेय, भूंग नामक कल्पवृक्षों से भाजनपायादि,
 वृष्टिनांग नामक वृक्षों से सुरक्षा आदि विविध प्रकार के वाद्य यन्त्र । ४७।

दीपमिहा जोडमिनाभगा य एते करिंति उज्जोयं ।
 चित्तंगेषु य मत्तं, चित्तरमा भोयणट्टाण् । ४८।
 (दीपमिहा ज्योतिनांपकाश्च एते कुर्वन्ति उद्ध्योतम् ।
 चित्रांगेषु च मान्यं, चित्ररसा भोजनायार्थाय ।)

दीपमिहा एवं ज्योति नामक वृक्षों से अदेखित मुद्या प्रकाश,
 चित्रांग नामक कल्पवृक्षों से मान्य-हार आदि मनोज प्रकाशन और
 चित्ररम नामक कल्पवृक्षों से भोजन सामग्री । ४८।

मणिभंगेषु य भूणपावराहं, भवणाहं भरणात्थेण् ।
 आट्ठण्णेषु य पणियं, कथाहं बहुप्परागाहं । ४९।
 (मध्यंगेषु च भूणपावराणि, मदनानि भरनरूपेषु ।
 कतानेषु च कथितं, कथाणि वाद्यप्रकाराणि ।)

अद्भ भरहमज्जिल-तिभागे गंगमिधुमज्जमि ।
 एत्थ बहुमज्ज देसे, उप्पन्ना कुलगरा मत्त । ७१ ।
 (अर्ध भरतमध्यस्थ, त्रिभागे गंगा-सिन्धु-मध्ये ।
 अत्र बहुमध्यदेशे, उत्पन्नाः कुलकराः सप्त ॥)

भरताह्व के मध्यस्थित त्रिभाग के गंगा और सिन्धु के बीच के प्रदेश के ठीक मध्यस्थ भू-भाग में (कमणः) सात कुलकर उत्पन्न हुए । ७१ ।

पुव्वभवजंम नामप्पमाण-संघयणमेवसंठाणं ।
 विणिच्छिआउभागा, भवणोवाओ य नीती य । ७२ ।
 (पूर्वभव-जन्म नाम-प्रमाण, संहननमेवं संस्थानम् ।
 विनिश्चितायुभागः, भवनोत्पादश्च नीतिश्च ॥)

मैं (उनके) पूर्व भव; जन्म नाम. प्रमाण, संहनन, संस्थान. निश्चित आयु-भाग, भवन-निर्माण और नीतियों का कथन करूंगा । ७२ ।

अवरविदेहे दो वणिय-वयंसा माइ उज्जुए चैव ।
 कालगया इह भरहे, हत्थीमणुओ य आयाय । ७३ ।
 [अपरविदेहे द्वौ वणिकू वयस्यौ मायावी ऋजुकरश्चैव ।
 कालगता इह भरते, हस्ती मनुजश्च आयातः ॥]

अपर विदेह क्षेत्र में दो वणिक मित्र थे । उनमें से एक वणिक मायावी और दूसरा सरल प्रकृति का था । मर कर वे दोनों यहाँ भरत क्षेत्र में उत्पन्न हुए । मायावी वणिक का जीव हाथी के रूप में और ऋजु-प्रकृति वणिक का जीव मनुष्य के रूप में । ७३ ।

दट्ठं सिण्णेहकरणं, गयमारूहणं च नामनिप्पत्ती ।
 परिहाणिम्मिह कलहो, सामत्थण-विणवणं हत्थी । ७४ ।
 [दट्ठ्वा स्नेहकरणं, गजमारोहणं च नामनिप्पत्तिः ।
 परिहानौ इह कलहः, सामर्थन-विज्ञपनं हस्ती ॥]

मनुष्य (विमलवाहन नामक प्रथम कुन्डकर) और हाथी ने एक दिन परस्पर एक दूसरे को देखा । पूर्वजन्म की भैंसी के कारण तत्काल उन दोनों का परस्पर स्नेह हो गया । हाथी उस पुरुष के पास आकर बैठा और वह पुरुष उस पर आरुह्य हो एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमने लगा । सुन्दर ध्वज गजराज पर आरुह्य उस पुरुष की देखकर योगियों ने उसका नाम विमलवाहन रखा । काल प्रभाव से कल्पवृक्षों एवं उनके द्वारा प्राप्त होने वाली भोग-सामग्री के परिक्षीण होने पर योगियों में कल्पवृक्षों के स्वामित्व के प्रश्न को लेकर कलह होने लगे । कलह के मूल कारण पर योगियों ने परस्पर विचार-विमर्श किया और विमलवाहन को अपना मुखिया मानकर उसके समक्ष सामूहिक रूप से निवेदन किया कि वह उनके आपसी कलह को दूर करें । विमलवाहन ने उस स्वैत हस्ती पर आरुह्य हो भयंकर घूम घूम कर योगियों में कल्पवृक्षों का समुचित बंटवारा किया । ७४।

पटमिन्ध्र विमलवाहण, चक्रसुम जगमं चउत्थमभिचंद्रे ।

तत्रो अ प्रसेणज्ञ, मरुदेवे चैव नाभी य । ७५।

[प्रथमोऽत्र विमलवाहनः, चक्रसुम-यगोमान् चतुर्थ अभिचंद्रः ।

तत्रच प्रसेनजितकः मरुदेवश्चैव नाभिश्च । ७५।

उन सात कुन्डकों के नाम इस प्रकार हैं :— विमलवाहन (१), चक्रसुमान (२), यगोमान (३), अभिचन्द्र (४), प्रसेनजित (५), मरुदेव (६) और नाभि (७) । ७५।

नदधणुसयाई पठभो, अष्ट य सचष्ट सचमाई च ।

सन्धेय अष्टचष्टा, पंचसया पणवीना य । ७६ दारं ।

(नर-धनुस्तानि प्रथमः, अष्टी च सप्तार्ध सप्तमानं च ।

चतुर्ध्व अर्थचष्ट, पंचसया-पंच विंशतिश्च । ७६ दारं ।)

प्रथम कुन्डक के मरीच की लम्बाई २०० धनुष, द्वितीय की १०० धनुष, तृतीय की ७५०, चतुर्थ की ७००, पंचम की ६००, षष्ठ की ५५० और सातवें कुन्डक के मरीच की लम्बाई २२५ धनुष की १०५।

वज्जरिसह संघयणा, समचउरंसा य हुंति संठाणे ।

वण्णं वि य बुच्छामि, पत्तेयं जस्स जं आसी ।७७।

[वज्रशृपभं-संहननाः, समचतुरस्ताश्च भवन्ति संस्थाने ।

वर्णमपि च वक्ष्यामि, प्रत्येकं यस्य यदासीत् ॥]

ये सभी कुलकर वज्रशृपभनाराच-संहनन और समचतुरस्र संस्थान के धारक थे । इनमें से प्रत्येक का जो जो वर्ण था, उसका भी मैं कथन करूंगा ।७७।

चक्खुम जसमं च पसेणइय, एते पियंगुवण्णाभा ।

अभिचंदोससिगोरो; निम्मलकणगप्पभा सेसा ।७८।

[चक्षुमान यशोवांश्च प्रसेनजित्, एते प्रियंगुवर्णाभाः ।

अभिवन्द्रः शशिंगौरः; निर्मल-कनकप्रभाः शेषाः ।]

इनमें से चक्षुष्मान, यशोमान और प्रसेनजित, ये तीन कुलकर जामुन के समान वर्ण वाले, अभिचन्द्र कुलकर चन्द्रमा के समान गौर वर्णवाले और शेष तीन—विमलवाहन, मरुदेव तथा नाभि कुलकर कुन्दन के समान वर्ण वाले थे ।७८।

चंदजस चंदकंता; सुरुव पडिरुव चक्खुकंता य ।

सिरिकंता मरुदेवी; कुलगरपत्तीण नामाहं ।७९।

[चन्द्रयशा चन्द्रकान्ता; सुरूपा प्रतिरूपा चक्षुकान्ता च ।

श्रीकान्ता मरुदेवी; कुलकर-पत्नीनां नामानि ॥]

कुलकरों की पत्नियों के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—चन्द्रयशा (१), चन्द्रकान्ता (२), सुरूपा (३), प्रतिरूपा (४), चक्षुकान्ता (५), श्रीकान्ता (६) और मरुदेवी (७) ।७९।

संघयणं संठाणं, उच्चंचं चैव कुलगरेहिं समं ।

वण्णेण एगवण्णा, सब्वाउ पियंगुवण्णा उ । ८० ।

(संहननं संस्थानं, उच्चता चैव कुलकरैः समं ।

वर्णेन एकवर्णाः, सर्वाः प्रियंगुवर्णास्तु ।)

इन कुलकर पत्नियों के संहनन संस्थान और शरीर की ऊंचाई उनके पति के समान ही थी। शरीर के वर्ण की दृष्टि से वे सभी केवल एक प्रियंगु (जामुन) वर्ण की थीं । ६०।

पलिओवम दसभाओ, पढमस्ताऊ तओ असंखिज्जा ।
ते आणुपुन्विहीणा, पुन्ना नाभिस्म संखेज्जा । ८१।
(पन्वोपमदशभागः प्रथमस्य आयुः तत असंख्येयाः ।
ते आनुपुन्व्या हीना, पूर्वा नाभेः संख्येयाः)

प्रथम कुलकर विमलवाहन को आयु पन्वोपम का दशवां भाग थी। तदनन्तर द्वितीय कुलकर से छठे कुलकर—इन पांच कुलकरों को आयु संख्यात पूर्व की किन्तु पूर्ववर्ती से पश्चाद्वर्ती की उत्तरोत्तर अल्प थी। अन्तिम कुलकर नाभि की आयु संख्यात पूर्व की थी । ६१।

'पुन्वस्स उ परिमाणं, सयरिं खलु हुंति कोटिलक्खाड ।
छप्पन्नं च सहस्सा, बोधच्चा वास-कोटीणं । ८२।
(पूर्वस्य तु परिमाणं, सप्ततिः खलु भवन्ति कोटिलक्षाः ।
पद्पंचाशच्च सहस्राः, बोद्धव्याः वर्ष कोटीनाम् ।)

पूर्व का परिमाण यह है कि ७० करोड़ लाख और ५६ हजार करोड़ वर्षों का एक पूर्व होता है । ६२।

वं चैव आठयं कुलगाराणं, तं चैव होई तासिपि ।
उं पढमगास्स आउं तावईयं होइ हत्थिस्स । ८३।

१. होई पुब्बंवेण, पुमसोई परिमत्तकय सखाए ।
त तागुत्तं तु पुब्बं, सत्तरिं छप्पन्नं एतत्तकथा ॥

परिचय—पुष्परत्न उ परिमाणं, सप्ततिं खलु हीति कोटि-लक्षणाधो ।
छप्पन्नं च सहस्रा, बोद्धव्या वास-कोटीणं ॥

(यच्चैव आयुषं कुलकराणां, तच्चैव भवति तासामपि ।
यत्प्रथमकस्यायुः, तावत्कं भवति हस्तिनः ।)

कुलकरों की जितनी आयु होती है, उतनी ही आयु कुलकर पत्नियों की भी होती है । प्रथम कुलकर की आयु के समान ही उनके हाथी की भी आयु होती है । ५३।

जं जस्त आयुयं खलु, तं दसभाए समं विभङ्गुणं ।
मञ्जिलअं निभागं, कुलगर-कालं वियाणार्हिं । ८४।
(यद्यस्य आयुष्यं खलु, तत् दशभागैर्ममं विभज्य ।
मध्यमकं त्रिभागं, कुलकर-कालं विजानीथ ।)

जिस कुलकर की जितनी आयु है, उम आयु को समान रूप से दश भागों में विभाजित किया जाय । उन दश भागों में से मध्य के तीन भागों को कुलकर का कुलकर-काल समझना चाहिए । ५४।

पढमो य कुमारचे, भागो चरिमो य वुद्धभावंमि ।
तप्पयणुपेज्जदोसा, सच्चे देवेषु उववण्णा । ८५।
(प्रथमश्च कुमारत्वे, भागः चरमश्च वृद्धभावे ।
तत्प्रतनुप्रयेदोषाः, सर्वे देवेषु उत्पन्नाः ।)

प्रत्येक कुलकर का उसकी आयु के दश भागों में से कुलकर-काल के पहले का भाग कुमारावस्था में और अन्तिम भाग वृद्धावस्था में व्यतीत होता है । ५५।

दो चैव सुवण्णेषु उदहिकुमारेसु होंति दो चैव ।
दो दीवकुमारेसु एगो नागेषु उववण्णो । ८६।
(द्वौ चैव सुवर्णेषु, उदधिकुमारेषु भवतः द्वौ चैव ।
द्वौ दीपकुमारेषु, एकः नागेषु उपपन्नः ।)

उन सात कुलकरों में से दो कुलकर स्वर्णकुमारों में, दो उदधिकुमारों में, दो दीपकुमारों में उत्पन्न हुए तथा एक नागकुमारों में । ५६।

नासापि ।

नी ही सापु न्त
के समान हीं

कत
के कत
दी

वाङ्मला लक्षित्थीञ्जी, नागकुमारेषु हुंति उव्वण्णाः ।
 एगा सिद्धिं पत्ता, मरुदेवी नाभिणं पत्ती । ८७ ।
 (आद्याः पठपि त्रियः, नागकुमारेषु भवन्ति उपपन्ना ।
 एका सिद्धिं प्राप्ता मरुदेवी नामः पत्नी ।)

गात कुलकर पत्नियों में से आदि की छः नागकुमारों में
 उत्पन्न हुई और अन्तिम एक नाभि कुलकर की पत्नी मरुदेवी सिद्ध-
 बुद्ध-मुक्त हुई । = ३।

हककारं मककारं, थिरकारं चेद दंडनीईथी ।
 योचं ताभिं वित्तं जदककमं आणुपुञ्चीम् । ८८ ।
 (हककाराः मककाराः थिरकाराश्चैव दण्डनीत्यः ।
 वक्ष्ये नामां विशेषं यथाक्रमं आनुपूर्व्या ।)

उन कुलकरों की 'हककार', मकार' और 'थिरकार'—ये तीन
 प्रकार की दण्डनीतियां थीं । ये उनका विशेष रूप में अनुक्रमतः कथन
 कहता । = ८८।

पटमचीयां पटमा, तइयचउत्थाण भणिणवा विया ।
 पंचन कट्टस्य य, मचमस्य वित्तं तइया अभिणवाउ । ८९।
 (प्रथमद्वितीययोः प्रथमा, तृतीयचतुर्थयोः अभिनवा द्वितीया ।
 पंचमपञ्चशोदश, सप्तमन्य विशेषं तृतीया अभिनवा तु ॥)

प्रथम और द्वितीय कुलकर ने अपने कुलकर-नाम में पहली
 'हककार' दण्डनीति का प्रयोग किया । तीसरे और चौथे कुलकरों ने
 (प्रथम दण्डनीति के साथ साथ) मकार नामक दूसरी नवीन दण्डनीति
 का और छठमवार प्रयोग, छठे और सातवें कुलकरों ने पहली दो
 दण्डनीतियों के साथ ही विनयाः अभिनवा तीसरी दण्डनीति—
 'पंचमकार' का प्रयोग किया । = ८९।

एवं चैव पण्णा (सवा), एण्वारं तु नपु सु संघं सु ।
 इकिरतीनि च तइया, तमं च य इत्तमया वामसो । ९०।

(एवं चैव वक्तव्याः, एरवतादिषु नवसु क्षेत्रेषु ।
एकैकै च तदा, सप्तैश्च च कुलकराः क्रमशः ॥)

ऐरवत आदि ६ क्षेत्रों में भी इसी प्रकार की वक्तव्यता समझनी चाहिए। उनमें से प्रत्येक क्षेत्र में उसी काल में क्रमशः सात-सात कुलकर उत्पन्न हुए। ६०।

सव्वे विमाणप्पवरे, अणुत्तरे भुंजिऊण से भोए ।
सव्वट्ठसिद्धिनामे, उदहिसमाणाइं तेत्तीसं । ९१।
(सर्वे विमानप्रवरे, अनुत्तरान् भुक्त्वा ते भोगान् ।
सर्वार्थसिद्धि समानानि, उदधि समानानि त्रयत्रिंशत् ॥)

पांच भरत तथा पांच ऐरवत—इन दशों क्षेत्रों में इस अव-
सर्पिणी काल के प्रथम तीर्थङ्करों के च्यवन कल्याणक का विवरण
प्रस्तुत करते हुए 'तिथ्योगाली पद्यत्रयकार कहते हैं :—

वे सब (दशों प्रथम तीर्थङ्करों के जीव) विमानों में सर्वोत्कृष्ट
सर्वार्थसिद्ध नामक विमान में तेतीस सागरोपम तक सर्वोत्तम दिव्य
भोगों का उपभोग कर। ६१।

ओसप्पिणी इमीसे, तइयाए समाए पच्छिमे भाए ।
चइऊण विमाणाउ, उत्तरासाढाहि नक्खत्ते । ९२।
(अवसर्पिण्यामस्यां, तृतीयायाः समायाः पश्चिमे भागे ।
च्युत्वा विमानात्, उत्तरापाढायां नक्षत्रे ॥)

इस अवसर्पिणी काल के तृतीय आरक के अन्तिम भाग में,
उत्तरापाढा नक्षत्र में उस (सर्वार्थसिद्ध) विमान से च्यवन कर। ६२।

कुलगर वंसपहूओ, आसी इक्खागवंस-संभूओ ।
नाभीनाम कुलगरो, पवरो तेसिं नरगणाणं । ९३।
(कुलकरवंशप्रसूतः आसीत् इक्ष्वाकुवंशसंभूतः ।
नाभिर्नामकुलकरः, प्रवरः तेषां नरगणानाम् ॥)

कुलकर वंश में जन्म ग्रहण किये हुए इक्ष्वाकुवंशावतंस, उस
समय के मनुष्यों में सर्वाधिक श्रेष्ठ जो नाभि नामक कुलकर थे। ६३।

तस्मान्गुरुवती सा, सञ्चंगोवंगलक्षण-पसत्या ।
 उत्तमरूप सरुवा, जाया मरुदेवि नामिति ॥१४॥
 (तस्यागुरुरूपवती सा, सर्वाङ्गोपाङ्गलक्षणप्रशस्ता ।
 उत्तमरूप-सुरुवा, जाया मरुदेविनामेति ॥)

उनकी, उनके समान परम रूपवती, सभी शंखोपांगों के समस्त गुणधारिणी से श्रेष्ठ, उत्तम रूप और स्वरूप सम्पन्ना मरुदेवी नामक पत्नी थी ॥१४॥

तीए उदरंमि तीसो, तिनानसहिओमहायसो भयवं ।
 गन्गचा उचयन्नो, पडमीसो भरहवासस ॥१५॥
 (तस्या उदरेत्रयीशः त्रिशानसहितः महायशा भगवान् ।
 गर्भतया उपपन्नः, प्रथमेशः भरतवर्षस्य ॥)

उन मरुदेवी की कुक्षि में तीन जानघारी महामन्त्रस्त्री त्रैलोक्य-नाथ भगवान् भारतवर्ष के प्रथम अधिपति आविर्भूत हुए ॥१५॥

एवं नव निन्धयरा, चंद्राणमाह नवसु खेनेसु ।
 नक्षत्राणि विमानधरा, उचरमाटाहिं नक्षत्रे ॥१६॥
 (एवं नव तीर्थकराः, चन्द्रानन आदि नवसु क्षेत्रेषु ।
 चन्द्र्या विमानधराः, उचरापाहायां नक्षत्रे ॥)

इसी प्रकार त्रैलोक्य आदि ९ क्षेत्रों में चन्द्रानन आदि ९ तीर्थकर उचरापाहा नक्षत्र में विमानों में पद्य कर ॥१६॥

कुलगरदोसप्रभुता, आती इक्ष्वाकुवंश मंभृया ।
 नवकुलगत नाभिनमा, पवरा तैसिं नरगणान् ॥१७॥
 (कुलगतवंशप्रभुताः आसन् इक्ष्वाकुवंश-मंभृताः ।
 नव कुलकर-नाभिनमाः, पवराः तैसां नरगणानाम् ॥)

(उपश्लोक १ शंखों में उड़ी मन्मथ) कुलगत शत्रु में प्रभु, इक्ष्वाकुवंशप्रभुता नाभि कुलकर के ही रामायण उचर नाम के मानकों में संश्लेषण ६ कुलकर हुए ॥१७॥

वे दशों तीर्थङ्करों की माताएँ, गजराजों में श्रेष्ठ चार चार दांतों वाले श्वेत हस्तियों द्वारा लक्ष्मी का अभिषेक किया जा रहा है, इस प्रकार का चौथा स्वप्न देखती हैं । १०४।

नाणारयण-विचित्तं, वियसियकमलुप्पल-सुरभिगंधि ।
छप्पय गणोववेयं, दामं, पेच्छंति सुसिलिट्ठ । १०५ ।
(नानारत्न विचित्र, विकसित कमलोत्पल सुरभिगंधिम् ।
पट्टपद गणोपपेतं, दाम, प्रेक्षन्ति सुसिलिट्ठम् ।)

अनेक प्रकार के रत्नों के साथ गूंधी गई, उसमें पिरोये गये अनेक प्रकार के कमलोत्पलादि में विकसित पुष्पों से मनमोहक सुगन्ध वाली श्रीर भ्रमरों के भुण्डों द्वारा सेवित अति कमनीय अपूर्व माला को वे जिन-जननियां पांचवें स्वप्न में देखती हैं । १०५।

उदयगिरिमत्थयत्थां, रस्सिसहस्सेहिं समणुगंमंतं ।
पेच्छति सुहपमुत्ता, कुमुदागरवोहगं चंद । १०६ ।
(उदयगिरिमस्तकस्थं, रश्मिसहस्रैर्मनुगमन्तम् ।
प्रेक्षन्ति सुख प्रसुप्ता कुमुदाकर बोधकं चन्द्रम् ।)

तदनन्तर सुखभर निद्रा में सोई हुई वे दशों तीर्थङ्करों की माताएँ छठे स्वप्न में उदयाचल के उच्चतम शिखर पर स्थित, सहस्र किरणों के परिवार सहित बढ़ते हुए, तथा कुमुदवनों को प्रफुलित करने वाले चन्द्रमा को देखती हैं । १०६।

एवं वियसियवयणा, रविमंडलमुज्जलं पगासंतं ।
पेच्छंति अंवरगय, अब्भामत्थ ट्ठियं पुरवो । १०७ ।
(एवं विकसितवदनाः, रविमण्डलमुज्ज्वलं प्रकाशन्तम् ।
प्रेक्षन्ति अंवरगतं, अभ्रमस्तके स्थितं पुरतः ।)

इसी प्रकार प्रसन्नमुखी वे जिन-माताएँ सातवें स्वप्न में आकाश के शिरोभाग पर स्थित उज्ज्वल सूर्यमण्डल को आकाश में अपने सम्मुख देखती हैं, जो कि समस्त संसार को प्रकाशित कर रहा है । १०७।

दिव्यं रयण विचित्रं; पेच्छन्ति महांसुयं परमरम्भं ।
 निवज्जवज्जसारं, विज्जुज्जल चंचल-पटागं । १०८।
 (दिव्यं रत्नविचित्रं, प्रेक्षन्ति महांसुकं परमरम्भम् ।
 निर्वद्यवज्जसारं, विद्युदुज्ज्वल — चंचलपताकम् ।)

घाटवें स्वप्न में वे विविध दिव्य रत्नों से जटित, परम रम्भ, महांसुक (अनुपम यस्त्र विशेष) ने निमित्त, उत्तमवज्ज की तारभूत; विजली की भावक के समान उज्ज्वल प्रकाशमान चंचल पताका जिनमें लगी हुई है, ऐसे — १०८।

तुङ्गं गगण विलगं, धरणियल पट्टिद्वयं महाकायं ।
 आगासमुवमिशोडं, ठियं महिदज्जय पुरथो । १०९।
 (तुङ्गं गगनविलग्नं, धरणितलप्रतिष्ठित महाकायम् ।
 आकाशमुपमं तु, स्थित महीन्द्रध्वज पुरतः ।)

मानों आकाश की भावने के निचे उत्तुंग गगन के उपरिगत धार को स्वयं करते हुए, पृथ्वीतल पर प्रतिष्ठित महान् दिशातकाय महेन्द्र ध्वज को अपने सम्मुख स्थित देखा । १०९।

हेमन्त बाल दिणपर, समथभं सुरभिवारिपटिपुष्ण ।
 दिव्य कंचण-कलसां, पडमु-पिटाणं तु पेच्छन्ति । ११०।
 (हेमन्त बाल-दिनकरसमप्रभं सुरभिवारिपरिपूर्णम् ।
 दिव्यं कंचनकलसं, पद्म-पिधानं तु प्रेक्षन्ति ॥)

हेमन्त ऋतु के उदयेमान सूर्य के समान समथभित्ताम प्रभावाली, सुरभित्त जल से परिपूर्ण, पद्म के विधान में हुके हुए दिव्य कंचन कलस की उन शिखर-जलनियों ने जोड़े स्वप्न में देखा । ११०।

कल्लि-नरिन्दरद्वन्द्वल मउपगणं निसैपियं मणभियम ।
 विगमिप पडनसत्तं, पेच्छन्ति उ हनिमिप-मणाड । १११।
 [नरिन्दरद्वन्द्वलानां, मणभियमो विगमिप पडनसत्तं, पेच्छन्ति उ हनिमिप-मणाड]

विकसित पद्मसत्तं तैः प्रेक्षन्ति तु शक्ति मणाड

दशवें स्वप्न में हृषितमना वे दशों तीर्थंकरों की माताएं स्फटिक रत्न के समान स्वच्छ जल से परिपूर्णा, भांति-भांति के पक्षि-समूहों से सेवित और विकसित पद्मसारोवर को देखती हैं । ११११।

उम्भिसहस्रपउरं, नाणाविहमच्छकच्छ भाइष्णं ।

गम्भीरगज्जियरावं, क्षीरसमुद्रं तु पेच्छन्ति । १११२।

(उर्मि सहस्र प्रचुरं, नानाविध मत्स्य कच्छभाकीर्णम् ।

गम्भीरगर्जितरवं, क्षीरसमुद्रं तु प्रेक्षन्ति ।)

तदनन्तर ग्यारहवें स्वप्न में वे प्रचुर सहस्रों लहरों से शोभायमान, अनेक प्रकार के मत्स्यों एवं कच्छपों से संकुल (भरे) और गम्भीर गर्जन करते हुए क्षीर समुद्र को देखती हैं । १११२।

वज्जमिरीइकवयं, विणिमुयंतं समूसियमुदारं ।

पासायं पेच्छन्ती पढागमालाउलं रम्मं । १११३।

(वज्र-मिरीचिकवचं, विनिमुचन्तं समुच्छित्तमुदारम् ।

प्रासादं प्रेक्षन्ति, पताकामालाकुलं रम्यम् ।)

बारहवें स्वप्न में वे जिनेश्वरों की माताएं वज्र की किरणों के कवच को छोड़ते हुए, पताकाओं की पंक्तियों से संकुल, गगनचुम्बी, विशाल सुरम्य प्रासाद को देखती हैं । १११३।

स्पष्टीकरण—प्रचलित मान्यता और सत्तरिसय ठाण प्रकरण के अनुसार जिन तीर्थंकरों के जीव विमानों से च्यवन कर मत्ता के गर्भ में आते हैं । उनकी माताएं बारहवें स्वप्न में विमान देखती हैं । जिन तीर्थंकरों के जीव नरक से आते हैं उनकी माताएं बारहवें स्वप्न में भवन देखती हैं । यथा:—नरयउट्ठाण इहं, भवणं सगगच्चु-याण उ विमाणं ।

किन्तु तित्थोगाली पद्मत्रयकार ने बारहवें स्वप्न में तीर्थंकरों की माताओं द्वारा प्रासाद अथवा नाग भवन के दर्शन का उल्लेख करते हुए स्पष्ट लिखा है कि भगवान् ऋषभदेव का जीव सर्वार्थसिद्ध विमान से च्यवन कर माता के गर्भ में आया उस समय माता मरुदेवी

१ पासाय-प्रासाद—पुं० । देवानां राजां च भवने—[भगवती, श. ५, उ. ३]

ने बारहवें स्वप्न में प्राणाद देवा । प्राणाद का अर्थ देवभवन तो होता है पर विमान नहीं । तिर्योगाली पद्यप्रकार ने बारहवें स्वप्न में नागभवन के देखने का भी उल्लेख किया है । भवनपति देवताओं के ध्यावात भवन ही कहलाते हैं न कि प्राणाद । ऐसी दशा में प्रस्तुत ग्रन्थ में उल्लिखित 'प्राणाद' कहीं विमान के अर्थ में तो प्रयुक्त नहीं हुआ है—यह विद्वानों के लिये विचार का विषय है ।

मंदरगुहगंभीरं, प्रमुह्य पक्कीलियं मणभिरामं ।

नाग-भरणं महंतं, पेच्छन्ति पीवर सिरीयं । १११४।

(मंदरगुहा गभीरं, प्रमुदित प्रकीर्णितं मनोऽभिरामम् ।

नागभवनं महान्तं, प्रोक्षन्ति पीवर श्रीकम् ॥)

बारहवा दृश्य स्वप्न :- (पद्यवा)—मंदराचल की गुहा के समान गहन गंभीर, प्रमोद यज्ञाने याला, कीटा योग्य, अत्यन्त मनोरम और प्रधान श्रीरश्मि महान् नाग भवन का देवता है । १११४।

सिद्धिंघणपञ्जलियं, बहुधावहं नियमभूद्वेष्टुत् ।

पेच्छन्ति रयणचयं, किरणावलि-नंजिय दिगो [द] हं । १११५।

(अंष्टेन्धन प्रज्ज्वलितं, बहुधावहं निजकभूति संशुक्तम् ।

प्रोक्षन्ति रत्नचयं, किरणावलि-नंजिय दिगोदग्म् ॥)

सोमेश्वरी की मरदेवी आदि दशों माताएं १३ वें स्वप्न में भूत, कपूर, धूप, मन्दन आदि अष्ट उषण में प्रज्वलित, अरने ज्वालामाला, जलमाला, ज्योति आदि सभी वास्तविक गुणों में समान धर्म के समान अपनी किरणरश्मि से उनों दिशाओं को प्रकाशित करती हुई रत्नरश्मि की देवता है । १११५।

परिणय कुतुंभ मरितां, आशुपत्तं ह्यामणजलियं ।

तसु पयगोरियजात्रे, निदु म पयफियणानचं । १११६।

(परिणय कुतुंभ मरितां, आशुपति-प्रवरं ह्यामणज्वलितम् ।

तसु-रत्नरश्मिज्वालितं, निर्भुंभ प्रदक्षिणानचम् ॥)

परिणय कुतुंभ मरितां (पयगोरियजात्रे, मरितां) तसु पयगोरियजात्रे के अर्थ में ।

चौदहवें स्वप्न में मरुदेवी आदि जिन-माताएं पके हुए आफू (खस-तिजारा) के फूल के समान, श्रेष्ठ आदृतियों से प्रज्वलित, मन्द-मन्द पवन द्वारा प्रेरित ज्वालाओं वाली प्रदक्षिणासवत निर्धू-मग्नि को देखती हैं । ११६।

एयं चौदस सुमिणं, ताउ पेच्छंति वीरजणणीओ ।

मरुदेवी प्रमुहाओ, कहिंसु नियकुलगराणं तु । ११७।

(एतान् चतुर्दश स्वप्नान्, तास्तु प्रेक्षन्ति वीरजनन्यः ।

मरुदेवी प्रमुखाः, कथयन्ति निजकुलकराणान्तु ।)

मरुदेवी आदि दशों ही वीर महापुरुषों की माताएं इन उपर्युक्त चौदह स्वप्नों को देखती हैं और अपने अपने कुलकर को अपने स्वप्न सुनाती हैं । ११७।

तो ते कुलगरनाहा, जायाओ भणंति सोहणं वयणं ।

होहिंति तुम्ह पुत्ता, किचीज्जुत्तामहासत्ता । ११८।

(ततः ते कुलकरनाथाः, जायान् भणन्ति शोभनं वचनम् ।

भविष्यन्ति युष्माकं पुत्राः, कीर्तियुक्ताः महासत्त्वाः ।)

स्वप्नों को सुनने के पश्चात् वे दशों कुलकर पति अपनी-अपनी पत्नियों को इस प्रकार के सुहावने शुभवचन कहते हैं--'तुम महान् यशस्वी और शक्तिशाली पुत्रों को जन्म दोगी ।' ११८।

ते विय अम्हारहितो, अहिया होहिंति नत्थि संदेहो ।

अहवावि कुलगराणा वि विसिट्ठतरयंतु जं ठाणं । ११९।

(ते खलु अस्माभ्योऽधिकाः भविष्यन्ति नास्ति सन्देहः ।

अथवापि कुलकरेभ्योऽपि विशिष्टतरकं तु यत् स्थानम् ।)

'वे हम से भी बढ़कर होंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है । अथवा वे कुलकरों से भी किसी विशिष्ट विरुद्ध के धारक होंगे, ऐसा इन स्वप्नों से प्रतीत होता है । ११९।

ज (अ) त्थो य पहायंमि, गयंमिस्सरे जुगंतर कमसो ।

मिहुणाण ताण पासं, सक्कीसाणागया सहसा । १२०।

(अथ न प्रमाते, सर्वं कृते कृष्यान्तर्गतं जगत्स्य ।
मिथुनानां तेषां पानेन शक्यं कर्तुं वाक्यं ।)

तदनन्तर प्रमात होने की वृत्ति के कारण कर्म से कर्मेण पर
नम पदों कृतकर मिथुनों के समान कर्मों के कारण कर्मों के कारण
पवित से अपने मन मन कर्मों के कारण कर्मों के कारण

तर्हि विष्णोर्नामो वै, सुविष्णो नामो वृत्तित्वा सुवर्गदः ।
विने उपवर्द्धसि, कर्मावली सुवर्गो नमिष्यः ॥२२॥
(तैः विनयेन ततः तौ, स्वप्न-कर्मो वृत्तौ सुवर्गदौ ।
भूवते उपविश्य, कृताञ्जल्यो सुवर्गो नमिष्यौ ॥)

तदनन्तर इन कृतकर वर्गात्तियों से विनयेन कर्मों के
पदों से उन चौदह स्वप्नों का एक पुत्रा, एक सुवर्ग कर्मों के
उन कर्मियों की हाथ बंधकर बंधे और कहने लगे, पदों

उद् एते ग्राह्यया, दिष्ट्या कल्याणदंशया सुविष्णो ।
होहिनि तुम्ह पुत्रा, उचम विष्णाण संहृता ॥२२॥
(पथा एते नानिषया, दृष्टा कल्याण-दंशया सुविष्णो ।
भविष्यन्ति वृष्माकं पुत्रा, उचम विष्णाणस्य ॥)

जिस प्रकार के ये अविष्णो कल्याण कर्मों के कारण
स्वप्न होते गये हैं, इनका एक पुत्र है, जिसका नाम सुवर्ग है
विशाल ज्ञान से सम्पन्न पुत्र एक पुत्रा कर्मों के कारण

होहिनिवु हृषाता, दत्तसुवि विष्णो वै सुविष्णो ।
दमिष्यति य विष्णमयं कर्तुं वै कर्मावली ॥२३॥
(भविष्यन्ति पृथ्वीपत्न्याः दंशया वै कर्मावली ॥
दमिष्यन्ति न विष्णमयं कर्तुं वै कर्मावली ॥)

ये कर्मावली कर्मों के कारण कर्मों के कारण
कर्मों के कारण कर्मों के कारण कर्मों के कारण
कर्मों के कारण कर्मों के कारण कर्मों के कारण

भोक्तॄण वरेभोए, रज्जं काळण दाळ दाणं तु ।
 काळण य सामण्णं, आहिंति अयरामरं ठाणं । १२४।
 (भुक्त्वा वरान् भोगान्, राज्यं कृत्वा दत्त्वा दानं तु ।
 कृत्वा च श्रामण्यं, गमिष्यन्ति अजरामरं स्थानम् ।)

“वे उत्तमोत्तम भोगोपभोगों का उपभोग कर सुदीर्घ काल तक राज्य करने के पश्चात् वर्ष भर महादान देकर श्रमण धर्म की परिपालना एवं स्थापना करेंगे और अन्त में अजरामर स्थान-मोक्ष में जावेंगे । १२४।”

एवं दोवि सुरिन्दा, सुमिण-फलं साहिळण मिट्ठणाणं ।
 अच्छह मुहंतियुत्तं, आमन्तेउं^१ गया सग्गं । १२५।
 (एवं द्वावपि सुरेन्द्रौ, स्वप्नफलं साधयित्वा मिथुनेभ्य ।
 आस्तां सुखेन इति उक्त्वा, आमन्त्रयित्वा गतो स्वर्गम् ।)

इस प्रकार दोनों सुरेन्द्र उन दशों कुलकर मिथुनों को चौदह स्वप्नों का फल बता, ‘सुखपूर्वक रहिये’—यह निवेदन करने के पश्चात् उनकी अनुज्ञा प्राप्त कर अपने-अपने स्वर्गलोक की ओर लौट गये । १२५।

अह हरिसिया कुलगरा, आदेशं^२ तं सुणेत्तु सक्काणं ।
 जणणीओ वि पमोयं, अउलं गच्छंति तं वेलं । १२६।
 (अथ हर्षिता कुलकराः, आदेशं तत् श्रुत्वा शक्रयोः ।
 जनन्योऽपि प्रमोदमत्तुलं गच्छन्ति तस्यां वेलायाम् (तां-वेलाम्) ।)

दोनों इन्द्रों द्वारा बताई गई ज्ञातव्य बातों अथवा निर्देश को सुनकर कुलकर बड़े हर्षित हुए । जिनेश्वरों की जननियां भी उस वेला में परम प्रमुदित हुईं । १२६।

१ धामतण-धामन्त्रण-न० । प्रमिनन्दने, सम्बोधने, कामचारानुज्ञारूपे ।

२ (क) आदेशो नाम ज्ञातव्य वस्तुप्रकारः; (विशेषावश्यक भाष्य)

(ख) आदिशत इत्यादेशः निर्देशे (निशीथ सू., उ. १)

तपिभिहमागंतुं, माणुसरूचं समामिया तह य ।
जिण जणणीओ सेवन्ति, देवया? उ च जयेणं । १२७

(तत्रमृति आगत्य, मानुपरूपं समाश्रिताः तथा च ।
जिन-जननीन् सेवन्ति, देवतास्तु च यत्नेन ।)

उसी समय से (देव-द्वों के लौटने ही) देव-देविया मनुष्य रूप धारण कर बड़े यत्न के साथ तीर्थ-द्वारों की माताओं की सेवा करने लगीं । १२७।

सकका देसेण तया, नाणाविहपहरणा इहिं जिणवरिं दे ।
रक्तन्ति हट्टतुट्ठा, दममुवि सेत्तेनु देवीओ । १२८।
(शक्रदेशेन तदा, नानाविधप्रहरणादिभिः जिनवरेन्द्रान् ।
रक्षन्ति हृष्ट तुष्टाः, दशम्वापि क्षेत्रेषु देव्यः ।)

शक्र की आज्ञानुसार दशों ही क्षेत्रों में देविया हृष्ट तुष्ट ही दशों गर्भस्थ तीर्थ-द्वारों की प्रहारादि प्रश्रुतियां एवं सब प्रकार के प्रश्रुतियों से रक्षा करती हैं । १२८।

संपुण्ण दोहलाओ, विचित्र सयणासणीउ सच्चाउ ।
अप्य द्वियं आहारं, सेवन्ति मणाणुहृत्तं तु । १२९।
(सम्पूर्ण दोहदाः, विचित्र उपनासन्यः सर्वास्तु ।
अल्पं हिनमहारं, सेवन्ति मनोऽनुकूलं तु ।)

तीर्थ-द्वारों की उन दशों माताओं के उल्लासगम अद्भुत जम्पा-आसनादि से । उनके समस्त दोहदों की उत्कलन प्रति हो गई । वे सब अपने मन के अनुकूल (सदैव) अल्प और हितकारी मद्यन-पानादि रहल करती थीं । १२९।

इवगय सोगमयाउ, बहमाणीउ मुहेहिं ते गम्मे ।
सणे वि पत्तवमासे, अवच गूदगन्माओ । १३०।
(अपरागन्त्रोकमयाः बहमाना सुखैस्तान् गमान् ।
प्राप्तेऽपि प्रसवमासे, अन्यत्तगूदगमास्तु ।)

१ देवता-देवता-म. । २ देवता-देवता-म. । ३ देवता-देवता-म. । ४ देवता-देवता-म. । ५ देवता-देवता-म. । ६ देवता-देवता-म. । ७ देवता-देवता-म. । ८ देवता-देवता-म. । ९ देवता-देवता-म. । १० देवता-देवता-म. ।

सब प्रकार के जोक तथा भय से रहित वे अपने अपने गर्भस्थ तीर्थङ्कर को सुखपूर्वक वहन कर रही थीं। प्रसव मास के समुपस्थित हो जाने पर भी वे अव्यक्त गूढगर्भा ही बनी रहीं। अर्थात् साधारण गर्भवतियों की तरह उनके उदर प्रसवकाल तक भी बढ़े हुए-पीवर-प्रतीत नहीं होते थे । १३०।

जह वड्ढंति सुगव्भा. सोहा तह तामि पीवरा होइ ।

अहियं च जणे मिहुणाणं. तेहि सह संगयां कुणइ । १३१।

यथा वड्ढंते सुगर्भाः, शोभा तथा तामां पीवरा भवति ।

अधिकं च जनाः मिथुनानां, ताम्यो सह संगतिं कुर्वन्ति)

ज्यों ज्यों उनके कल्याणकारी गर्भ बढ़ने लगे त्यों त्यों उनकी शोभा (ओज-तेज प्रशंसा) भी उत्तरोत्तर अधिकाधिक बढ़ने लगी और आवाल-वृद्ध यौगलिक जन अधिकाधिक उनके संसर्ग में रहने लगे । १३१।

अह नवमंमि अईए, मासे समुवट्ठिए उ दसमंमि ।

चित्त बहुल इमीए, बोलीणे पढम रत्तम्मि । १३२।

(अथ नवमे अतीते मासे समुपस्थिते तु दशके ।

चैत्र बहुलाष्टम्यां, विलीने प्रथम-रात्रौ ।)

इस प्रकार नौवें मास के व्यतीत हो जाने और दशवें मास के समुपस्थित होने पर चैत्र कृष्णा अष्टमी की प्रथम अर्द्ध रात्रि के वीत जाने के पश्चात् । १३२।

उत्तरसाढाविसए, अहसम्पत्ते निसागरे कमसो ।

पसवंति सुहेण य, सुए लक्खण-जुत्ते महासत्ते । १३३।

(उत्तरापाढाविषये, अथ सम्प्राप्ते निशाकरे क्रमशः ।

प्रसवन्ति सुखेन च, सुतान् लक्षणयुक्तान् महासत्त्वान् ।)

जत्र चन्द्रमा क्रमशः उत्तरापाढा नक्षत्र में आया उस समय मरुदेवो आदि दशों क्षेत्रों के कुलकरों को पत्नियों सभी सुलक्षणां से युक्त महासत्त्वशाली प्रतापी पुत्रों को सुखपूर्वक जन्म देती है । १३३।

नाणारयण विचित्रा, वसुधारा निडडिया पगासंती ।
गम्भीर मधुरमदो, तो दुंदुहिनाडिओ गयणो ॥३४॥
(नाना रत्न विचित्राः, वसुधारा निष्पतिता प्रकाशन्ती ।
गम्भीर मधुर शब्दः, ततो दुंदुभिनाडितो गगने ।)

बनेक प्रकार के रत्नों में प्रकाशमान् विचित्र वसुधारा का
दृष्टि हुई और देवताओं द्वारा बजाई गई देव दुंदुभिओं का मधुर एवं
गम्भीर शब्द गगन मण्डल में गूँजने लगा ॥३४॥

देवोवयण-पहाए, रयणी आसी य सा दिवस भूया ।
पमय गण गीय-बाह्य, कठक्कउजु (हु) तुड्डिमहाला ॥३५॥
(देवोवपत्न-प्रमयाः, रजनी आसीन् च सा दिवसभृता ।
प्रमदागण गीत वादित्र, कठक्कहु तुष्टि शब्दाला ।)

देव-देवियों के उपपत्त अर्थात् आगमन के कारण उनके प्रांज,
तेज, आभूषणों और विमानों का प्रभा से वह क्षेत्र कृष्णा अष्टमी की
रात्रि दिन के समान प्रकाशमान बन गई, कौकिलकण्ठिनी तुन्दरियों
के मधुरों द्वारा गाये गये गीतों की सुमधुर स्वरलहरियों एवं उनके
द्वारा बजाए गए बाद्य यंत्रों की तालपूर्ण सुमधुर स्वरि तथा प्रमुदित-
शोभाओं के कश्कहों से वह रात्रि शब्दाला अर्थात् वाचाल प्रतीत
होने लगी ॥३५॥

उद्धमहानिरियलौए, कथन्वाओ दिमा-कुमारीओ ।
उदिनाएण जिणे, जाण नाऊण नोमि हउणे ॥३६॥
(उद्धमः निर्यन् लोकैः, वाचन्वयाः दिवकुमार्यः ।
शायि ज्ञानेन जिनान् ज्ञानान् ज्ञान्वा नस्मिन् भवे ।)

उद्धमलोक, अर्थात्लोक और निर्यन् लोक में विद्यमान करने वाली
दिवकुमारियों ने अहविज्ञान से गीतोंद्वारा का सुभा जातकर वाद्ययंत्र

भोगंकरा भोगवती. सुभोगा तह भोगमालिणि सुपत्या ।
 ततो चैव सुमित्रा, अणिदिया पुष्पमाला य । १४४।
 (भोगकरा भोगवती, सुभोगा तथा भोगमालिनी सुपत्या ।
 ततश्चैव सुमित्रा, अनिन्दिता पुष्पमाला च ।)

भोगंकरा, भोगवती, सुभोगा, भोगमालिनी. सुवच्छा, सुमित्रा,
 अनिन्दिता और पुष्पमाला । १४४।

एया उ पवणेणं, सुभेण ते जन्मभूमिवणखण्डे । ।
 आलोयणं समंता, साहेति पहडयमणाए । १४५।
 (इमास्तु पवनेन, शुभेन ताः जन्मभूमि वन खण्डे ।
 आलोडनं समंतात्, शासयन्ति प्रहर्षितमनाः ।)

ये (अघोलोक निवासिनी) दिशाकुमारियां शुभ-सुखद पवन
 विकूवित कर तीर्थकरों के जन्मभवन और उसके चारों ओर एक
 योजन भूमि को बड़े हर्ष के साथ पूरी तरह परिमार्जित कर स्वच्छ
 और सुन्दर बनाती हैं । १४५।

अमणुण्ण दुरभिगंधिं, तण सक्क पर पत्त विरहियं काउं ।
 मधुरं गायंती उ, पासे चिद्धंति जणणीणं । १४६।
 (अमनोज्ञ दुरभिगंधं, तृण सिक्क परपत्र विरहितं कृत्वा ।
 मधुरं गायन्त्यस्तु. पार्श्वे तिष्ठन्ति जननीनाम् ।)

वे इस प्रमार्जन क्रिया द्वारा उस भूमि को अमनोज्ञ पदार्थों
 दुर्गन्ध, तृण, पत्रादि से रहित बनाकर मधुर संगीत गाता हुई तीर्थ
 करों की माताओं के पास उपस्थित रहती हैं । १४६।

मेहंकरा मेहवईः सुमेह तह मेहमालिणि विचित्रा ।
 ततो य तोयधारा, बलाहका वारिसेणा य । १४७।
 (मेहंकरा मेघवती, सुमेघ तथा मेघमालिनी विचित्रा ।
 ततश्च तोयधारा, बलाहका वारिसेणा च ।)

मेघंकरा, मेघघती, सुमेधा, मेघमालिनी, विचित्रा, तोयधरा, बलाहका और वारिषेणा । १४७।

(जंबू द्वीप प्रकृति में पांचवीं और छठी देवियों का नाम सुकृष्ठा और वषट्मित्रा उल्लिखित हैं ।)

नन्दणवणकूडेमुं, एयाओ उड्डलोग वत्थन्वा ।

तुरियं वि उच्चिउणं, सगज्जिय सविज्जुले मेहे । १४८।

(नन्दनवनकूटेभ्यो, एताः ऊर्ध्वलोक वास्तव्याः ।

त्वरितं विउज्जित्वा, सगर्जितसविद्युत्तान् मेघान् ।)

ऊर्ध्वलोक में नन्दनवन के कूटों पर निवास करने वाली ये देवियाँ बड़ी स्फूर्ति के साथ सुमधुर गर्जन और विजली की चमक सहित बादलों की विकुर्वणा कर । १४८।

धोवाक्खिल्ल विराहियं, सुरहिल्लविन्दुविद्रावियरेणुं ।

वाणयणं निव्वुड्ढकरं करेति वसुधातले तत्र । १४९।

(स्तोकाखिल विराहितं, सुरभिजलविन्दुविद्रावितरेणुं ।

उत्थानमनं निर्वृत्तिकरं, कुर्वन्ति वसुधातले तत्र ।)

सूनाधिपय रहित सुगन्धित जलविन्दुओं द्वारा धूम्र को जमा कर वहाँ के वृषीतल की हल्का गीना धीरे धीरे उभरना बना देती हैं । १४९।

पुणरपि जलधर कलियं, सञ्चोउ य संभवं सुरभिगंधं ।

वागंनि सुसुमवासं, सुवंगंगोहिं वा मीसं । १५०।

(पुनरपि जलधरकलित, सर्वतरुच संभवं सुरभिगंधं ।

सर्वयन्त्रि सुसुमशृष्टिं, सजंगंगीर्वाभिध्रम् ।)

सर्वतरुच से विविध वृक्षों के शाखों की विकुर्वणा कर उन धीरे धीरे उभरना-संभवं की गंध से मिश्रित जलधर-सुसुम शृष्टि की सर्वत्रय मंगल रूप से सर्वा करती हैं । १५०।

तो तं दसद्ववणं, पिण्डगयं लमायले विमले ।

सोहइ नवसरयमिवसुनिम्मलं जोइ संगमणे ।१५१।

(ततस्तदशाद्धवर्णं, पिण्डगतं क्षमातले विमले ।

शोभते नवसरमिव सुनिर्मलं ज्योतिसंगमे ।)

एक दूसरे से संलग्न पांच वर्णों का सर्वत्र छाया हुआ वह एकोभूत पुष्प समूह सूर्य को किरणों के संयोग से चकाचौंध फैलाते हुए नवसर हार के समान उस विमल वरातल पर मुशोभित होने लगा ।१५१।

तह कालागरु कुंदुरुक्क धूपमप्रमत्ते तद्विसिकं ।

काउ सुरकण्णाउ चिद्धंति पगासमाणीउ ।१५२।

(तथा कालागरुः कुंदुरुक्क, -धूपमप्रमत्ताः तद्विशिकम् ।

कृत्वा सुरकन्यकास्तु, तिष्ठन्ति प्रकाशमानाः ।)

वे दिशाकुमारियां कालागरु, कुन्दुरुक्क आदि सुगन्धित द्रव्यों से निष्पन्न धूप को जलाकर जिनजन्म-भवन की ओर सुगन्धित धूम को प्रवाहित करती हुई तथा अपने शरीर की प्रभा से दशों दिशाओं को प्रकाशमान करती हुई अप्रमत्त हो उपस्थित रहती हैं ।१५२।

णंदुत्तरा य णंदा, आणंदा णंदिवद्धणा चैव ।

विजयाय वैजयन्ती, जयन्ती अवराइआऽट्टमिया ।१५३।

(नन्दोत्तरा च नन्दा, आनन्दा नन्दिवर्धना चैव ।

विजया च वैजयन्ती, जयन्ती अपराजिता अष्टमिकां ।)

नन्दोत्तरा, नन्दा, आनन्दा, नन्दिवर्धना, विजया, वैजयन्ती, जयन्ती और आठवीं अपराजिता—।१५३।

एयाउ रूयग नगे, पुव्वे कूडे वसंती अमरीओ ।

आयंसग हत्थाओ, जणणीण हंति पुव्वेण ।१५४।

(एतास्तु रूचकनगे, पूर्वे कृटे वसन्त्यः अमर्यः ।

आदर्शक हस्ताः, जननीनां तिष्ठन्ति पूर्वेण ।)

के चक्र पर्यन्त के पूर्व-कूट पर नियास करने वाली दिक्कुमारिका
के पूर्व-कूटों को माताओं के पूर्व की ओर हाथों में धरंख लिये
रहती हैं ॥२५५॥

रुग्णे दाहिणकूटे, अष्टसमाहार मुष्पद्गुणा य ।
तत्रो य मुष्पद्गुटा, जसोधरा चैव लच्छिमई ॥२५५॥
(रुक्मिणी दाहिण कूटे, अष्टसमाहार सुप्रदत्ता च ।
तदन्व सुप्रगुटा, यशोधरा चैव लक्ष्मीमती ।)

रुक्मिणी, मध्यप्रदेशस्य पर्यन्त के दक्षिण कूट पर नियास करने वाली
बायीं ओर दिक्कुमारिका गंगाहारा, सुप्रदत्ता, सुप्रगुटा, जसोधरा
लक्ष्मीमती ॥२५५॥

• १५४ ओर १५५ तल्लु वाली उपरि लिखित की गयी
शास्त्रप्रमाण प्रति से गाथा तद्वया मूषक इन्दी देवी के
शास्त्रों की विद्यमान है :-

भोगवती त्रिप्रगुप्ता, वसुंधरा चैव गदिय
देवीग दाहिणेणं, विद्वति पगायमापीयो
(भोगवती त्रिप्रगुप्ता, वसुंधरा चैव गदिय
देवीनां दक्षिणेण विद्वन्ति प्रगीयनाः
देवीत देवजाह. इलादेवी तुलाय शुभ्रा
पउमावई णवमियाप्रदामीया य
देव्यः देवजातिः तुला य शुभ्री
पहमावती य नवमी, मद्रा, मीना

भोगवती (देववती)
हाथों में शरिखा लिये लिये
राशि हुई दक्षिण २५५
नवमिका, (मद्रा, मीना)

रुयगावर कूड निवासिणीओ पञ्चत्थिमेण जणणीणं ।
 गायन्तीउ चिड्ढंति, तालिवेटे गहेऊणं ।१५६।
 (रुचकाऽपरकूट-निवासिन्यः, पश्चिमेन जननीनाम् ।
 गायन्त्यः तिष्ठन्ति, तालवृन्तान् गृहित्वा ।)

ये रुचक पर्वत के अपर कूट पर निवास करने वाली दिक्कु-
 मारिकाएं जिनेन्द्रों की माताओं के पश्चिम पाश्वं की ओर गाती हुई
 तथा व्यंजन हाथ में लिये उपस्थित रहती हैं ।१५६।

तचो अलंबुसा, मिस्सकेसी तह पुंढरिगिणी चैव ।
 वारुणीहासा सब्बग, सिरी हिरी चैव उत्तरओ ।१५७।
 (ततोऽलंबुषा, विश्वकीर्ति तथा पुंढरीकिणी चैव ।
 वारुणीहासा, सर्वगा, श्रीश्चैव ही उत्तरतः)

रुचक पर्वत की उत्तर दिशा में रहने वाली दिशा कुमारियां—
 अलम्बुषा, मिश्रकेशी, पुण्डरीकिणी, वारुणी, हासा, सर्वगा (सर्वप्रभा),
 श्री और ही ।१५७।

चामर हत्थगयाओ, चउरामहुरभणियाओ ।
 गायंतीउ महुरं, चिड्ढंति दससु वासेसु ।१५८।
 (चामर हस्तगताः, चतुराः मधुरभाषिण्यः ।
 गायन्त्यस्तु मधुरं, तिष्ठन्ति दशसु वर्षेषु ।)

जो बड़ी ही चतुर और प्रिय भाषिणियां होती हैं वे दशों क्षत्रों
 की जिन-माताओं के चारों ओर चँवर ढुलातीं और मधुर गीत गाती
 हुई खड़ी रहती हैं ।१५८।

रुयगे विदिसाकूडेसु, चत्तारि दिसिक्कुमारीओ ।
 चित्ता य चित्तकणगा, सतेर, सोयामणि सनामा ।१५९।
 (रुचके विदिशाकूटेषु, चत्वारि दिशि कुमारिकाः ।
 चित्रा च चित्रकनकां, सतेरा सौदामिनीस्वनामा ।)

रुचक पर्वत के विदिशा कूटों पर नियास करने वाली चित्रा,
चित्रकनका, गतेरा और सोदामिनी ये चार दिक्कुमारियां । १५६।

चउत्तु दिसामु ठियाड, जिणवराण माणीणं ।
मधुरं गायंतीओ, विञ्जुज्जोयं करंति हू । १६०।

(चतुस्तु दिशाषु स्थिताः, जिनवराणां मधुराणाम् ।
मधुरं गायन्त्यः, विष्टुवृद्ध्योतं कुर्वन्ति खलु ।)

त्रिनेन्द्र नगयन्त्रों की मानाओं के चारों ओर चारों दिशाओं
में खड़ी हो मधुर गान के साथ-साथ विद्युत का प्रकाश करती
हैं । १६०।

रुपगत्त मज्जओ जे. दिसामु चचारि दिसिकुमारीओ ।
रुपगा रुपगज्जसावि य, नुरुप रुपगावइ यनामा । १६१।

(रुचकस्य मध्यतः याः दिशाषु चत्वारि दिक्कुमारिकाः ।
रुचका रुचकयशापि च. सुरूप रुचकावती यनामा ।)

रुचक पर्वत के मध्य भाग की चारों दिशाओं में रहने वाली
रुचका, रुचकयना, सुरुपा और रुचकावती । १६१।

एना उ जणणीणं चउद्दिदसि चउरमधुर भणिया उ ।
दोविय हत्थगया उ उच्चिद्वंति पगायमाणीओ । १६२।

(एतास्तु जननीनां, चतुर्दिक्कु चतुर-मधुरभणिताः ।
दोविसा हस्तगताः, उपतिष्ठन्ति प्रगायमानाः ।)

ये चारों चतुर और मधुरभणिका दिक्कुमारियां त्रिनेन्द्रों
की माताओं के चारों ओर चारों दिशाओं में गीत गाती हुई अपने
हाथों में प्रकाश हुए चित्रे खड़ी रहती हैं । १६२।

रुपगत्त मज्ज देसो, वसंति विदिशानु दिव्व देवीओ ।
चित्रपा य वेज्जयन्ती, अयन्ति अराजिया केव । १६३।

(रुचकस्य मध्यदेशे, वसन्ति विदिशानु दिव्य-देव्यः ।
चित्रपा य वेज्जयन्ती, अयन्ती अराजिता केव ।)

रुचक पर्वत के मध्य भाग में विदिशाओं में रहने वाली—
विजया, वैजयन्ती, जयन्ती और अपराजिता—ये चार दिव्य देवियां
।१६३।

नालं छेत्तूण तथा, मृणालसिरियं जिणिंद चंदाणं ।
रयण समुग्गे काउं, पससत्थ भूमीसु निहणंति ।१६४।
(नालं छित्त्वा तदा, मृणालसदृशं जिनेन्द्र चन्द्राणाम् ।
रत्न समुद्गे कृत्वा, प्रशस्त भूमीषु निःखनन्ति ।)

जिनेन्द्र बालचन्द्रों के कमलनाल के समान कोमल नाल को
काट कर, उन्हें रत्नपात्रों में रख प्रशस्त एवं पवित्र भूमि के गर्भ में
विवर खोद कर गाड़ देती हैं ।१६४।

(जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के उल्लेखानुसार विवर खोद कर नाल को
उसमें रख देती हैं और उस को रत्नों और वज्रों से ढक कर ऊपर
मिट्टी डाल हरितालिका (दूब) से विवर के मुख को बांध देती हैं ताकि
उस पर दूब उग जाने के पश्चात् कालान्तर में किसी प्रकार की
आशातना न हो ।)

हरियालियाए पेठाईं, वन्धिच्चा विवराण सव्वेसिं ।
कुव्वन्ति कदलि घरण, दाहिण्ण पुव्वुत्तरदिसासु ।१६५।
(हरितालिकाभिः पृष्ठानि बध्वा विवराणि सर्वेषाम् ।
कुर्वन्ति कदलि गृहाणि, दक्षिण-पूर्वोत्तरदिशाषु ।)

फिर वे उन सब विवरों (खड्डों) को पृष्ठ को दूब से बांधती
हैं और पश्चिम दिशा को छोड़कर दक्षिण; पूर्व तथा उत्तर इन तीनों
दिशाओं में तीन कदलिगृह बनाती है ।१६५।

तेसिं बहुमज्झदेशे, चाउस्साले तओ विउव्वेति ।
मज्झे तंसि तिन्नि य, रययंति सिंहासणवराइ ।१६६।
(तासां बहुमध्य देशे, चतुःशालकानि ततः विकुर्वन्ति ।
मध्ये तासां त्रीणि च, रचयन्ति सिंहासन वराणि ।)

* समुग्ग—समुद्रग । पाप विशेष (जीवाभिगम सटीक)

उन कवलिगृहों के निवान्त मध्य भाग में वे घ्रपानी वंदक्रिय शक्ति द्वारा चतुःमालाओं और तीनों चतुःमालाओं के मध्य तीन श्रेष्ठ मिहासनों की रचना करती है । १६६।

ताहे जिणजणणीओ, जेण महिया दाहिणीव चउमाले ।
मिहासणे ठविचा, नयपाग महम्म पाणेहिं १६७।

(ततः जिनजननीन्, येन महीयसी दक्षिणोपचतुःमाला ।
निहासने स्थापयिन्वा, गतपाक्रमहस्रपाकैभ्यः ।)

तत्र उपरान्त वे तीर्थंदरों की माताओं को दक्षिण दिशा में स्थित चतुःमाला में लजा कर मिहासन पर बैठाती हैं और गतपाक, मह्यपाक दोनों में १६६।

अज्जंगेउण तउ मणियं, गंधोदण्ण सुग्गीणं ।
उच्चट्टेउण तओ पुरदिमं नेति चउमालं १६८।
(अज्जंगेउणित्वा सतःजनैः, गंधोदकेन सुग्गिणा ।
उत्तरीयित्वा ततः पुग्गदिमं नयन्ति चतुःमालाम् ।)

पौत्रे पौत्रे उनके शरीर का अन्वेषण-नर्दन करती है । अन्वेषण के समस्त गतपाकदि तीर्थों की चिकनाहट को उनके शरीर से दूर करने हेतु सुग्गिणी गंधोदक में जिन-जननियों के शरीर का उद्वर्षण कर उन्हें पूर्य दिशा की चतुःमाला में लजाती है १६८।

तन्म ठवेउं मीहासणे सुमणिं सणमन्यणकलसेहि ।
पउमुपत्त विहाणेहिं, सुग्गि (मि) सीगेय भन्तिहिं १६९।
(तत्र स्थापयिन्वा मिहासनेषु, सुमणिकनकलन्नकल्पैः ।
पजोत्तन्विपानिं, पुग्गि सीगेदकभरितैः ।)

जरा चतुःमाला के बीच में श्रेष्ठ मिहासनों पर सुग्गिणीय कर उच्चट्ट मणियों के शरीर को तत्रों में स्थित एक एक धीमोक्षण के तत्रनों में श्रेष्ठ तथा सुग्गिणीय धीमोदक से भरे पात्रों में १६९।
नयनेणं विट्ठिया, जन्मनीओ इयदि मंडिया विट्ठिया ।
महुरदि विजयदिदि, विजयमालेहिं मनेति १७०।

(स्नापयित्वा विधिना, जनन्यः दशापि मण्डिताः विधिना ।
लघुकैर्जिनवरेन्द्राः, दिव्याभरणैः मनन्ति [मंडन्ति] ।)

दशों जिन-जननियों को विधिपूर्वक नहला कर उन्हें शृंगार चातुरी के साथ दिव्य वस्त्राभूषणों से अलंकृत करती हैं। वे छोटे छोटे दिव्य आभरणों से उन नवजात तीर्थङ्करों को भी विभूषित करती हैं। १७०।

अह उत्तरिल्ल भवणं; नेउं सीहासणे निवेशिचा ।
हरिचंदण कट्ठाइं; आणेउं नन्दणवणाओ । १७१।
(अथ उत्तरिल्लं भवनं; नीत्वा सिंहासने निवेशयित्वा ।
हरि चन्दनकाष्ठानि; आनेतुं नन्दनवनात् ।)

तदनन्तर वे उन्हें उत्तर दिशा में बनाये गये भवन की चतुःशाला में ले जाकर सिंहासन पर आसीन करती हैं और नन्दनवण से हरित चन्दन (सरस गोशीर्ष चन्दन) की लकड़ियाँ लाकर। १७१।

समिहाओ काऊणं ! अग्निहोमं करेति पययाउ ।
भूतीकम्मं काउं, जिणाणरक्खं अह करेति । १७२।
(समिधान् कृत्वा, अग्निहोत्रं कुर्वन्ति प्रयतास्तु ।
भूतिकर्म कृत्वा, जिनानां रक्षामथ कुर्वन्ति ।)

उनकी समिधा बनाती हैं। तदनन्तर वे यत्नपूर्वक हवन करने के पश्चात् भूतिकर्म कर तीर्थङ्करों की ग्रनिष्टों से रक्षा करती हैं। १७२।

तित्थयर कन्नमूले, मणिमय पासाण वट्टए^२ मसिणे ।
आफोडेंति भणेत्तिय, महिहर आऊ भवंतु जिणा । १७३।

१ हरि चंदण-देशी-कुड्कुमे, देशी षब्द नाम माला, सर्ग ८, गाथा ६५। तदि नात्रोपयुक्तम् । अत्र तु सरस-गोशीर्षचन्दनार्थे षब्दमेतत् प्रयुक्तं प्रतिभाति ।
२ वृत्तको-पापाणवृत्तगोलकावित्यर्थः ।

(तीर्थकर कर्णमूले, मणिमयपापाण वर्तकौ कृष्णौ ।
आस्फोटयन्ति भयान्ति च महिधर-आयु-भवन्तु जिनाः ।)

तदस्मान् वे मणिमय काली पापाण के दो गोल वृत्ताकार
बादों को तीर्थकरों के कर्णमूल के पास आस्फोटित (परस्पर
टकरानी) करती हुई पढ़ती हैं— हे जिवन्तु भगवान् ! आपकी
महीधर—सर्वत के समान आयु हो । १७३।

रथयमवहि ह्यर्धः, अञ्जर सा तंदृलेहि विमलेहि ।
नित्ययराणं पुरथो, करेति वट्टट्ट मंगलयं । १७४।
(रत्नमयैः ह्यर्धं, अक्षराताः तंदुर्लेविमलैः ।
तीर्थकराणां पुरतः कुर्वन्ति अष्टाष्टमंगलकम् ।)

इनके पश्चात् वे अक्षराण् चाक्षी के दंत विमल चांबलों के
शीघ्रतापूर्वक उन शीघ्रियों के सम्मुख आठ आठ अष्ट मंगलों का
निर्वाह करती हैं । १७४।

जयमलय पंचवलय, सप्तोड य सुरहि कुसुमकय पृथं ।
सुठं कोडग भयतो, चउदिमि घोमणं काती । १७५।
(जल-मयलदय पंचवर्गैः, सर्वतरुन सुरभि कुसुमकृता पूजा ।
कृत्वा कौस्तुभ भवतानि, चतुर्दिशाय घोषणामकार्षिण ।)

रत्नमयल जयमलय पंचवलय में उत्पन्न हुए, परम सुगन्धिधर
पंच प्रकार के पुष्पों से बनाया भास्विक पूर्वक उनकी पूजा की । पूजा के
पश्चात् अनेक प्रकार के कौस्तुभ किये और फिर इन प्रकार की
घोषणा की । १७५।

नित्यवर माहुरिउणो, नित्ययराण य भयोन जो पाव ।
शिवोऽज गल्लपुलि, कुहिलो निष्पानयं मयता । १७६।
(तीर्थकर-कायाविधौः, तीर्थकराणां न मन्ता यः पाव ।
शिवोऽज गल्लपुलि, कुहिलो निष्पानयं मयता ।)

“तीर्थंकरों के माता पिता और तीर्थंकरों के प्रति यदि कोई मन से भी पापपूर्ण कृत्य करने का विचार करेगा तो यह निस्संदिग्ध है कि उन का शिर सी टुकड़े होकर फूट जायगा । १७६।”

एवं उग्धोसेयुंता, तो वक्तुं जिणेय माहीए ।
ठावंति जम्मभवणे, सयणिज्जे हरिसिय मणाओ । १७७।
(एवं उद्घोपयित्वा ताः, ततः गृहीत्वा जिनेशमातृ नृ ।
स्थापयन्ति जन्मभवने, शयनीये हर्षितमनाः ।)

इस प्रकार की उद्घोषणा करके परम हर्ष मनाती हुई वे तीर्थंकरों की माताओं को जन्म भवनों में उनको शय्याओं पर लाकर लिटा देती हैं । १७७।

परिवारेउं सव्वा तो, ते सिंगार हावकलियाओ ।
गायंति सवण सुहयं, सत्तस्सर मीभरं गेयं । १७८।
(परिवार्य सर्वास्ततस्ताः शृंगार हाव कलिताः ।
गायन्ति श्रवण सुखदं, सप्त स्वर सीभरं गेयम् ।)

तदनन्तर शृंगार और हाव भाव की प्रतीक वे ५६ दिक्कुमारी महत्तरिकाएँ अपना सब दिशाकुमारियों के साथ एकत्र हो सप्तस्वर-लहरियों से सम्मोहक और श्रवण सुखद मंगलगान गाती हैं । १७८।

तत्तो जिण जणणीओ, महुरं गीयं दिसाकुमारीणां ।
सुणमाणेउं सहसा, निययाए संगयाताओ । १७९।
(ततः जिन-जनन्यः, मधुरं गीतं दिक्कुमारीणाम् ।
श्रूयमाणास्तु सहसा, निद्रया संगतास्ताः ।)

इसके पश्चात् दिशाकुमारियों के मधुर संगीत को सुनाती हुई तीर्थंकरों की माताएँ सहसा निद्रा में निमग्न हो गईं । १७९।

ताहे भवणाहिवई वीसं, सोलस य वणयराहिवई ।
चन्दाइच्चाइं गहा, सरिक्ख तारागण समग्गा । १८०।

(ततः भवनाधिपतयो विंश, षोडश च व्यन्तराधिपतयः ।
चन्द्रादित्यादिप्रहाः, नक्षत्रास्कारागण समग्राः ।)

तदनन्तर बीच भवनेन्द्रों, नौकह व्यन्तरेन्द्रों, चन्द्र, सूर्य, ग्रहों,
नक्षत्रों सहित समस्त तारागणों । ११=८१

कन्याधिवर्ता वि तथो, शोहिनाखेण जाणित्ठण जित्ठे ।
जाहं जाया मनदिय, मयंक सोमाण सुच्छा न । १८१।

(कन्याधिपतयोऽपि ततः, अथधिज्ञानेन शास्त्रा जिनात् ।
यदा ज्ञाताः समधिक मृगांकशोभनच्छाया ।)

और कलौन्द्रों ने यद्यपि ज्ञान से जब यह जाना कि चन्द्र और
मृग से भी अधिक निर्मल एवं नेत्रहीन शिरोन्द्रों का जन्म हो गया है
। ११=८१

तो हरित नगर (दृ) गिरा, सहरमपन्शुट्टिया सपरिवाया ।
सहितलनमिय चरंगा, संशुणियं सायरवरणे । १८२।

(ततः हर्षमृगादृग्मिः, सहरमपन्शुट्टियाः सपरिवायाः ।
सहितलनमिय चरंगाः, संशुणियं सायरवरणे ।)

तो वे मय हर्ष मृगमद पवन वायव्य हृद सहरमा अपने परिचार
सहित उत यह हृद सौर मृगशीघ्रत पर चरना सत्यका मुद्रा कर मही
बाहर के साथ उगरीने सोने कमी की मृगों की । १८२।

सन्निवृष्टीण सपरिवाय, हरिगिरमुच्छुषा सभर्षीया ।
विणवर्दे इट्टमना जामपिमार्गेहि जामया सुमिर्भं । १८३।

(विणवर्दे सपरिवाया, हर्षमृगादृग्मिः सभर्षीयाः ।
विणवर्दाया इट्टमनाः जामपिमार्गेहि जामयाः सुमिर्भम् ।)

मृगोंके हर्षपरिचार का भक्तिपूर्वक समर्थ करने समस्त परिचार
सहित मय मीमा हो कमी दीवानों की और विणवर्दा के चरंगों की
की मृगशीघ्रत पर चरने जिनके सपरिवाय के साथ सभर्षीया
विणवर्दा के साथ उगरीने सोने कमी की मृगों की । १८३।

हरिसियमणा सुरिंदा, जिणचंदे उयएतहिं दट्टुं ।
जाया समहियसोहा, ससिच्चदट्टुण कुमुववणे । १८४।
(हर्षितमनाः सुरेन्द्राः, जिनचन्द्रान् उदितान् तत्र दृष्ट्वा ।
जाताः समधिकशोभाः शशिमिव दृष्ट्वा कुमुदवनाः ।)

हर्षितमना देवेन्द्रों ने जब वहाँ नवोदित जिनचन्द्रों के दर्शन किये तो तत्काल उनकी शोभा-कान्ति ठीक उसी प्रकार अत्यधिक बढ़ गई, जिस प्रकार कि चन्द्र दर्शन करते ही कुमुद वन की । १८४।

जगणि सहिए जिणिंदे, नमिळण पयाहिणं काळणं ।
करयल कयंजलिपुडा, विणयेण य पञ्जुवासंति । १८५।
(जननिसहितान् जिनचन्द्रान् नत्वा प्रदक्षिणां कृत्वा ।
करतलकृताञ्जलिपुटाः, विनयेन च पर्युपासन्ति ।)

माताओं सहित जिनन्द्रों को नमस्कार कर और प्रदक्षिणा कर के वे सब हाथ जोड़ विनय पूर्वक उनकी पर्युपासना करने लगे । १८५।

अह सोहम्मे कप्पे, विसयपत्तस्स सुरवरिंदस्स ।
सक्कस्स नवरि दिव्वं, सहसा सीहासणं चलयं । १८६।
(अथ सौधर्मे कल्पे, विषय प्रमत्तस्य सुरवरेन्द्रस्य ।
शक्रस्य नवरं दिव्यं, सहसा सिंहासनं चलितम् ।)

तीर्थ-करों का जन्म होते ही सौधर्म कल्प में दिव्य देवभोगों में प्रसक्त सुरवरेन्द्र शक्र का दिव्य सिंहासन सहसा हिला । १८६।

अह ईसाणे कप्पे, विसयपत्तस्स सुरवरिंदस्स ।
ईसाणस्स वि दिव्वं, सहसा सीहासणं चलयं । १८७।
(अधेशाने कल्पे, विषयप्रसक्तस्य सुरवरेन्द्रस्य ।
ईशानस्यापि दिव्यं, सहसा सिंहासनं चलितम् ।)

इसी प्रकार ईशान कल्प में विषयासक्त सुरश्रेष्ठों के अधिपति ईशानेन्द्र का सिंहासन भी सहसा चलायमान हुआ । १८७।

ओहीए उवउत्ता, जाये ददृष्टण जिणवरं तो ते ।
पंचलिय कुंडलमउला, आसनपरयणं पमोच्चयी ॥१८८॥
(भवधिज्ञाने उपयुक्ताः जानान् दृष्ट्वा जिनवरान् तु ते ।
प्रचलित-कृण्डलमौन्य, आसनगत्नं प्रमृच्य ।)

अधभिज्ञान के उपयोग द्वारा नवजात तीर्थं करों को देखते ही
समसमाप्ति चपन कृण्डल-मृकटधर देवेन्द्र प्रपने आसन तन से उतर
कर ॥१८८॥

अह मुचदृ पयाइं, अणु (अभि) गच्छिच्चाण जिणवरं वरदे ।
अंचत्ति धामजाणुं, इयरं भूमीए निदुडुं ॥१८९॥
(अथ सप्ताष्ट पदानि, अभिगत्वा जिनवरान् वरदान् ।
अञ्चन्ति धामं जानुं, इतरं भूमौ निदुडुय ।)

जिनेन्द्र जित दिना में विद्यमान हैं, उन घोर नात आठ पद
जिनेन्द्रों के अग्निमुख जाकर याम जानु को मोड़कर तथा दक्षिण जानु
को भूमि पर टिका ॥१८९॥

पणमंति तिरंण जिणे, पुणे पुणो पागसागणेपयया ।
उद्वेज्जेण भणंतिप, वयणमिणं नेगमेसिसुरे ॥१९०॥
(प्रणमन्ति तिरना जिनान्, पुनर्पुनः पाकशासनाः प्रपताः ।
उत्थाय भणन्ति च, वचनभिर्दं नैगमेपि-सुरान् ।)

मस्तक मुकाकर के इन्द्र बार बार बड़े धाम के साथ जिनेन्द्रों
को प्रणाम करते हैं और वचनमय उद्वेक नैगमेयो देवों को इस
प्रकार के वचन बोलते हैं ॥१९०॥

पंचनु परवणं सुं, पंचनु भरहेणु दस जिणा ज्ञाना ।
कहाणो अदिसेवं, करंद विदिपं सुरगणान् ॥१९१॥
(पंचनु परवणेषु, पंचनु भारहेणु दस जिनाः ज्ञानाः ।
कारिणानोऽदिसेवं, इत्यथ विदितं सुरगणानाम् ।)

पांच ऐरवत क्षेत्रों में पांच भरत क्षेत्रों में इस प्रकार दस तीर्थंकरों का जन्म हुआ है। सब देवगणों को विदित कर दो कि हम सब उन तीर्थंकर प्रभुओं का जन्माभिषेक करेंगे । १६१।

सक्कीसाणाणत्तो, तो ते घेत्तु सुरे विसय सुत्ते ।
वयण भणंति भणिया, सुघोस घंटाए वोहेउं । १९२।
(शक्रेशाना-ज्ञातः ततस्ते गृहीतुं सुरान् विषयसुप्तान् ।
वचनं भणन्ति भणिताः, सुघोष घंटया बोधयितुं ।)

शक्र और ईशानेन्द्र के इस आदेश को सुनते ही विषयसुख में निमग्न देवताओं को इन्द्रों की आज्ञा से परिचित करने तथा उन्हें साथ लेने के लिये हरि-नंगमेपी देव सुघोष घण्टा का घोष करते हुए इस प्रकार के वचन बोलते हैं । १६२।

भो भो सुणंतु सव्वे, सुरवसहा सुरवतीण वयणमिणं ।
एग समएण जाया, दसवि जिणा दससु वासेसु । १९३।
(भो भो शृण्वन्तु सर्वे, सुरवृषभाः सुरपतीनां वचनमिदम् ।
एकसमयेन जाताः, दशोऽपि जिनाः दशपु वर्षेषु)

“हे सुरवृषभो ! देवेन्द्रों के इस निर्देश को आप सभी सुनिये”
“भरत ऐरवत आदि दशों क्षेत्रों में एक ही समय में दशों ही तीर्थंकरों का जन्म हुआ है । १६३।

ता तेसिं जम्म महो, जम्मजरामरणविप्प मुक्काणं ।
वच्चामो मणुयल्लोगं, जिणभिसेगस्स कज्जेण । १९४।
(ततः तेषां जन्म महो, जन्मजरामरण विमुक्तानाम् ।
व्रजामो मनुष्यलोकं, जिनाभिषेकस्य कार्येण ।)

जन्म-जरा-मृत्यु से सदा-सर्वदा के लिये विप्रमुक्त होने वाले उन जिनेश्वरों का जन्म महोत्सव मनाने, जिनाभिषेक का कार्य विष्णु करने के लिये हम मनुष्य लोक में जा रहे हैं । १६४।

तं तुभ्येवि नपरिपणा. आयरितएण गहिय नेवत्थ ।
 अप्पेह^१ देवराए. सविमाण गया सह वियहिं । १९५।
 (तद् वृषमपि नगरिजनाः. आर्यत्वेन गृहीत नेपथ्याः ।
 अन्वीहस्व देवराजान्, स्व विमानगताः सह वियता ।)

इसनिमे परिजन गहित आप तव भी एमे अयनरीं पर परम्परा
 ने चले प्रा रहे प्रपने प्राचार-अवहार के अनु रूप वेप धारण कर
 अपने अपने विमान पर प्राकर ही प्राकाम मे नाथ नाथ दन्वीं का
 अनुगमन करे" । १९५।

तो ते मुखरवसमा, वयणं सोऊण नेगमेसीणं ।
 जाणविमाणाऽह्ता. मक्कविमाणा ममोनरिया । १९६।
 ततः ते मुखरवसमाः, वचन श्रुत्वा नैगमेसीणाम् ।
 यान विमानाऽह्ताः. शकविमानान् समवसृताः ।)

इति नैगमेसी देवी के वचन सुनते ही वे मुखरव देवराज
 अपने अपने मानों एवं विमानों पर प्राकर ही उठते के विमानों के
 साथ निकल एकत्रित हुए । १९६।

मह वासवादि सर्वे, उच्च वे उच्चिण करिय रुचे ।
 एरावयथवल्लभिनं, कय जयसदा ममाऽह्ता । १९७।
 (मथ वासवा अपि सर्वे, उच्चगिहृदिनाः कृत्स्नयाः ।
 एरावयथवल्लभसुपं, कृतजयसदा ममाऽह्ताः ।)

इसमन्तर जयन मंडित लक्षि द्वारा मथ उनादि हुए वे
 इन्हें भी उपासने काही हुए एरावयथ एवं लीन वृषभ पर प्राकर
 हुए । १९७।

मोहेति हो वि मरुता, उच्च वे उच्चिणकि परमाणं ।
 परमाणं वससु वि, कसिसेसु सीति दूरथे । १९८।

१ देवराजदेवराज २. ३. ४. ५. ६. ७. ८. ९. १०. ११. १२. १३. १४. १५. १६. १७. १८. १९. २०. २१. २२. २३. २४. २५. २६. २७. २८. २९. ३०. ३१. ३२. ३३. ३४. ३५. ३६. ३७. ३८. ३९. ४०. ४१. ४२. ४३. ४४. ४५. ४६. ४७. ४८. ४९. ५०. ५१. ५२. ५३. ५४. ५५. ५६. ५७. ५८. ५९. ६०. ६१. ६२. ६३. ६४. ६५. ६६. ६७. ६८. ६९. ७०. ७१. ७२. ७३. ७४. ७५. ७६. ७७. ७८. ७९. ८०. ८१. ८२. ८३. ८४. ८५. ८६. ८७. ८८. ८९. ९०. ९१. ९२. ९३. ९४. ९५. ९६. ९७. ९८. ९९. १००.

(आरोहतः द्वावपि शक्रौ, उत्तवैक्रियाभिः पञ्चाशतम् ।
पञ्चाशतम् दशष्वपि, क्षेत्रेषु एन्ति द्रुतम् ।)

उत्तर वैक्रिय लब्धि द्वारा अपने अपने पचास पचास स्वरूप
वनाये हुए दोनों इन्द्र दशों क्षेत्रों में तत्काल पहुंचते हैं । १९८६।

पहय पटुपंडपोसा, सलोगवालग्गमहिंसि परिवारा ।
संपत्थियाय सुरवई, जिणाण पामूलमभिचंदा । १९९।
(प्रहत पटु पंडपोपाः स्वलोकपालाग्रमहीपि परिवाराः ।
संप्रस्थितौ सुरपती, जिनानां पादमूलमभिचन्द्राः ।)

समस्त देवपरिवार और अग्रमहीपियों से परिवृत्त वे देवेन्द्र
दिव्य वाद्यों के सुमधुर घोष के बीच नवजात तीर्थंकरों के चरणों
की सेवा में उपस्थित होने की उत्कण्ठा लिये सुरालय से प्रस्थित
हुए । १९९६।

संपत्ता य खणेषां, सुरच्छर संघ परिवुडा तहियं ।
जाया जत्थ जिणंदा, वोच्छिण्ण पुणवभवा गुरुणो । २००।
(संप्राप्तौ च क्षणेण, सुरापसरासंघपरिवृताः तत्र ।
जाताः यत्र जिनेन्द्राः, व्युच्छिन्नपुनर्भवाः गुरुवः ।)

अप्सराओं एवं विशाल देव परिवार से परिवृत्त वे देवेन्द्र पल
भर में ही उन स्थानों पर पहुँचे जहाँ बड़े लम्बे अन्तराल की व्यु-
च्छिन्ति के पश्चात् जगद्गुरु तीर्थंकरों ने पुनः धर्मतीर्थ का प्रवर्तन
करने के लिये जन्म ग्रहण किया था । २००।

पेच्छंति सव्व सकका, जिणेवि भवसागरंतरेदीवे ।
इक्खागवंस जाए, सयल जगाणंद गो हत्थं । २०१।
(प्रेक्षन्ति सर्वे शक्राः, जिनानपि भवसागरान्तरे दीपान् ।
इक्ष्वाकुवंश जातान्, सकल जगानन्दस्नेहार्थम् ।)

वहाँ वे देवेन्द्र और देवी-देवगण हर्षविभोर हो अथाह अपार
भव सागर के बीच अन्तरीपों के समान, संमस्त संसार को

प्रान्त प्रदान करने वाले श्रीर उद्धवाकु वंश में उत्पन्न हुए उन
मैत्रीवचनाय तीर्थं करो को देखते हैं । २०२।

अद्विजिण दंशणवियसिय, मुठकमलावंदिऊण जिणचंदे ।
देवगण संपरिचुडा इंद्विजिणजम्मभवणाणं । २०२।

(अथ जिनदर्शन विकसित, मुख्यकमलाः वंदित्वा जिनचन्द्रान् ।
देवगण संपरिचुताः, इन्द्राः जिन-जन्मभवनानाम् ।)

जिनेन्द्र भगवन्तों के दर्शनजन्य हर्षान्तिरेक से प्रफुल्लित बदनार-
विन्द एवं देवचन्द्र से परिचुत चन्द्रों ने दशों तीर्थं करो को वन्दन कर
जिनेन्द्रजन्म प्रानादों के । २०२।

बह पासे टाऊणं, भणंति सेणावहं पयत्तेणं ।
जणणीण नगासाथो, आणंठ जिणं विणाणणं । २०३।

(अथ पाश्वे स्थित्वा, भणन्ति सेनापति प्रयत्नेन ।
जननीनां तकासात्, आनय जिनान् विनयेन ।)

तास अवस्थित हुए थीर उन्होंने शक संन्य के सेनानो परि-
संगमेषो देव को आदेश दिया कि ये पूरा वित्तय पूर्वक तपसात्
तीर्थं करो को उनकी माताओं के पास में पूरी सावधानी के साथ से
जाये । २०३।

तो से ददिसिगवपण, ताद्विऊण अहो मुदी जिणचरिंदे ।
धिणं विणाथ विणया, उययंति महत्तनयणाण । २०४।

(नन्दो हर्षितवचनाः साक्षी भयित्वा अहोः मुदीन् जिनचरेंद्रान् ।
स्थितान विज्ञानविनयेन, उपनयन्ति महत्तनयनानाम् ।)

रम्यो की धरणी को महर्षे निरीक्षण कर जिनके विधि के
विशेषार्थ ही नन्दमेषो देव मुपस्थित्य विनेन्द्रों का दर्शो के पास
जाये । २०४।

अथ ते देवानावहं, नयणनयनेदि जिणचरे तप्या ।
ने वि विपयंतीकमसा, विमुदयणसोदभाद्विगमौसे । २०५।

(अथ ते देवानां पतयः, नयनसहस्रैः जिनवरान् तदा ।
नापि तृप्यन्ति ईक्षन्तः त्रिभुवनशोभाभ्यधिकशोभान्)

श्रीलावय की समस्त शोभाओं की अपेक्षा भी अन्यधिक उत्कृष्ट शोभाशाली उन तीर्थंकरों को अपने अपने हजार नेत्रों से निरन्तर देखते हुए भी वे सब इन्द्र अपने आपको पूर्ण तृप्त अनुभव नहीं कर रहे हैं । २०५।

तो पणमीउ जिणिदे, इंदा परमेण भक्तिराएण ।
पगया वेत्तू ण जिणे, पंचप्पाणे विउव्वेति । २०६।
(ततः प्रणम्य जिनेन्द्रान्, इन्द्राः परमेण भक्तिरागेण ।
प्रगताः गृहित्वा जिनान्, पंच[धा]आत्मानं विकुर्वन्ति ।)

तदनन्तर वे इन्द्र परम भक्तिराग से जिनेन्द्रों को प्रणाम करते हैं और जिनेन्द्रों को लेकर प्रस्थित होते हैं । प्रत्येक इन्द्र वैक्रिय शक्ति द्वारा अपने पांच पांच स्वरूप बनाता है । २०६।

गहिय जिणिदो एक्को, दो दो पासेसु चामरे सच्छे ।
धवला य चत्त हत्थे, एक्केक्केत्थ वज्ज धरे । २०७।
(गृहितजिनेन्द्र एकः, द्वौ द्वौ पार्श्वेषु चामराः स्वच्छाः ।
धवलारच चतुर्हस्तेषु एकैकेऽथ वज्रधराः ।)

एक एक इन्द्र ने जिनेन्द्रों को अपने कर्पल्लवों में ग्रहण किया । प्रत्येक तीर्थंकर के दोनों पार्श्वों में दो दो इन्द्र चँवर हुलाते हुए चलने लगे । पार्श्वस्थ चारों इन्द्र चार हाथों में स्वच्छ सफेद चँवर और चार हाथों में वज्र ग्रहण किये हुए थे । २०७।

चउव्विहं देवसमग्गा, ते सक्का तिव्व जाय परितोसा ।
उप्पइरुणागासां, सुमेरु संपट्टिया तुरियं । २०८।
(चतुर्विध देवसमग्राः, ते शक्रा तीव्रजातपरितोषाः ।
उत्पत्याकाशं सुमेरु संप्रस्थिताः त्वरितम् ।)

वे वंमानिक, ज्योतिष्क, भवनपति और वाणव्यन्तर—चारों प्रकार के समस्त देवसमूह एवं इन्द्र उत्कट आह्लाद का अनुभव करते

हुए आकाश में उड़े और मनोवेग से सुमेरु पर्वत की ओर प्रयत्न
हुए । २०६।

तो बाल जिणवर्दिदे, उयगायंता सुग सपरिवाग ।
वृच्छति मुह्य मणसा, पुरओ सञ्चाहिगारेण । २०९।
(ततः बालजिनवरेन्द्रान् उपगायन्तः सुगः परिवागः ।
व्रजन्ति मुदितमनसा, पुरतः सर्वाभिकारेण ।)

उन नवजात दशों तीर्थेश्वरों के घागं वाग सपरिवार मुविषाम
पुरलपह मपनी समस्त दिश्य देवद्वि के डाट के साथ तीर्थं करों की
महिमा के गीत गाता हुआ मुदित मन हा आकाश मार्ग ने चलने
सगा । २१६।

पंचणहं वि मेरूणं गिरिवरमिहरे खणेष मंपचा ।
कंचण दमोवयेण, सञ्चेउय पुष्क पल भरिण । २१०।
(पंचानामपि मेरूणां गिरिवरशिखरे क्षणेन संप्राप्ताः ।
कंचन द्रु मोपपेते, सर्वतु कं पुष्पफलमरिते ।)

जिने-द्रों को लिये हुए वे देव-देवेन्द्र सब ऋषुओं के पुष्प-फलों
में लदे स्वर्ण-वृक्षों से सुशीभित पांचों ही सुमेरु पर्वतों के गिरियों पर
क्षण भर में ही पहुँच गये । २१०।

पंचणहं वि मेरूणं एकैकेकं होइ पंहुगवणं तु ।
लञ्जइ तेलोककस्त वि, लञ्जइ संपिंहिया तेषु । २११।
(पंचानामपि मेरूणां, एकैकं भवति पाण्डुकवनं तु ।
लञ्जति त्रैलोक्यस्यापि, लक्ष्मीं संपिंहिता तेषु ।)

पांचों ही एक-एक पर्वतों में से प्रत्येक पर एक एक पाण्डुकवन है,
जिनकी सीमा थी के समस्त लोकों लोक की एक-एक विप्रीभूत लक्ष्मी
भी सञ्चित हो जाती है । २११।

साग वहुमज्ज देसे पूला जिणमवणमोहिया रम्मा ।
केरुडिय विमलत्तरा, पंचहुग वीपणु चिदा । २१२।

(अथ ते देवानां पतयः, नयनसहस्रैः जिनवरान् तदा ।
नापि तृप्यन्ति ईक्षन्तः त्रिभुवनशोभाभ्यधिकशोभान्)

श्रीलावय की समस्त शोभाओं की अपेक्षा भी अन्यधिक उत्कृष्ट शोभाशाली उन तीर्थंकरों को अपने अपने हजार नेत्रों से निरन्तर देखते हुए भी वे सब इन्द्र अपने आपको पूर्ण तृप्त अनुभव नहीं कर रहे हैं । २०५।

तो पणमीउ जिणिदे, इंद्रा परमेण भक्तिराएण ।
पग्गया धेतूण जिणे, पंचप्पाये विउव्वेति । २०६।
(ततः प्रणम्य जिनेन्द्रान्, इन्द्राः परमेण भक्तिरागेण ।
प्रगताः गृहित्वा जिनान्, पंच[धा]आत्मानं विकुर्वन्ति ।)

तदनन्तर वे इन्द्र परम भक्तिराग से जिनेन्द्रों को प्रणाम करते हैं और जिनेन्द्रों को लेकर प्रस्थित होते हैं । प्रत्येक इन्द्र वैक्रिय शक्ति द्वारा अपने पांच पांच स्वरूप बनाता है । २०६।

गहिय जिणिंदो एक्को, दो दो पासेसु चामरे सच्छे ।
धवल्ल य चत्त हत्थे, एक्केक्केत्थ वज्ज धरे । २०७।
(गृहितजिनेन्द्र एकः, द्वौ द्वौ पार्श्वेषु चामराः स्वच्छाः ।
धवलाश्च चतुर्हस्तेषु एकैकेऽथ वज्रधराः ।)

एक एक इन्द्र ने जिनेन्द्रों को अपने कर्णपल्लवों में ग्रहण किया । प्रत्येक तीर्थंकर के दोनों पार्श्वों में दो दो इन्द्र चैवर हुलाते हुए चलने लगे । पार्श्वस्थ चारों इन्द्र चार हाथों में स्वच्छ सफेद चैवर और चार हाथों में वज्र ग्रहण किये हुए थे । २०७।

चउव्विह देवसमग्गा, ते सक्का तिव्व जाय परितोसा ।
उप्पइङ्गणागासां, सुमेह संपट्टिया तुरियं । २०८।
(चतुर्विध देवसमग्राः, ते शक्रा तीव्रजातपरितोषाः ।
उत्पत्याकाशां सुमेहं संप्रस्थिताः त्वरितम् ।)

वे वंमानिक, ज्योतिष्क, भवनपति और वाणव्यन्तर—चारों प्रकार के समस्त देवसमूह एवं इन्द्र उत्कट आह्लाद का अनुभव करते

हृद्ग आकाश में उड़े और मनोवेग से सुमेरु पर्वत की ओर अग्रसर हुए । २००॥

तो बाल जिणवर्दिदे, उवगायन्ता सुग सपरिवारा ।
वन्चन्ति मुद्ग्य मणसा, पुरधो सञ्चाहिगारेण । २०१॥
(ततः बालजिनवरेन्द्रान् उपगायन्तः सुराः परिवाराः ।
व्रजन्ति मुदितमनसा, पुरतः सर्वाश्रितारण ॥)

उन नवजात देवों तीर्थेण्वरों के आगे आगे सपरिवार सुविशाल मृगमह प्रपनी समस्त दिव्य देवद्वि के ठाट के साथ तीर्थेण्वरों की महिमा के गीत गाता हुआ मुदित मन हा आकाश भाग से चलने लगा । २१६॥

पंचण्हं वि मेरुणं गिरिवरसिहरे खणेष मंपत्ता ।
कंचण दनोववेण, सञ्चेउय पुष्प फल भणिए । २१०॥
(पंचानामपि मेरुणां गिरिवरसिखरं क्षणेन संप्राप्ताः ।
कंचन द्रुमोपपेते, सर्वर्तुकं पुष्पफलभणिते ॥)

हिमेशों को लिये हुए वे देव-देवेंद्र सब ऋतुओं के पुष्प-फलों से सभे स्वर्लोकों से सुजीभित पांचों ही सुमेरु पर्वतों के सिखरों पर आए पर में ही पहुँच गये । २१०॥

पंचण्हं वि मेरुणं एककेकं ढोइ पंडुगवणं तु ।
लज्जहं मेरुभ्रुकण वि, लज्ज्ही संपिडिया तेषु । २११॥
(पंचानामपि मेरुणां, एकैकं भवति पाण्डुकवनं तु ।
लज्जति प्रैशोक्यस्यापि, लक्ष्मी संपिडिता तेषु ॥)

पांचों ही नवेर पर्वतों में से प्रत्येक पर एक एक पाण्डुकवन है, जिससे लोपा धी के समझ लीनों लोक की एक-एक पिण्डीभूत लज्जनी भी लज्जित हो जाती है । २११॥

सम बहुसंख्य देवों द्वारा जिणमत्रणसोदिया रम्मा ।
केशविय विभक्तया, पंचद्वय ज्ञायतु चिदा । २१२॥

(तेपां बहुमध्यदेशे, चूलाः जिनभवनशोभिताः रम्याः ।
वैदूर्य विमलरूपाः, पंचाष्टक योजनोद्भिद्धाः)

उन पाण्डुकवनों के विलकूल मध्य भाग में जिन-भवनों (जिन मन्दिरों) से सुशोभित, वंडूयं मणि की स्वच्छ श्वेत अति रमणीय पांच योजन चौड़ी और आठ योजन लम्बी, चूलाएं हैं । २१२।

पंचणहव मेरूणां, चूला एक्केक्किया मुण्येयच्चा ।
सासय जिणभवणाओ, हवंति पंचेव चूलाओ । २१३।
(पंचानामपि मेरूणां, चूला एकैकाः मुनेतव्या ।
शाश्वतजिनभवनात्, भवन्ति पंचैव चूलाः ।)

पांचों ही मेरु पर्वतों की एक एक चूला जाननी चाहिये । वे पांचों चूलाएं शाश्वत जिन-भवन स्वरूपा होती हैं । २१३।

वारस जोयण पिहुलाओ, ताओ ठवणं तु जोयणे चउरो ।
तासिं चउदिसिं पि य, सिलाउ चत्तारि रंमाउ । २१४।
द्वादशयोजनपृथुलाः, ताः स्थापनं तु योजनानि चत्वारि ।
तासां चतुर्दिग्स्वपि च, शिला, चतस्रः रम्याः ।)

प्रत्येक चूला १२ योजन पृथुल अर्थात् मोटी तथा चार योजन स्थापना (आधार शिला) वाली होती हैं । उन पांचों चूलाओं के चारों ओर चारों दिशाओं में बड़ी ही सुन्दर चार शिलाएं होती हैं । २१४ः

पंचसयायाभाओ, मज्झे दीघतणद्धरुंदाओ ।
चंदद्धसंठियाओ, कुमुदवरहार गोराओ । २१५।
(पंचशतायामाः, मध्ये दीर्घतायाद्धरुंदाः ।
चन्द्रार्द्धिसंस्थिताः, कुमुदवरहारगौराः)

उनमें से प्रत्येक शिला ५०० योजन विस्तार वाली, मध्यभाग में स्थूल तथा उत्तरोत्तर मुटाई में घटते घटते अन्त में तृण के अर्धभाग तुल्य मोटी, चन्द्राकार तथा श्रेष्ठ कुमुद पुष्प के हार सदृश गौरवर्ण की होती है । २१५।

तथा भरत एवं ऐरवत क्षेत्रों में, बाल्यकाल में पूर्णचन्द्र के समान मुख वाले तीर्थङ्करो का जन्म होने पर देवताओं द्वारा उत्तर को श्रोर स्थित शिलाओं पर जन्माभिषेक किया जाता है । २१६।

अह सो सौहर्मवती, सहिओ वत्तीस सुरवरिंदेहिं ।

दक्खिण-सिलाउ पंचवि, सहस्स पत्ताणणा पत्तो । २२०।

(अथ सः सौधर्मपतिः, सहितः द्वात्रिंशैः सुरवरेन्द्रैः ।

दक्षिण शिलापु पंचापि, सहस्र पत्राननाः प्राप्ताः ।)

तत्पश्चात् ३२ इन्द्रो सहित सहस्राक्ष सौधर्मन्द्र पांचो दक्षिण दिशिस्थ शिलाओं पर पहुँचा । २२०।

अह सो ईसाणवती, सहिओ वत्तीस सुरवरेन्द्रैः ।

उत्तरसिलाउ पंच वि, सहस्स पत्ताणणो पत्तो । २२१।

(अथ स ईशानपतिः, सहितो द्वात्रिंश-सुरवरेन्द्रैः ।

उत्तरशिलापु पंचापि, सहस्र पत्राननाः प्राप्ताः ।)

इसके पश्चात् ईशान देवलोक का अधिपति ईशानेन्द्र भी वत्तीस इन्द्रो सहित उत्तर दिशा में स्थित पांच शिलाओं पर पहुँचा

। २२१।

तो तत्थ पवर कंचण, -मयंमि सिंहासणे निवेशित्ता ।

इंदो जिणिंदचंदे, उच्चंगोहि वहेसी य । २२२।

(ततः तत्र प्रवर कंचनमये सिंहासने निवेशयित्वा ।

इन्द्रो जिनेन्द्र चन्द्रान्, उत्संगैः वहन्ति च ।)

तदनन्तर वहां उत्कृष्ट कोटि के स्वर्ण से निर्मित सिंहासनों पर निवेशित (स्थापित) कर इन्द्र ने उन जिनेन्द्रचन्द्रों को अपनी गोद में धारण किया । २२२।

वज्जंति सुरवरिंदो, उच्चंगगए जिणे धरेमाणो ।

अभिनव जाए कंचण, दुमेव्व हिमपवर-धरिमाणो । २२३।

(द्वाजन्ति सुरवरेन्द्राः, उत्संगगतान् जिनान् धार्यमाणः ।

अभिनवजातान् कंचन द्रु मानिव हिमप्रवरः धार्यमाणः ।)

गोट में विराजमान जिनेन्द्रों की धारण किये हुए उग्र मर्जा-
रूप कानन वृक्षों की धारण किये गिरिराज त्रिवाट्टि के समान
मुजोमित हो रहे थे । १२२३।

बह अच्युतकल्पवती, ध्रुवकलि कलुषाणां जिणवर्दिदाणं ।
अभिसेवं काउमणो, अभिजोने सुखरे भणइ । १२२४।

(मथ अच्युतकल्पपतिः, ध्रुवकलिकलुषाणां जिनवरन्द्राणाम् ।
अभिपेकं कर्तुं मना, अभियोगिकान् सुखरान् भणति)

नदनन्तर दुष्टियों की कालिमा को धो जाने वाले जिनवरों
का जन्माभिषेक करने की अभिन्ताया में अच्युत कल्प नामक स्वर्ग के
इन्द्र ने घाते में एक सुरधरोटों की प्राप्ति प्राप्त । १२२५।

दिव्यपरियामहादह, चउ उदहियलं च दिव्य कुमुवं च ।
आगेह इहं सिग्वं, जं वि य इहमभिसेण । १२२५।

(नीर्भनरिनामहादह, चतुरुदधिजलं च दिव्य-कुमुवं च ।
आनयन इह धीमि, यदपि चैहमभिपेकं ।)

सोर्ष-नरिनी, महादहों तथा घाते मधुश्री का शक्त, दिव्य
सुर सुर्ष जन्माभिषेक के लिये अभीष्ट सभी प्रकार की सामग्री
सोर्षाभिर्तोष विचार प्राप्ति । १२२५।

ममं पहिचियलणं, सुखरवत्तभाणं तं सुग वयगं ।
आणोवं विमल मलिलं, तत्वेणुं जहूया ठागेणुं । १२२६।

(सुखरु प्रधीन्त्य, सुखरवत्तभाणां तन् सुग वयनम् ।
आनयन्नि विमल मलिलं, तत्वेणुः पर्योक्त स्थानिभ्यः ।)

सुखरवों के लिये जो अभिषेक प्राप्ति सुखरवत्त सुर्ष विचरी-
ममं तन् देवताओं की सामग्री, स्वर्गों में विमल मल मल है । १२२६।

सुखरु पहिचियलणं, सुखरियालिय कुमुमं च सुणो ।
आगेहि मे पहियं, उह नजहवह मरिदि सुग । १२२६।

(सर्वौषधिसिद्धार्थं, गहनमलीकं कुमुमकं च चूर्णान् च ।
आनयन्ति ते पवित्रं, द्रहनदीतटतः महेन्द्र-सुराः ।)

महेन्द्र स्वर्ग के वे सुरगण द्रहों और महानदियों के तटों से
सर्वौषधि सिद्ध पवित्र एवं शुद्ध पुष्प और चूर्ण लाते हैं । २२७।

ता अच्युय कप्पवई, सुवन्नमणिरयणभोम कलसेहिं ।

पउमुप्पलपिहाणेहि, कुसुम गंधुदग भरिएहि । २२८।

(ततः अच्युतकल्पपतिः, स्वर्णमणिरत्नभौमकलशैः ।

पन्नोत्पलपिधानै, कुसुमगंधोदकभरितैः ।)

अभिषेक हेतु आवश्यक सभी सामग्री को जुटाने के पश्चात्
अच्युतेन्द्र पुष्पों की सम्मोहक सुगन्धियों से सुवासित जल से पूर्ण एवं
पन्नपत्रों से ढके स्वर्ण, मणि, रत्न और (अलभ्य) मिट्टी के कलशों
द्वारा—। २२८।

अभिसिंचइ दसवि जिणे, सपरिवारो पहड्ड मुहकमलो ।

पहय पडुपडह, दुंदुहि जयसद्दुघोसणरवेणं । २२९।

(अभिसिंचति दशानपि जिनान्, सपरिवारः प्रहृष्टमुखकमलः ।

प्रहत पडु पडह, दुंदुभिजयशब्दोद्घोषणरवेण ।)

परिवार सहित हर्षोत्फुल्लवदन मुद्रा में प्रताडित दिव्य पटहों,
दुंदुभियों आदि वाद्यों की सुमधुर ध्वनि और "जय-जय" के गगन-
भेदी घोषों के बीच दसों ही जिनेश्वरों का जन्माभिषेक करते हैं
। २२९।

गोसीसचंदणरसं, सुमणं सोहावियं य दिव्वं च ।

सलिलं च तेयजणणं, जिणाणं उवरिं वुहंति सुरा । २३०।

(गोशीर्षचन्दनरसं, सुमनंज्ञं शोभावितं च दिव्यं च ।

सलिलं च तेजजननं, जिनानामुपरि वाहयन्ति सुराः ।)

सुरवृन्द उन जिनेश्वरों पर आह्लाद शोभा और तेजवर्द्धक
दिव्य गोशीर्ष चन्दन का रस तथा जल वर्षाते हैं । २३०।

सुरसहियकलसमुहः-निग्गाण गंधोदण विमलेण ।
 पउमनहहनिग्गय, गंगासल्लिह सरिसेणं ।२३१।
 (सुरगृहीतकलसमुहनिर्गतं गंधोदकेन विमलेन ।
 पउमहाद्रहनिर्गतगंगासल्लिहोविमदयेन)

पय महाद्रह से उद्गत गंगा महान् जलप्रवाह के समान देव-
 तापों के हाथों में ग्रहण किये गये अपरिमित कलनों के मुंह में
 निकले पवित्र सुगन्धित जल की धाराओं के— ।२३१।

उपरिं निवटं तेणं, बालजिणे तेयरामिं संपण्णे ।
 अधियं दिप्पंति तहिं, पयपरिमित्तं हुयवहेव्व ।२३२।
 (उपरि निपतं तेन, बालजिनाः तंजगरामपत्नाः ।
 अधिकं दिप्यन्ति तत्र, पयपरिमित्तः द्रुतवह इव ।)

उत्तमांग और सभी पत्नीय पर गिरने के फलरूप में सभी
 पतुजात तीर्थंकर गोजोपूत में सम्पन्न हो पुनर्निश्चित प्रमि की
 बपाला के समान यहाँ अप्रिकापिक देदीप्यमान होने लगे ।२३२।

नो जिणवराभिसेण, नट्टंति विविह रूपवेणधरा ।
 समुगामुगान्धर्या, समिद्धविज्जादग मुट्टया ।२३३।
 (नतः जिनवराभिषेके नृत्यन्ति विविधरूपवेणधराः ।
 समुगामुगान्धर्याः, समिद्धविधाधराः मुदिनाः।)

सर्वजन्तु जिनवरा के जन्माभिषेक में सुर, असुर, सम्भरं,
 विद और विदाधर प्रमुदित हो अपने-अपने प्रकार के रूप रूप रूप धारण
 कर नृत्य करते हैं ।२३३।

नवविभवं धुण्णमित्तं, वज्जेवाहंति कोट् सुरवमहा ।
 गावोति ससिमारं, नवसरसीभरं मेणं ।२३४।
 (नव विभवं धुण्णमित्तं वायं वाट्पन्ति केचित् सुरवपमाः ।
 गावोति ससिमारं, नवसरसीभरं मेणम् ।)

१. नव वर सभी धुण्णे वदुणे वपेते ।

अनेक सुरश्रृंष्ट गगन को गुंजरित कर देने वाली ताल के साथ, सघन वारिद घटा के गर्जन तुल्य गम्भीर घोष करने वाले वाद्य यन्त्र बजाते हैं तथा कतिपय देव शृंगार रस से ओत-प्रोत सातों स्वरो में अति मधुर सम्मोहक गीत गाते हैं । २३४।

चउ अभिणय संजुक्तं, उणयालीसं-गहार पट्टिपुण्णं ।

सुललिय पय विच्छेदं, नट्टं दाइंति तत्थ सुरा । २३५।

(चतुराभिनयसंयुक्तं, एकोनचत्वारिंशदंगहार प्रतिपूर्णम् ।

सुललितपदविच्छेदं, नाट्यं दापयन्ति तत्र सुराः ।)

जिनजन्म महोत्सव के उस पवित्र एवं सुखद स्वर्णिम सुअवसर पर कतिपय देवगण चारों प्रकार के अभिनय से संयुक्त, उनचालीस प्रकार की भावपूर्ण अंगभंगिमाओं से परिपूर्ण और परम लालित्य से ओतप्रोत अति मुन्दर नाट्यः प्रस्तुत करते हैं । २३५।

वग्गंति फोडयंति य, तिवइं छिंदंति विविधवेसधरा ।

वासंति जलधराइं य सविज्जुयं सथणियं तहिं अण्णे । २३६।

(वल्गन्ति स्फोटयन्ति च त्रिपदीं छिन्दन्ति विविधवेपधराः ।

वर्षन्ति जलधराः च, सविद्युतं सस्तनितं तत्र अन्ये ।)

अनेक प्रकार के वेष धारण किये कतिपय देव मदोन्मत्त हाथियों की तरह चिंघाडते, कई देव वायु को प्रकम्पित कर देने वाली ध्वनि के साथ खम्भ ठोकते, कतिपय देव त्रिपदी का विच्छेद करते एवं कतिपय देवगण वादलों की गड़गड़ाहट एवं बिजली की चकाचौंध के साथ जलधाराओं को वर्षा करते हैं । २३६।

हयहिंसिय गयगज्जिय, रह घणघण सीहनाय जय सहे ।

कुणमाणेहिं सुरेहिं, रसईव य गगणं दलइ भूमी' । २३७।

(हयहिंसित, गजगर्जित (वल्गित) रथ-घणघण सिंहनाद जयशब्दानि क्रियमाणैः सुरैः हसस्ततीव च गगनं दलति भूमिः ।)

१ "रसइ गगणंगणं दलइ भूमी" इति पाठे सति चमत्कृति सविशेषा शोभते ।
(रसति गगनांगनं दलयति भूमिः)

तो उग्गासिद्धयम्, -सञ्चोसहि कुमुम न्हाणवासेहिं ।
 अच्युय इंदो दमसुवि. जिणाभिसेयं करेसिण्हं ।२४१।
 ततः उदक-सिद्धार्थक-सर्वोपधि-कुमुम-स्नान-वात्रेभ्यः ।
 अच्युतेन्द्रः दशष्वपि' जिनाभिपेकं करोति स्म ।)

तत्पश्चात् दसों ही स्थानों पर अच्युतेन्द्र सिद्धार्थक, सभी प्रकार की श्रीपधियों, कुमुमों, स्नान एवं वस्त्रादि से दसों ही तीर्थद्वारों का जन्माभिषेक करते हैं ।२४१।

अवसेसावि सुरवति, तेणैव कमेण पाणयाईया ।
 सन्विट्ठीए सपरिसा, जिणाभिसेयं करेसिण्हं ।२४२।
 अवशेषा अपि सुरपतयः, तेनैवेमया^२ प्राणतादिकाः ।)
 सर्वर्द्धा सपरिपदया, जिनाभिपेकं कुर्वन्ति स्म ।)

अच्युतेन्द्र द्वारा किये जिनजन्माभिषेक के अनुसार उसी विधि से शेष इन्द्र भी अपने अपने सुरसमाज और उत्कृष्ट ऋद्धियों के साथ उन दसों ही जिनेश्वरों का जन्माभिषेक करते हैं ।२४२।

जाहे कया सञ्चेहिं, अभिसेया देव दाणवेहिं वा ।
 सक्कीसाणा दोन्नि वि, धवलवसहसिगंधारा हिं ।२४३।
 (यदा कृता सर्वैः अभिषेकाः देव-दानवैर्वा
 शक्रेशानौ द्वात्रपि, धवल वृषभशृंगधारिभः^३ ।)

सभी देव-दानवेंद्रों द्वारा उक्तविधि से जन्माभिषेक सम्पन्न हो जाने के अनन्तर शक्र तथा ईशानेन्द्र ने इवेत वृषभों के के शृंगों से निकली जलधाराओं से जिनेश्वरों का अभिषेक किया ।२४३।

चउ उदहि सलिल सरिया, जलं च वसभेसु पक्खिवति सुराः ।
 असुरसुरच्छरसहिथा, जिणाभिसेयं करेउणं ।२४४।

१ मध्याहारेण 'स्यानेपु'—इति वाच्यम् ।

२ मध्याहारेण 'विधिना'—इति वाच्यम् ।

३ "जिनाभिषेकं कृतः ।" इत्यध्याहारेणान्न ग्राह्यम् ।

(चतुर्दधिमल्लिसरिता-जलं च वृषभेषु प्रक्षिपन्ति सुराः ।
असुर-सुर-अप्सरा सहिताः, जिनाभिषेकं कृत्वा ।)

देवताओं चारों महासागरों और महानदियों का जल वृषभों पर डालते हैं । असुरों, सुरों और अप्सरामों सहित जिनाभिषेक सम्पन्न करने के पश्चात् । २४४।

पम्पुट सुयंत्र सुमन य, वक्ष्येण जिगाश अंगुर्वंग गयं ।
अवगंडण जलरयं, सहस्सनयना पयत्तेणं । २४५।
परिमल-सुगंध-सुमनदन, वस्त्रेण जिनानामंगोपांगगतम् ।
अयनीत्वा जलरजं, सहस्त्रनयनाः प्रयत्नेन ।)

पद्मपराग, सुगन्धित पुष्पों से निमित्त अंगराग एवं यन्त्रादि ने
जलों ने कुम्भनतापूर्वक जिनेश्वरी के अंगोपांगों पर लगे जल और
विधिष ओषधियों के रजकणों को परिमाजित कर—। २४५।

हरिन्दणानुलिखे, दिव्याभरणह् भूमणे काठं ।
सकका कृणंति तेषां, सीतपञ्जावहाग दी । २४६।
(हृदि चन्दनानुलिखानि, दिव्याभरणानि हि भूषणानि कृत्वा ।
जलाः कुर्वन्ति तेषां, शीर्षपर्यावहागदीनि ।)

दिव्य यस्वाभूषणों को-हरनाल लिख से लिखा और उनसे
शिवेश्वरी का शरीर-गिरा चूना कर किया । २४६।

कोउगसथाई विधिणा, काउणं जिणवराण सुहकमलं ।
न हि विष्येतीकरांता, अचिह सदस्सेहि देविदा । २४७।
(कृतुक श्रानानि विधिना, कृत्वा जिनवराणां सुखकमलम् ।
नासि वृष्यन्तीशान्ताः, वासि सहस्रैः देवेन्द्राः ।)

तो देव दाणविंदा, स अच्छरा सपरिसा पहहुमणा ।

अभिसंशुणंति पयया, थुइ सय परिसंशुए वीरे ।२४८।

(ततः देवदानवेन्द्राः सारसयः सपरिपदाः प्रहृष्टमनाः ।

अभिसंस्तुवन्ति प्रयताः, स्तुतिशत परिसंस्तुतान् वीरान् ।)

तत्पश्चात् अस्सराग्रों एव अपनी परिपद् सहित देवेन्द्र श्रीर दानवेन्द्र हर्ष विभोर हो सैकड़ों स्तुतियों से अभिसंस्तुत उन वीर शिरोमणि दशों तीर्थं करों की यत्नपूर्वक स्तुति करते हैं ।२४८।

तुम्ह नमो पायाणं, चक्रं कुसलखणं कियतलाणं ।

जम्मखएइड्डियाण, अण्येय तणु तप्पणक्खाणं ।२४९।

(युष्मभ्यं नमो पद्भ्यः, चक्रांकुशलक्षणांकिततलेभ्यः ।

जन्मक्षये स्थितेभ्यः, अनेकतनुतर्पणाक्षेभ्यः ।)

चक्र एवं अंकुश के लांछनों से सुशोभित तलवों वाले, जन्म-मृत्यु के समूलनाश हेतु आगे बढ़े हुए तथा अनेक प्राणियों के-शरीर और नेत्रों को तृप्त करने वाले आपके चरण कमलों को वारम्बार नमस्कार है ।२४९।

कम्मरयं अट्टविहं नसिंति फुडं भव्वाण जीवाणं ।

तेण सरणं पवन्ना, जिणाण पाए सिवुप्पाए ।२५०।

(कर्मरजं अष्टविधं, नाशयन्ति स्फुटं भव्यजीवानाम् ।

तेन शरणं प्रपन्नाः, जिनानां पादान् शिवोत्पादकान् ।)

भव्य जीवों की आठ-प्रकार की कर्मरज को आपके पद पंकज विनष्ट करते हैं । इसीलिये हम शिवसुखप्रदायक जिनेश्वरों के चरण-कमलों की शरण में आये हैं ।२५०।

धण्णा जिण जणणीओ, सिद्धगइ पहदेसगा जिणा जाहिं ।

उदरेणं जिणवसभा, धम्मधुराधारगा ढविया ।२५१।

(धन्याः जिनजनन्यः, सिद्धगतिपथदर्शकाः जिना याभिः ।

उदरेण जिनवृषभाः, धर्मधुराधारकाः स्थापिताः ।)

धन्य हैं जिनेश्वरों की माताएं, जिन्होंने सिद्ध गति के पथ को दिखाने वाले तथा धर्म की सुरी का धारण करने वाले महान् तीर्थ-द्वारों को अपनी कुशियों में बहन किया । २५१।

एवं सरूनएहि, गुणेहि अभिवंदिरुण जिणवरिदे ।

अथ जिनासासणांति, तियपहवसियमाणाहि धुह् । २५२।

(एवंस्वरूपं गुणः, अभिवन्दित्वा जिनवरेन्द्रान् ।
जयति जिनं शासनमिति, त्रिपथि समानैर्धुष्टम् ।)

इस प्रकार की स्तुतियों से गुणगानपूर्वक जिनेश्वरों को वन्दन करने के पश्चात् सुरलोक और भवनों में निवास करने वाले सुरासुर गुप्तों ने "जिनशासन की जय हो"—इस प्रकार का दिव्य तुमुन पौप किया । २५२।

मोचण य ते पवरे, कंचण सीहासणे सुरवरिदा ।

पेषण जिणे सहिया, सुरेहि संपत्थिया तुरियं । २५३।

(मुक्त्वा च ते प्रवरान्, कंचन सिंहासनान् सुरवरेन्द्राः ।
शुद्धित्वा जिनान् सहिताः सुरैः संप्रस्थिताः त्वरितम् ।)

तदनन्तर उन पतिसुन्दर स्वरां के सिंहासनों से उठ कर सुरे-श्वरों ने तीर्थकरों को अपने हाथों में अच्छी तरह घासीन किया और वे सुरसमूह के साथ सुमेरु पर्वत से शीघ्रतापूर्वक प्रस्थित हुए । २५३।

संपचा य खलेण, जिण जम्मवणे पुरंदरा सुहया ।

नमिऊण जिणे, अप्पंति, विग्घिया नेगमेसीणं । २५४।

(निशान्तरच सणेन, जिनजन्मवने पुरन्दराः शुचिन्नाः ।
मत्ता धिनान् अर्पयन्ति, विस्मिता नैगमेपीम्यः ।)

जिन-जन्मनहोलाप को सम्मम कर पवित्र बने हुए वे सुरा-समूह साथ भर में ही सुमेरु पर्वत से जिनेन्द्रों के जन्मवन में आये । वहाँ वे जिनेन्द्रों को समस्कार कर उन्हें हरिणयमेवी देवी को समर्पित किया । २५४।

अहवा सग्गाओ च्चिय, पढणं निस्संसयं वियाणिज्जा ।
 इंदस्स विय न केवलमेयं तु सुरस्स इयरस्स । २६३।
 (अथवा स्वर्गतः किल, पतनं निःशंसयं विजानीथः ।
 इन्द्रस्यापि च न केवलं, एतत्तु सुरस्य इतरस्य ।)

अथवा इस प्रकार का पाप पूर्ण विचार करने वाले का निश्चित रूपेण स्वर्ग से पतन हो जायगा । चाहे वह सामान्य सुर-असुर हो चाहे देवेन्द्र ही क्यों न हो । इस बात को आप सब भली भांति समझ लीजिये । २६३।

एवं ईसाणेणवि उत्तरलोकाधिणेण भणिए ।
 इंदस्स वि य न केवलमेत्तंत्तु सुरस्स इयरस्स । २६४।
 (एवं ईशानेनापि, उत्तरलोकाधिणेन भणिते ।
 इन्द्रस्यापि च न केवलमेतत्तु सुरस्य इतरस्य ।)

इसी प्रकार उत्तर लोकाधिपति ईशानेन्द्र ने भी कहा कि इस प्रकार का अपराध करने पर न केवल किसी सुर अथवा असुर का ही अपितु इन्द्र का भी स्वर्ग से पतन अवश्यंभावी है । २६४।

‘एवं’ च्चि परिगहिए, तंमिहिए भासिए सुरिंदेहि ।
 मुक्क रयणुम्मीसं, दसद्ववण्णं कुसुमवासं । २६५।
 (‘एवं’ इति परिगृहीते, तस्मिन् हिते भापिते सुरेन्द्रैः ।
 मुक्ता रत्नोन्मिश्रं, दशार्द्धवर्णा कुसुम वर्पाः ।)

सुरेन्द्रों के इस हितकर वचन को सभी सुरासुरों द्वारा “एवमस्तु” कहकर शिरोधार्य किये जाने पर रत्नवर्पा से मिश्रित पांच रंग के पुष्पों की वृष्टि की गई । २६५।

चुण्णं नानाविहवण्णं, वत्थाणि च बहुविहप्पगाराइं ।
 मुक्काइं सहरिसेहिं, रयणाणि य पट्टयाणि । २६६।
 (चूर्णं नानाविधवर्णं, वस्त्राणि च बहुविधप्रकाराणि ।
 मुक्तानि सहस्रैः, रत्नानि च प्रभूतानि ।)

हृषं विभोर ही देवों ने विचित्र वस्तुओं वाले अनेक प्रकार के
कों यत्नों और प्रचुर मात्रा में रत्नों की वर्षा की । २६६।

अहं देहं वज्रपाणि, पराण भृतीण जिणवर्णिदाण ।
सोमे कुण्डल जुयले, मिरिदामं चैव य मुरुवे । २६७।
(अथ ददाति वज्रपाणिः, परया भक्त्या जिनवरेन्द्रेभ्यः ।
श्रीमानि कुण्डल युगलानि, श्रीदामानि चैव च मुरुपाणि ।)

तदनन्तर वज्रपाणि हाथ में परा (दण्डकृष्ट) भक्ति के साथ
सोम ही जिनदेवों (प्रत्येक) को एक एक दिव्य कुण्डलों की जोड़ी
12 एक एक कम्बो न कुण्डलाने वालों अनि सुन्दर श्रीदाम भेंट
। २६७।

आर्णकार विहिं, सत्त्वं जणणीण जिणवर्णिदाणं ।
इमा देवरण्णो, अहं देवि वरगमहिमीओ । २६८।
वस्रात्तंकारविधिं सर्थाः जननीभ्यः जिनवरेन्द्राणाम् ।
रुण्य देवराहः, अथ ददाति वराप्रमहिप्प्यः ।)

देवराज हाथ की पटरानी शैलियों में सभी जिनदेवों की माताओं
प्रमुखमनः (पत्नी में छोटी तक गायक करने योग्य) सभी प्रकार
अथ वरगम तथा सन्तान भेंट किये । २६८।

तु पशुविहेसु य, जिणाण कायचरणसु पशुणसु ।
मैदिमिहण सुविंदा, दिमाहमारीण सत्त्वेति । २६९।
(अथ पशुविहेसु य, जितानां कर्णत्वेसु पशुहेसु ।
मैदिमिहण सुविंदाः, दिक्कनानि सत्त्वं ।)

जिनदेवों के विषे पशु न के करने योग्य समेष प्रकार के जानों
के माह-प में सभी जिनदेवों माताओं की विविध देवरा सुन्दर-... २६९।

मैदिमिहण जिणवर्णिदि, मन्दिपमणा सुविंदिहिं मदिथा ।
मैदिमिहणमहिनां, काउं ह्दा मया सत्त्वं । २७०।

(नमित्वा जिनवरेन्द्रान्, अक्षिप्रभाणात् सुरवृन्दैः सहिताः ।
नन्दीश्वरवरमहिमां, कृत्वा इन्द्राः गताः स्वर्गम् ।)

जिनेन्द्रों को नमस्कार कर सुरवृन्दों सहित नन्दीश्वर द्वीप में जिनवरों की महिमा कर क्षण भर में ही इन्द्र अपने २ स्वर्गलोक को चले गये । २७०।

इह पंडुरे पभायंमि, दसवि ते कुलगरा निह पुत्ते ।
पिच्छंति सहप्रियाहि, हरिसवल्लसिय मुहकमला । २७१।
(इह पाण्डुरे प्रभाते, दशापि ते कुलकरा निजान् पुत्रान् ।
प्रेक्षन्ति सहप्रियाभिः, हर्षवशोल्लसित मुखकमलाः ।)

इधर उपाकाल में हर्षातिरेक से प्रफुल्लित वदन दशों कुलकर अपने पुत्रों सहित अपनी प्रियाओं को देखते हैं । २७१।

अह वृत्ति जिणिदा, दियलोगवुया अणोवमसरिया ।
देवी देव परिवुडा, दो दो नारीहिं ते सहिया । २७२।
अथ वर्तन्ते जिनेन्द्राः, दिव्यलोकवृता अनुपमश्रीकाः ।
देवी-देव परिवृताः, द्वि द्वि नारीभ्यां ते सहिताः ।)

तदनन्तर वे अनुपम शोभाशाली जिनेन्द्र दो दो परिरक्षिका महिलाओं के साथ दिव्य लोकों, देवियों एवं देवों से घिरे रहते हैं । २७२।

असियसिरया सुनयणा, विचोद्धा धवलदंत पंचिया ।
वरपउमगन्धगौरा, फुल्लुप्पलगंधनीसासा । २७३।
(असित शिरजाः सुनयनाः, विबुधाः धवलदन्तपंचिकाः ।
वरपद्मगर्भगौराः, फुल्लोत्पलगंधनिःश्वासाः ।)

काले भंवर वालों, सुन्दर नेत्रों, विशिष्ट बुद्धि और श्वेत दंत पंकित वाले वे सभी जिनेन्द्र श्रेष्ठ पद्म पुष्प के गर्भ के समान गौर वर्ण और प्रफुल्लित उत्पल की गन्ध के समान सुगन्धित श्वासोच्छ्वास वाले हैं । २७३।

जाइसरा जिणिदा, अप्परिवटिण्हिं निहिट नाणेहिं ।
 किनीयय बुद्धीयय, अन्महिया नेहि मणुण हिं ।२७४।
 (जातिस्मराः जिनेन्द्राः, अरतिपतिर्नेत्रिभिस्तु जानैः ।
 कीर्त्या च बुद्ध्या च, अभ्याधिकार्यं मनुष्यैः ।)

ये सभी नीचेंदुन जातिस्मर जान करे। पुन कनी लिखित माप
 भी कन न होई बाली—मति, भूनि बीर अरति—एन तीन जान मे
 दुन नया कीति एव बुति की प्रपथा अपने गरव के मनी मनुष्यो मे
 वहुन श्री बड़े-बड़े (शिक्षित) है ।२७४।

देवुणगं च वरियं, इन्द्रागमणं च वंसठवणा ।
 आहारमंगुलीए, विदंति देवा मणुण्णं नि ।२७५।
 (इंशानके न वर्षे, इन्द्रागमनं च (हिं) वंसस्थापनाच ।
 आहारमंगुल्यां, विदधति देवाः मनोज्ञमिति ।)

अप ये देवो जिनेन्द्रर एक वर्ष मे पुन नून अवस्था के पुन
 वर पुनः एक स्र आगमन हुआ । उनमे देवो जिनेन्द्ररो के पदा की
 स्थापना की । देवता नम देवो प्रथम कीर्त करी की मनुष्यो मे मनोज
 पनीच्छिअ आहार दान देने है ।२७५।

नरुहो वंसठवणे, इन्द्रधनु तेण होति इन्द्राणा ।
 दानकलाद्वयमिणी, होहि पनीति नारदणा ।२७६।
 (सकः वंसस्थापने, इन्द्राणाः नून भवन्ति इन्द्राणाः ।
 दानकलाद्वयमिणी, विदधति नरुहोः)

पठमो अकालमच्चू, तर्हि चालफलेण दारगा पहाओ ।
 कण्णाउ कुलभरेहिं, सिद्धे गहिया पीणिव्वाउ ।२७७।
 (प्रथमो अकालमृत्युः, तत्र तालफलैः दारकाः प्रहताः ।
 कन्यास्तु कुलकरैः श्रेष्ठाः गृहीताः परिणायतुम् ।)

वहां (दशों धोत्रों में) सद्यःजात यौगलिक शिशुओं में से नर शिशु की तालफल के गिरने से प्रथम अकाल मृत्यु हुई । कुलकरों ने यह कह कर कि यह श्रेष्ठ कन्या है, अपने पुत्रों के साथ उनका विवाह करने की इच्छा से उन कन्याओं को अपने यहां रख लिया ।२७७।

भोगसमत्थे नाउं, वरकम्मे कासि तेसि देविंदा ।
 दोण्हं वरमहिलाणं, बहुकम्मं कासि देवीउ ।२७८।
 (भोगसमर्थान् ज्ञात्वा, वरकर्माणि अकार्पन् तेषां देवेन्द्राः ।
 द्वयोरपि वरमहिलयोः वधुकर्माणि अकार्पन् देव्यः ।)

(समय पर) उन जिनेश्वरों को भोगसमर्थ जान कर वर पक्ष की ओर से किये जाने वाले सब कार्य देवेन्द्रों ने तथा उन दो कन्याओं के कन्यापक्ष की ओर से किये जाने वाले सभी वधु-कर्म (देवेन्द्रों की) देवियों ने किये ।२७८।

एवं दसवारेज्जा, दससु वि वासेसु होंति नायव्वा ।
 दस वि जिणाणं एते, देवासुर परिवुडा वुत्तं ।२७९।
 (एवं दश वरेच्छा, दशष्वपि वर्षेषु भवन्ति ज्ञातव्याः ।
 दशानामपि जिनानामेते, देवासुर परिवृता उक्ताः ।)

इस प्रकार दशों ही क्षेत्रों में दश वरिच्छाएं होती हैं । दशों ही जिनों के देवासुरों से परिवेष्टित वृत्तान्त कहे गये हैं ।२७९।

ए पुच्चसय सहस्सा, पुट्ठि जायस्स जिणवरिंदस्स ।
 तो भरह वंभि सुंदरि, वाहुवलि चैव जायाहं ।२८०।

(पद् पूर्वगतं सहस्राणि, पूर्वं जातस्य जिनवरेन्द्रस्य ।
ततो भरत ब्राह्मी सुन्दरी, बाह्वली चैव जाताः ।)

जय जिनवरेन्द्र प्रथमदेव को जन्म ग्रहण किये ६ लाख पूर्व
शरीर ही गये तब भरत, ब्राह्मी, सुन्दरी और बाह्वली का जन्म
हुआ । १२८१।

देवी मुर्मंगलाय, भगवो वंभी य मिहृणमं जायं ।
देवीय सुनन्दाय, बाह्वली सुन्दरी चैव । १२८१।

(देव्याः मुर्मंगलायाः, भरतः ब्राह्मी च मिथुनकं जातम् ।
देव्याः सुनन्दायाः बाह्वली सुन्दरी चैव ।)

देवी मुर्मंगला को कुक्षि से भरत और ब्राह्मी का मिथुन राश्या
देवी सुनन्दा को कुक्षि से बाह्वली और सुन्दरी का मुमक्ष उत्पन्न
हुआ । १२८१।

वज्रपाशं सुपले, पुत्राण मुर्मंगला पुणो पतवें ।
नीर्माण अह्वकमणे, निवेपणं उतम नामिस्म । १२८२।

(एकौनपंचाक्षर मुर्मंगला पुत्राणां मुर्मंगला पुनः प्रसूतवती ।
नीर्णामापतिकमणे, निवेदनं प्रथम स्वामिने ।)

(एकौनपंचे) पुत्रों के उत्पन्नमान मुर्मंगला को देवी मुर्मंगला से पुनः
शुभ दिना अथ कर्मका नीर्णामिक सोम नीर्णय का उत्पन्न करने के
को प्रथम सोमों से प्रथमदेव के समक्ष निवेदन किया । १२८२।

गवा करं ईदं, निष्टे तेमि नि अह्व वि न होउ ।
सन्नाय पुनमं सो करं उतमो सुने नया । १२८३।

(गवा करोति इष्टं, निष्टं नेम्य इत्याम्नाकमपि नः भवतु ।
सामोपतः कृत्वयं नः सवीति प्रथमः सुमत्कं गला ।)

सामोपत ने कहा कि नीर्णय का परिचय करने वाली को
गवा कर देना है । यह सुनकर नीर्णयिका ने कहा—“इत्याम्ना की
गवा करेगी” । प्रथमदेव ने कहा—“वही सुमत्क से गवा करेगी” ।

दसवि जिणिंदा समये, दाणं दाऊण वच्छरं एगं ।
चित्त बहुलद्धमीए, निक्खंता तेउ छट्ठेणं ।२९०।
(दशाऽपि जिनेन्द्राः समये दानं दत्त्वा वत्सरमेकम् ।
चेत्र बहुलाष्टम्यां, निष्क्रान्ता ते तु षष्ठेन ।)

दशों ही जिनेन्द्र समय पर एक वर्ष तक दान देकर चैत्र कृष्णा अष्टमी के दिन षष्ठ भक्त (वैले) की तपस्या से महाभिनिष्क्रमण कर दीक्षित हुए ।२९०।

फगुण बहुलेककारसी, अह अद्धमेण भत्तेण ।
उप्पणंमि अणंते, महव्वया पंच पण्णवए ।२९१।
(फाल्गुन बहुलैकादश्यां, अथाष्टमेन भक्तेन ।
उत्पन्नोऽनन्ते, महाव्रतान् पंच प्रज्ञपयति ।)

तत्पश्चात् फाल्गुन कृष्णा एकादशी के दिन अष्टम भवत (तेले) की तपस्या पूर्वक अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन-और अनन्त चारित्र के उत्पन्न होने पर पंच महाव्रतों की प्ररूपणा करते हैं ।२९१।

तस्सासि पढम तणयो, चोदसरयणाहिवो मत्थुयसिंहो ।
भरहो णाम महप्पा, अमरवरिंदोवमभिरीड ।२९२।
(तस्यासीत् प्रथमतनयः, चतुर्दशरत्नाधिपः मनुजसिंहः ।
भरतः नाम महात्मा, अमरवरेन्द्रोपम श्रीकः ।)

उनके ज्येष्ठ पुत्र चौदह रत्नों के स्वामी मनुष्यों में सिंह के समान और देवेन्द्रों के समान श्री, ऋद्धि सिद्धि सम्पन्न एवं ऐश्वर्य शाली भरत नामक महात्मा थे ।२९२।

उप्पन्न चक्करयणं, भरहं वण्णेमि रयणविभवेणं ।
सुरवड्ढविमाणविभवं, वत्तीससहस्स निवनाहं ।२९३।
(उत्पन्नचक्ररत्नं, भरतं वर्णयामि रत्नविभवेन ।
सुरपति-विमानविभवं, द्वात्रिंशत्सहस्रनृपनाथम् ।)

उनका चक्र मध्याह्न के तरुण सूर्यमण्डल के समान परम तेजस्वी और भास्वर छत्र सब रोगों को दूर करने वाला। खड्ग शत्रुओं के दर्प का दलन करने वाला और दण्ड विपमातिविपम को भी शम अथवा सम करने वाला था ।२६६।

चंम रयणमभेज्जं, मणिरयणं चैव संसि रोगहरं ।

रविससि-किरण परद्धं, कागिणि रयणं च तं पवरं ।२९७।

(चर्मरत्नमभेद्यं, मणिरत्नं चैव संशयरोगहरम् ।

रविशशिकिरणपरस्थं, काकिनीरत्नं च तत् प्रवरम् ।)

चक्रवर्ती भरत का चर्मरत्न अभेद्य मणिरत्न सब प्रकार के संशयों और रोगों का हरण करने वाला तथा अति श्रेष्ठ काकिनी रत्न सूर्य और चन्द्र की किरणों से भी अधिक ज्योतिष्मान था

।२६७।

सेणावइ अईवसूरं, सेट्टिवेसमणदेव पडितुल्लं ।

वड्ढइरयण मणोहर, पुरोहियं चैव संतिकरं ।२९८।

(सेनापति अतीवशूरं श्रेष्ठि वैश्रवण देवपरितुल्यम् ।

वर्धकि (वड्ढंति) रत्नं मनोहरं, पुरोहितं चैव शान्तिकरम् ।)

उनका सेनापतिरत्न अति शूरवीर, श्रेष्ठिरत्न वैश्रवण तुल्य, वर्धकि (बडइ) रत्न मनोहर और पुरोहित रत्न परम शान्तिकारक था ।२६८।

रिबु जीविय विक्काल, हत्थि आसिं च वाउवेग सम ।

इत्थीरयण महप्पं, चौदसरयणाइं भरहस्स ।२९९।

रिपुजीवितविकरालं हस्त्यश्वे च वायुवेग समे ।

स्त्रीरत्नं महात्मं, चतुर्दश रत्नानि भरतस्य ।)

शत्रुओं के प्राणों के लिये विकराल काल के समान तथा वायुतुल्य वेग वाले हस्तिरत्न तथा अश्वरत्न और महाप्राण स्त्रीरत्न इस प्रकार भरत चक्रवर्ती के ये चौदह रत्न थे ।२६९।

१ महात्मं-महाप्राणमित्यर्थः । गाययां 'महार्ध', इति पाठस्यापि संभावनानुमीयते' ।

नव जोषण विस्त्रिण्णा, नवनिहीट अट्ट जोषणस्सेहा ।
 धारत जोषण दीहा, द्विय इच्छियरयण संपुष्णा ।३००।
 (नव योजन विस्तीर्णाः, नवनिधयोऽष्टयोजनोत्सेधाः ।
 द्वादश योजन दीर्घाः, हृदयेच्छित्तन स्तन संपूर्णाः ।)

चतुर्थीं भरत नी निधियों के स्वामी थे । वे नी निधियां नी योजन विस्तार सर्वात् चौड़ाई वाली, द्वादश योजन ऊंचाई वाली तथा बारह योजन दीर्घ अर्थात् लम्बी और मनोवांछित नव प्रकार के रत्नों से परिपूर्ण थीं ।३००।

(मूल प्रति में उपरोक्त गाथा की संख्या २८६ ही और गाथा संख्या ३०० नहीं है।)

नेतप्य पंडु विंगल, रयण महापडम काल नामा य ।
 तपो य महाकले, माणव-ण नंतनामं य ।३०२।
 (नितर्प पाण्डुर विंगल स्तन महापद्म काल नामा य ।
 तपस्तन महाकालः, माणवकः त्रंस नामा य ।)

नेतर्पे, पाण्डूक, विंगल, तपस्तन, महापद्म, काल, महाकाल, माणवक और तपो महानिधि-ये ६ प्रकार की निधिवा श्रेणी है ।३०२।

एवं भरत नमिन्ना, नवमुचि रेतोसु नरिचणो होंति ।
 एवो परं तु वीर्यं, तौ जाभी तौ विमानाभौ ।३०३।
 (एवं भरत सदृशा, नवमुचि रेतोसु नरिचणः भवन्ति ।
 अथा परं तु वीर्यं, तौ वरमाह तौ विमानात् ।)

इस प्रकार भरत के समान ही ६ श्रेण रेतों में भी पुरुषों की श्रेणी है । अतः काल में यह कथाकथा कि कोलीत पुरुषद्वयों में के श्रेण विंगल विमान के अन्वय कर पाएँगे हूँ ।३०३।

एतन्मि एवराभी विचिण, तौ तौ तौ एवराभेहाड ।
 पौर्वादिभौ दीप सुद, एवामि तिले एवराभेहि ।३०४।

(चत्वारि एकतः त्रीणि च ततः सप्त एकैकास्तु ।
पंचभिः ततः द्वौ च्युतान्, वन्दामि जिनेन चतुर्विंशतीन् ।)

चार एक ही स्थान से, तीन एक स्थान से, सात एक एक पृथक् स्थान से तथा पांच स्थानों से दो दो की संख्या में च्युत हुए इस प्रकार इन चौबीस तीर्थंकरों को मैं वन्दन करता हूँ । ३०४।

उसभं च जिणवरिंदं, धम्मं संतिं तहेव कुंथुं च ।
सव्वड्ढ विमाणाओ, चत्तारि चुए णमंसांमि । ३०५।
(ऋषभं च जिनवरेन्द्रम्, धर्मं शान्तिं तथैव कुंथुं च ।
सर्वार्थ विमानात्, चत्वारि च्युतान् नमामि ।)

सर्वार्थ सिद्ध विमान से च्यवित ऋषभदेव, धर्मनाथ, शान्तिनाथ और कुंथुनाथ इन चार तीर्थंकरों को मैं नमस्कार करता हूँ । ३०५।

सेज्जंसं च जिणिंदं, अणंतमपच्छिमं च तित्थयरं ।
पुप्फुत्तर विमाणाओ, तिन्निय चुया नमंसांमि । ३०६।
(श्रेयांसं च जिनेन्द्रं अनन्तमपश्चिमं च तीर्थंकरम् ।
पुष्पोत्तर विमानात्, त्रयश्च च्युतान् नमस्यामि ।)

पुष्पोत्तर विमान से च्युत हुए श्रेयांसनाथ, अनन्तनाथ और अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीरं इन तीनों को मैं नमस्कार करता हूँ । ३०६।

हेट्ठिम गेवेज्जाओ संभवं, पउमप्पहं उवरिमाओ ।
मज्झिम गेवेज्ज चुयं, वंदामि जिणं सुपासरिसिं । ३०७।
(अधस्थ ग्रैवेयकात् संभवं, पद्मप्रभं उपरिमात् ।
मध्यम ग्रैवेयकच्युतं, वंदामि जिनां सुपार्श्वर्षिम् ।)

अधो ग्रैवेयक से च्युत हुए संभवनाथ, उपरिम ग्रैवेयक से च्युत हुए पद्मप्रभु और मध्यम ग्रैवेयक से च्युत हुए सुपार्श्वनाथ तीर्थंकरों को मैं नमस्कार करता हूँ । ३०७।

आणयक्या सुविहीं, सियलजिणमच्युयाओ कप्याओ ।
 सुक्काउ वामपुञ्जं, सहस्राराओ सुयं विमलम् ।३०८।
 (आनतकन्यात् सुविधिं, शीतलजिनमच्युतात् कल्पात् ।
 शुक्रान् वामपुञ्जं, सहस्रारात् च्युतं विमलम् ।)

आनत कन्या से च्युत हुए सुविधिनाथ, अच्युत कल्प से च्युत हुए शीतलनाथ, अक्र कल्प से च्युत हुए वामपुञ्ज और सहस्रार से च्युत हुए विमलनाथ तीर्थछ्दर को भी नमस्कार करता है । ३०८।

अभिनन्दणं च अजितं, विजयविमाणच्युयं नमंतामि ।
 चंद्रपहं च सुमहं, दोविच्छुया वैजयंताओ ।३०९।
 (अभिनन्दनं च अजितं, विजयविमानच्युतं नमस्यामि ।
 चन्द्रप्रभं च सुमतिं, द्वावपिच्युती वैजयंतात् ।)

विजय विमान से च्युत हुए तीर्थछ्दर अभिनन्दन और अजित-नाथ को तथा वैजयन्त विमान से च्युत हुए भगवान् चन्द्रप्रभ और सुमतिनाथ को भी नमस्कार करता है । ३०९।

अमणिलं जयंताओ, नामि नेमि पराहया विमाणाउ ।
 सुणि सुव्यं च पार्श्वं, पाणयक्याञ्चुयं चंदे ।३१०।
 (अं मणिलं जयन्तात्, नामिं नेमिं अपराजितात् विमानात् ।
 सुनिं सुवतीं च पार्श्वं, प्राणयकल्पात् च्युतं चन्दे ।)

अपराजित विमान से च्युत हुए भगवान् अरुणाय एवं मणिलनाथ को, अपराजित विमान से च्युत हुए नमिनाथ एवं अरिष्टनेमि को और अणयकल्प से च्युत हुए भगवान् सुनिच्युत तथा पार्श्वनाथ को भी नमस्कार करता है । ३१०।

अरुणापट्टेण एवं, भलोमि जिणवरा चउव्यीमिं ।
 अरिमवये षोडशति, एषो जम्मं निगामेकं ।३११।
 (अरुणापट्टनया, भलोमि जिणवरात् चतुर्विंशतिम् ।
 अरुण भये षोडशति, एषो जम्मं निगामपटा ।)

पद्यरचना द्वारा मैं चौबीस जिनेश्वरों के सम्बन्ध में कथन कर रहा हूँ। उनके अन्तिम देव भव का कथन समाप्त हुआ अब उनके सम्बन्ध में सुनिये। १३११।

पंचसुं ऐरवसुं, पंच भरहेसु जिणवरिंदाणं ।
ओसप्पिणी इमीसे, दससु वि खेत्तेसु समकालं ।३१२।
(पंचसु ऐरवतेषु, पंचभरतेषु जिनवरेन्द्राणाम् ।
अवसर्पिण्यामस्यां, दशष्वपि क्षेत्रेषु समकालम् ।)

पांचों ऐरवत क्षेत्रों में और पांचों ही भरत क्षेत्रों अर्थात् ढाई द्वीप के इन दशों क्षेत्रों में, जहां कि अवसर्पिणी तथा उत्सर्पिणी रूपी काल चक्र अनुक्रमशः अनवरत गति से अनादिकाल से चलता आया है, चल रहा है और अनन्तकाल तक चलता रहेगा, वहां इस अवसर्पिणी काल में तीर्थङ्करों की चौबीसी का पूर्णतः सम सामयिक अथवा समान काल रहा है। १३१२।

उसभो य भरहवासे, बालचंदाणणो ऐरवए उ ।
एग समएण जाया, दसवि जिणा विस्स देवो^१ हि ।३१३।
(ऋषभश्च भारतवर्षे, बाल चन्द्रानन^२ ऐरवते तु ।
एक समयेन जाताः, दशाऽपि जिनाः वैश्व देवो हि ।

भरत क्षेत्र में ऋषभ देव और ऐरवत क्षेत्र में बाल चन्द्रानन, इस प्रकार दशों क्षेत्रों में दशों प्रथम तीर्थङ्कर एक ही समये में उत्पन्न हुए। इनके समय में अग्नि भी दशों क्षेत्रों में एक साथ प्रकट हुई। १३१३। (इस गाथा में जन्म नक्षत्र का उल्लेख नहीं है।)

१ पंचसु भरतक्षेत्रेषु तथैव पंचस्वैरवतक्षेत्रेषु प्रथम तीर्थकराणां समये वैश्वानरस्योत्पत्तिः संजाता । गाथायामत्र प्रयुक्तस्य 'विस्सद्देवो'-पदस्य संस्कृतस्वरूपं वैश्वदेवः भवति । अग्नेरुत्पत्तिमुद्दिश्यैवंतद् पदं ग्रन्थकर्त्रा प्रयुक्तं स्यादिति प्रतीयते । इतरार्थोऽस्य पदस्य नास्माभिर्ननुमीयते ।

२ ऐरवतक्षेत्रोद्गमनं प्रथमं जिनस्य नाम चन्द्राननः । बाल ऋषयोऽत्र चन्द्रस्य विशेषणार्थं चन्द्रोऽनुरोधादेव प्रयुक्त इति सिद्धम् ।

अजित भरहवासे, सुयणु सुचंदो य एरवय वासे ।

एक समरण जाया, दस वि जिणा रोहिणी जोए ।३१४।

(अजितः भारतवर्षे, सुयणुः सुचन्द्रश्च ऐरवतवर्षे ।

एक समयेन जाताः, दशाऽपि जिनाः रोहिणी योगे ।)

भरत क्षेत्र में अजितनाथ और ऐरवत क्षेत्र में सुचन्द्र—दस प्रकार के जिनोय दशों तीर्थंकर को चन्द्रमा का रोहिणी नक्षत्र के साथ योग होने पर एक ही समय में उत्पन्न हुए ।३१४।

भाहे य संभव जिणो, एरवय अजितमेण जिणचंदो ।

एकसमरण जाया दसवि जिणिदा पुणन्दसुणा ।३१५।

(भरते च संभव जिनः, ऐरवते अजितसेनजितचन्द्रः ।

एक समयेन जाताः, दशाऽपि जिनेन्द्राः पुनर्वसुना ।)

भरत क्षेत्र में संभव जिन और ऐरवत क्षेत्र में अजितसेन—दस प्रकार के जिनो दशों तीर्थंकर को चन्द्रमा का पुनर्वसु नक्षत्र के साथ योग होने पर एक ही समय में हुए ।३१५।

(भरत क्षेत्र में संभवजिन और ऐरवत क्षेत्र में अजितसेन एक समय में उत्पन्न हुए—दस सभित्तव को संध्या विविकार के दोर में हुए क्षेत्र में नष्टो विरयो कई है ।)

सुमती य भरहवासे, हनिदण्ण जिणो य एरवय वासे ।

एक समरण जाया, दसवि जिणिदा सदा योगे ।३१६।

(सुमतिश्च भारतवर्षे, हनिदण्णजितवर्षे ।

एक समयेन जाताः, दशाऽपि जिनेन्द्राः सदा योगे ।)

भरत क्षेत्र में सुमतिनाथ और ऐरवत क्षेत्र में हनिदण्ण—दस प्रकार के जिनो दशों तीर्थंकर को संध्या विविकार के दोर में उत्पन्न हुए ।३१६।

वसुमतो य सदा, एरवते जिणो य एरववासे ।

एक समरण जाया, दसवि जिणा जित होणसि ।३१७।

(पद्मप्रभश्च भरते, वयधारिः (व्रतधारी) जिनश्चैरवतवर्षे ।

एक समयेन जाताः, दशाऽपि जिनाश्चित्रायोगे ।)

भरत क्षेत्र में तीर्थंकर पद्मप्रभ और ऐरवत क्षेत्र में वयधारी जिनेश्वर, इस प्रकार चन्द्र का चित्रा नक्षत्र के साथ योग होने पर दशों क्षेत्रों में छठे दशों तीर्थंकर एक काल अथवा एक ही समय में जन्मे । ३१७।

भरहे य सुपासजिणो. एरवए सामचंद जिणचंदो ।

एग समएणजाया, दसवि जिणिंदा भू (?) विसाहाये योगे । ३१८।

(भरते च सुपार्श्वजिनः, ऐरवते सा(सौ)मचन्द्र जिनचन्द्रः ।

एक समयेन जाताः, दशाऽपि जिनेन्द्राः विशाखायोगे ।)

भरत क्षेत्र में सुपार्श्वनाथ और ऐरवत क्षेत्र में तीर्थंकर सामचन्द्र ये दशों ही सातवें तीर्थंकर दशों क्षेत्रों में चन्द्र का विशाखा नक्षत्र के साथ योग होने पर एक ही समय में हुए । ३१८।

चन्दप्पमो य भरहे, एरवए दीहासण जिणचंदो ।

एग समयेण जाया, दसविय अणुराह जोगम्मि । ३१९।

(चन्द्रप्रभश्च भरते, ऐरवते दीर्घासनः जिनचन्द्रः ।

एक समयेन जाताः दशाऽपि चानुराधायोगे ।)

भरत क्षेत्र में आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभ और ऐरवत क्षेत्र में दीर्घसेन---इस प्रकार दशों ही क्षेत्रों में दशों ही आठवें तीर्थंकर चन्द्र का अनुराधा नक्षत्र के साथ योग होने पर एक ही समय में उत्पन्न हुए । ३१९। (इस गाथा का क्रमांक मूल प्रति में ३१८ है । ३१९ वीं गाथा मूल में नहीं है ।)

सुविही य भरहवासे, एरवए चैव जिणवर सयाळ ।

एगसमयम्मि जाया, दसवि जिणा मूल जोगम्मि । ३२१।

(सुविधिश्च भारतवर्षे, ऐरवते चैव जिनवर शतायुः ।

एकसमये जाताः, दशाऽपि जिनाः मूलयोगे ।)

तीर्थंकर भरत क्षेत्र में सुविधिनाथ और ऐरवत क्षेत्र में शतायु ये दशों ही तीर्थंकर चन्द्रमा का मूल नक्षत्र के साथ योग होने

पर एक ही समय में उत्पन्न हुए । ३२१।

भरहे य शीतल जिणो, एरवण मुच्चई जिणवरिंदो ।

पुत्रासाद्वारिकलो, जाया जिणपुंगवा एते । ३२२।

(भरते च शीतलजिनः, एरवते मुच्चती जिनवरन्द्रः ।

पुत्रासादा ष्टुत्ते, जाताः जिनपुंगवा एते)

श्यासुवें तीर्थंकर भरत क्षत्र में शीतलसाय छीर ऐरवत क्षत्र में मुचो से दसो तीर्थंकर चन्द्र का पुत्रासादा नक्षत्र के साथ योग होने पर उत्पन्न हुए । ३२२।

भरहे सेज्जेत जिणो, एरवण सुत्तिसेण जिणचन्द्रो ।

एण समण जाया, दसवि जिणिंदा समण जोगे । ३२३।

(भरते श्रेयान् जिनः, एरवते सुत्तिसेन जिनचन्द्रः ।

एक समणेन जाताः दशाऽपि जिनेन्द्राः श्रवणयोगे ।)

श्यासुवें तीर्थंकर भरत क्षत्र में श्रेयान् नाम क्षीर ऐरवत क्षत्र में सुत्तिसेन से पांच भगव क्षीर पांच ऐरवत क्षत्र के दस तीर्थंकर चन्द्र का श्रवण नक्षत्र के साथ योग होने पर एक ही समय में उत्पन्न हुए । ३२३।

भरहे य वामपुज्जो, सेज्जं सजिणो य एरवण वामे ।

वामभिमया नववर्णे, दसवि जिणिंदा समं जाया । ३२४।

(भरते च वामपुज्यः, श्रेयान् जिनदर्शनवर्णैः ।

वामभिमया नक्षत्रे, दशाऽपि जिनेन्द्राः समं जाताः ।)

(नमिः जिनचन्द्रः भरते ऐरवते श्यामकोष्ठः जिनचन्द्रः ।
एकसमयेन जाताः, दशाऽपि जिना अश्विनीयोगे ।]

इक्कीसवें तीर्थंकर भरत क्षेत्र में नमिनाथ और ऐरवत क्षेत्र में श्यामकोष्ठ ये दशों तीर्थंकर दशों क्षेत्रों में एक ही समय में चन्द्र का अश्विनी नक्षत्र के साथ योग होने पर उत्पन्न हुए ।३३२।

भरहे अरिष्टनेमि, एरवए अग्निसेण जिणचंदो ।

एगसमएण जाया. दसवि जिणा चित्त जोगम्मि ३३३।

(भरते अरिष्टनेमिः, ऐरवते अग्निपेण जिनचन्द्रः ।

एकसमयेन जाताः, दशाऽपि जिनाः चित्रायोगे)

बाबीसवें तीर्थंकर भरत क्षेत्र में अरिष्टनेमि और ऐरवत क्षेत्र में अग्निपेण—ये दशों तीर्थंकर चन्द्र का चित्रा नक्षत्र के साथ योग होने पर एक ही वेला में उत्पन्न हुए ।३३३।

पासो य भरहवासे, एरवए अग्निदत्त [उत्त] जिणचंदो ।

एग समएण जाया, दसवि विसाहाहि जोगंमि ।३३४।

(पार्श्वश्च भारतवर्षे, ऐरवते अग्निदत्त [गुप्त] जिनचन्द्रः ।

एक समयेन जाताः, दशाऽपि विशाखायोगे ।)

तेबीसवें तीर्थंकर भरत क्षेत्र में पार्श्वनाथ और ऐरवत क्षेत्र में अग्निदत्त, ये दश तीर्थंकर चन्द्र का विशाखा के साथ योग होने पर एक ही समय में उत्पन्न हुये ।३३४।

भरहे वीर जिणिंदे, एरवए वारिसेण जिणचंदो ।

हत्थुचराहि जोगे, जाया तित्थंकरा दसवि ३३५।

(भरते वीर जिनेन्द्रः, ऐरवते वारिपेण जिनचन्द्रः ।

हस्तोत्तरायाः योगे, जाताः तीर्थंकराः दशाऽपि ।)

चीबीसवें तीर्थंकर भरत क्षेत्र में वीर (महावीर) और ऐरवत क्षेत्र में वारिपेण—ये दशों ही तीर्थंकर चन्द्रमा का हस्तोत्तरा नक्षत्र के साथ योग होने पर एक ही समय में उत्पन्न हुए ।३३५।

एवं भणिषा जम्मा, दससु वि खेतसु जिणवरिदाणं ।

एतो परं तु शोच्छं, चण्णविभागं समासेणं ।३३६।

(एवं भणिषा: जन्मानि, दशप्वपि क्षेत्रेषु जिनवरेन्द्राणाम् ।
इतः परं तु वक्ष्ये, वर्णविभागं समासेन ।)

इस प्रकार दार्द द्वीपों के पांच भरत क्षेत्रों एवं पांच ऐरवत क्षेत्रों—इस प्रकार दश क्षेत्रों के तीर्थंकरों के जन्म समय का कथन किया । अब इससे आगे में उन तीर्थंकरों के वर्णविभाग का संक्षेपतः बताने लगेंगे ।३३६।

चत्वारि कालगा जिणवराउ, चउरो पियंगु वण्णामा ।

चत्वारि पउमगोरा, ससिप्पमा होति चत्वारि ।३३७।

(चत्वारः कालका जिनवरास्तु, चत्वारो प्रियंगुवर्णामाः ।
चत्वारो पद्मगौराः, शशिप्रमा भवन्ति चत्वारि ।)

चार तीर्थंकर पद्मवर्ण के चार प्रियंगु वर्णों जामुन के रंग जैसी प्रभा वाले, चार तीर्थंकर पद्मवर्ण के समान नीरवर्ण के, चार तीर्थंकर चन्द्रमा की चटक शक्ति के समान स्वच्छ वर्ण के थे

।३३७।

(स्पष्टीकरण :—इस भाषा में वर्ण विभाग की दृष्टि में विभिन्न वर्णों के तीर्थंकरों की जो संख्या १६ दी गई है वह केवल जम्बू द्वीप के भरत तथा ऐरवत क्षेत्र के तीर्थंकरों की ही है । इन तीर्थंकरों के साथ पाठकी तरह और पुष्करार्थ द्वीप के भरत तथा ऐरवत क्षेत्रों में उत्पन्न हुये १४ तीर्थंकरों की संख्या को जोड़ने पर प्रवर्णवर्षी काल की दस श्रीश्रीशिवों (पांच श्रीश्रीशिवों दार्द द्वीप के भरत क्षेत्रों की और पांच ही श्रीश्रीशिवों दार्द द्वीप के पांच ऐरवत क्षेत्रों की) के २४ तीर्थंकरों से ये २० तीर्थंकरों के वर्णों का उत्पन्न इस भाषा में बताया गया है ।)

जम्बू द्वीप के भरत तथा श्रीश्रीशिवों के पाठ तथा ऐरवत क्षेत्र की श्रीश्रीशिवों के पाठ इस प्रकार १६ तीर्थंकरों के वर्णों के विवरण के पश्चात् जम्बूद्वीप के भरत तथा श्रीश्रीशिवों के क्षेत्र १६

इस भरत क्षेत्र के छठे तीर्थकर पद्मप्रभ और उनके समवयस्क, जम्बूद्वीप के ऐरवतक्षेत्र के छठे तीर्थकर वयधारी, इस भरत क्षेत्र के बारहवें तीर्थकर वासुपूज्य और उनके जन्म की वेला में ही उत्पन्न हुये, जम्बूद्वीप के ऐरवत क्षेत्र के बारहवें तीर्थकर श्रियांस । ३४३।

चउसु वि एरवएसुं, एवं चउसु वि य भरहवासेसु ।

एते वीस जिणंदा, वंधु कुसुमुप्पभा नेया । ३४४।

(चतसृष्वप्येरवतेषु, एवं चतसृष्वपि च भरतवर्षेषु ।

एते विंशत् जिनेन्द्राः वंधूक कुसुमप्रभाः श्रियाः ।)

तथा घात की खण्ड द्वीप एवं पुष्कराद्ध द्वीप के चार भरत और चार ऐरवत क्षेत्रों में पद्मप्रभ के जन्म समय में उत्पन्न हुये आठ छठे तीर्थकर तथा वासु पूज्य की जन्म वेला में उत्पन्न हुये उक्त आठों क्षेत्रों के बारहवें आठ तीर्थकर. इस प्रकार अवसर्पिणी की दश क्षेत्रों की दश चौबीसियों के २४० तीर्थकरों में से वीस (ढाई द्वीप के १० छठे और १० बारहवें) तीर्थकर वंधूक कुसुम को प्रभा के समान वर्ण वाले जानने चाहिए । ३४४।

चंदप्पो य भरहे, एरवए दीहासणो जिणचंदो ।

सुविही य भरहवा से, एरवयंमि य सयाउ जिणो । ३४५।

(चन्द्रप्रभश्च भरते, ऐरवते दीर्घपेण जिनचन्द्रः ।

सुविधिरश्च भरतवर्णे, ऐरवते च शतायुः जिनः ।)

इस भरत क्षेत्र के आठवें तीर्थकर चन्द्रप्रभ और उन्हीं की जन्म वेला में उत्पन्न हुए जम्बूद्वीप के ऐरवत क्षेत्र के आठवें तीर्थकर दीर्घासन. इसी भरत क्षेत्र के नौवें तीर्थकर सुविधिनाथ तथा उनके समवयस्क, जम्बूद्वीप के ऐरवत क्षेत्र के नौवें तीर्थकर शतायु-३४५।

चउसु वि एरवएसुं, एवं चउसु वि य भरहवासेसु ।

एते वीसं धवला, जिणचंदा होंति नायव्वा ३४६।

(चतसृष्वप्येरवतेषु, एवं चतसृष्वपि च भरतवर्षेषु ।

एते विंशतिः धवलाः, जिनचन्द्राः भवन्ति ज्ञातव्या ।)

मीर धानकी सण्ड तथा पुष्कराब्ज द्वीप के चार भरत और चार ही ऐरवत इन आठ तीर्थों में चन्द्रप्रथ की जन्म-वेला में ही उत्पन्न हुए आठवें आठ तीर्थ कर तथा सुचिदिनाथ के जन्म समय में एक ही वेला में उत्पन्न हुए तीर्थों आठ तीर्थ कर इस प्रकार कुल बीस (२०) तीर्थों कर श्वेत वर्णों के होते हैं, ऐसा जानना चाहिए । ३१६।

उमसो य भरद्वासे, चाल्चन्द्राणसो य एरवण ।

अजिय उ भरद्वासे, ऐरववसि य सुचन्द जिणो । ३१७।

(आपमश्च भरतवर्षे, चाल्-चन्द्राननश्चैरवते ।

अजियन्तु भारते वर्षे, ऐरवते च सुचन्द्रः जिनः ।)

अशु द्वीप के भरत क्षेत्र के प्रथम तीर्थ कर अशुभदेव तथा अशुद्वीप के ऐरवत क्षेत्र के प्रथम तीर्थ कर चाल्चन्द्रानन, इसी भरत क्षेत्र के दूसरे तीर्थ कर अजितनाथ तथा अशुद्वीपस्य ऐरवत क्षेत्र के तिसरे तीर्थ कर सुचन्द्र - ३१७।

भरते य संभवजिणो, एरवण अग्निसेण जिणचंदो ।

अभिनन्दणो य भरते, एरवण नन्दिसेण जिणो । ३१८।

भारते च संभव जिनः, ऐरवते अग्निसेण जिनचन्द्रः ।

अभिनन्दनश्च भारते, ऐरवते नन्दिसेण-जिनः ।)

अशुद्वीपस्य भरत क्षेत्र के तीसरे तीर्थ कर संभवनाथ अशु-द्वीपस्य ऐरवत क्षेत्र के तीसरे तीर्थ कर अभिनन्द इसी भरत क्षेत्र के चौथे तीर्थ कर अभिनन्दन, अशुद्वीपस्य ऐरवत क्षेत्र के चौथे तीर्थ कर नन्दिसेण - ३१८।

सुमहं य भरद्वासे, अविदिग्ग जिणो य एरवणवासो ।

भरते य सदान जिणो, एरवण साद चन्द जिणो । ३१९।

(सुमतिग्ग भरतवर्षे, अविदिग्ग जिनस्य ऐरववर्षे ।

भरते य सुदानजिनः, ऐरवते सदानचन्द्रः जिनः ।)

अशुद्वीपस्य भरत क्षेत्र के चौथे तीर्थ कर सुमतिग्ग, अशुद्वीपस्य ऐरवत क्षेत्र के चौथे तीर्थ कर सदान, अशुद्वीपस्य ऐरवत क्षेत्र के चौथे तीर्थ कर सदानचन्द्र - ३१९।

के सातवें तीर्थंकर सुपाश्वनाथ, जम्बू द्वीप के ऐरवत क्षेत्र के सातवें तीर्थंकर श्यामचन्द्र-१३४६।

भरहे य सीयल जिणो, एरवए सुव्वई जिणवरिंदो ।

भरहे सेज्जंस जिणो, एरवए जुक्तिसेणो वि ।३५०।

(भरते च शीतलजिनः, एरवते सुव्रती जिनवरेन्द्रः ।

भरते श्रेयांसजिनः, ऐरवते युक्तिपेणोऽपि ।)

इसी भरत क्षेत्र के दशवें तीर्थंकर शीतलनाथ, जम्बूद्वीपीय ऐरवत क्षेत्र के दशवें तीर्थंकर सुव्रती, इसी भरत के ग्यारहवें तीर्थंकर श्रेयांसनाथ, जम्बूद्वीपीय ऐरवत क्षेत्र के उनके समवयस्क ग्यारहवें तीर्थंकर युक्तिसेन ।३५०।

विमलो य भरहवासे, एरवए सीहसेण जिणचंदो ।

भरहे अणंतई जिणो, असंजल जिणो य एरवए ।३५१।

(विमलश्च भारतवर्षे, ऐरवते सिंहसेण-जिनचन्द्रः ।

भरते अनन्त हि जिनः, असंजल (आश्वज्जल) जिनश्च ऐरवते ।)

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र के १३ वें तीर्थंकर विमलनाथ और ऐरवत क्षेत्र के तेरहवें तीर्थंकर सिंहसेन, इसी भरत क्षेत्र के १४ वें तीर्थंकर अनन्तनाथ, ऐरवत क्षेत्र के चौदहवें तीर्थंकर असंजल ।३५१।

धम्मो य भरहवासे, उवसंत जिणोय एरवयवासे ।

संती य भरहवासे, एरवए दीहसेण-जिणो ।३५२।

(धर्मश्च भारतवर्षे, उपशान्त जिनश्चैरवतवर्षे ।

शान्तिश्च भारतवर्षे, ऐरवते दीर्घसेण-जिनः ।)

जम्बूद्वीपस्य भरत क्षेत्र के पन्द्रहवें तीर्थंकर धर्मनाथ, जम्बू द्वीप के ही ऐरवत क्षेत्र के पन्द्रहवें तीर्थंकर उपशान्त, इसी भरत क्षेत्र के १६ वें तीर्थंकर शान्तिनाथ, जम्बू द्वीपीय ऐरवत क्षेत्र के सोलहवें तीर्थंकर दीर्घसेन ।३५२।

कुंभू य भारवासे एरवथम्मि य महादि लोमवलो ।
 आ जिणवरो य भग्गे, अण्णाम जिणो य एरवण ॥३५३॥
 (कुम्भूएव भग्गवर्षीं एरवणे य महादि लोमवलः ।
 आ जिनवरदन भाते, अतिवार्वजिनदन्तैरवते)

इस भारत क्षेत्र के १७ वें सीमेंटर कुम्भूभाव, ऐरवत क्षेत्र के
 १७ वें सीमेंटर लोमवल, एव भारत क्षेत्र के अठारहवें सीमेंटर
 मत्तभाव, एरवत क्षेत्र के भी १० वें सीमेंटर प्रतिपाद्य — ॥३५३॥

नमि जिणवरो य भग्गे, एरवण तामकोट्ट जिणचंटी ।
 भग्गन्नि य पीट जिणो, एरवण वारिसेणो वि ॥३५४॥
 (नमिः जिनवरदन भग्गे, एरवणे तयानकोष्ठ-जिनचन्द्रः ।
 भाते य पीट जिनः, एरवणे वारिसेणोऽपि ।)

कुम्भूएव के भारत क्षेत्र के द्वादशवर्ष सीमेंटर नमिवाप,
 एरवत क्षेत्र के ११ वें सीमेंटर तयानकोष्ठ, एव भारत के चौदहवें
 सीमेंटर पीट (महावीर-पट्ट भाग) और महावीर की सम्मवेत्ता-पुत्र
 मत्त में अष्टवर्षीएव एरवत क्षेत्र में अठारह वृत्त भाग के चौदसवें
 सीमेंटर वारिसेणो — ॥३५४॥

केरल नाण्डकोट्टिय, जिणलोप परवणरवभूगवभाया ।
 एणे इमोण जिणा, सुवण्णवण्णम सुणेवण्णम ॥३५५॥
 (केरलकोटी नाण्डिय, जिणोप परवण-वस्तु-वस्तुभावाः ।
 एणे इमोणजिणाः, सुवर्णवर्णाः सुनेवण्णाः ।)

केरलकोट्टिय नाम केरलकोट्टी के नाम पर अठारह-
 वर्षीय परवणों के जिणलोपकी भावा का अठारह वृत्त भाग के चौद
 सवें सीमेंटर ही सीमेंटर अठारह वृत्तों के अठारह वृत्तों के अठारह
 वृत्तों के चौदसवें सीमेंटर

एरवणे एरवण सुं, एरवणे एरवणे एरवणे सुं ।
 अष्टवर्षी य मत्तमो, सुवण्णवण्णम जिणचंटी ॥३५६॥

(चतसृष्वप्येरवतेषु एवं चतसृष्वपि च भरतवर्षेषु ।
अष्टाविंशतिः च शतां, स्वर्णवर्णं जिनेन्द्राणाम् ।)

एवं---इस प्रकार (जिस प्रकार कि जम्बूद्वीप के एक भरत और एक ऐरवत क्षेत्र में दो दो एक ही समय में उत्पन्न हुए उपरि-वर्णित ऋषभ चन्द्रानन आदि ३२ तीर्थंकर तपाये हुए शुद्ध श्रेष्ठ स्वर्ण के रंग के समान वर्ण वाले थे उसी प्रकार उपरिर्चित दो दो तीर्थंकरों के जन्म के साथ साथ विना एक क्षण के अन्तर के---शतशः ठीक एक ही समय में आठ आठ की संख्या में जन्मे हुए, घातकी खण्ड और पुष्करार्द्ध द्वीप के) चारों ही भरत क्षेत्रों और चारों ही ऐरवत क्षेत्रों में १२८ तीर्थंकरों का वर्ण प्रतप्त स्वर्ण के समान था ।३५५।

[स्पष्टीकरणः---ढाई द्वीप में पाँच भरत क्षेत्र हैं---एक जम्बू-द्वीप का, दो घातकी खण्ड के और दो ही पुष्करार्द्ध द्वीप के । इसी प्रकार ढाई द्वीप में पाँच ऐरवत क्षेत्र हैं---एक जम्बूद्वीप का दो घातकी खण्ड द्वीप के और दो ही पुष्करार्द्ध द्वीप के । प्रवर्तमान अवसर्पिणी काल में इन दशों क्षेत्रों में प्रत्येक में चौबीस-चौबीस तीर्थंकरों के हिसाब से दश चौबीसियां, तदनुसार २४० तीर्थंकर हुए । ३३६ से ३५५ तक की २० गाथाओं का मारांश यह है कि इन २४० तीर्थंकरों में से बीस तीर्थंकरों का देह-वर्ण श्यामल, बीस का प्रियंगुवर्णाभ, बीस का पद्मगर्भगौर, बीस का चन्द्र की दुग्ध-धवल चांदनी के समान श्वेत और शेष १६० तीर्थंकरों का वर्ण तपाये हुए श्रेष्ठ स्वर्ण के समान था ।]

दससुवि वासेसेत्तो, जिणिंद चंदाण सुणसु संठाणं ।

वज्जरिसभ संघयणा, समचउरंसाय संठाणे ।३५७।

(दशष्वपि वर्षेषु-इतः, जिनेन्द्रचन्द्राणां शृणु संस्थानम् ।

वज्रऋषभ संहननाः, समचतुरस्राश्च संस्थाने)

ढाई द्वीप के पाँच भरत और पाँच ऐरवत --इन दशों ही क्षेत्रों में हुए (२४०) तीर्थंकरों के संस्थान के सम्बन्ध में अब सुनिये । वे सबके सब (सभी) वज्रऋषभ संहनन और समचतुरस्र संस्थान के धनी थे ।३५७।

सर्वाणं पर्याहं, काउं निरिन्धायप्राहिं रेहाहिं ।
 उद्धायप्राहिं काउं, पंच पर्याहं तो षडमे ।३५८।
 (हाविंशत् गृहाणि, कृत्वा निर्यगायताभिः रेहाभिः ।
 ऊर्ध्वाधोभिः कृत्वा, पंच गृहाणि ततः प्रथमे ।)

पृथी ३२ और पृथी ५, रेखाएं स्थितकर ऊपर से नीचे पांच
 पंक्तियों में से शीत-संकीर्ण समकोण पर बनाये जायें । तदनन्तर प्रथम
 पंक्ति पर—(३५८)

पञ्चम जिघ निरंतर, मुन्न दुर्गं द्वि जिघ मुन्न नियगं च ।
 द्वौ जिघ मुन्न जिघिदौ, मुन्न जिघौ मुन्न दोन्नि जिघा ।३५९।
 (पंचम जिघा निरन्तर, शून्यद्विकं प्रथो जिघा शून्य विकं च ।
 द्वौ जिघौ शून्यं जिघेन्द्रः, शून्यं जिघा, शून्यं द्वौ जिघौ ।)
 [द्वि प्रथमा पंक्तिः]

प्रथम पंक्तिः—

निरन्तर पञ्चम पंक्ति में उभयतः मध्य शीर्षद्वय के नाम, निर
 घाते के दो पंक्तों में शून्य, निर ३ पंक्ति में शीर्षद्वय में अष्टाशुभ शीर्ष
 शीर्षद्वय के नाम, निर घाते के शीर्ष पंक्ति में शून्य, उभयो घाते के
 दो पंक्तों में शीर्षद्वय और शीर्षद्वय के शीर्षद्वय के नाम, उभयो घाते के
 एक पंक्ति में शून्य, निर घाते के एक पंक्ति में शीर्षद्वय शीर्षद्वय का
 नाम, घाते के एक पंक्ति में शून्य, ततः घाते के एक पंक्ति में शीर्षद्वय
 शीर्षद्वय का नाम, उभयो घाते के एक पंक्ति में शून्य और उभयो घाते
 के शीर्षद्वय में शीर्षद्वय और शीर्षद्वय शीर्षद्वय के नाम (३५९) ।

[त्रयोप पंक्तिः]

द्वौ पञ्चमो मुन्न वेत्त, पञ्च पञ्चमो मुन्न पञ्चमो द्वौ मुन्ना ।
 पञ्चमो मुन्न द्वौ पञ्चमो, मुन्नं पञ्चमो मुन्नायं च ।३६०।
 (द्वौ पञ्चमो शून्यं पञ्चोद्वय, पंच पञ्चिनाः मुन्नं पञ्चो द्वौ मुन्ने ।
 पञ्चो शून्यं द्वौ पञ्चमो, शून्यं पञ्चो द्वौ मुन्ने च ।)

[तृतीय पंक्तिः]

दूसरी पंक्ति:—

दूसरी पंक्ति पर पहले दो घरों में प्रथम और दूसरे चक्रवर्तियों के नाम, फिर आगे के १३ घरों में शून्य, फिर आगे के पांच घरों में तीसरे से सातवें चक्रवर्तियों के नाम, उससे आगे के एक घर में शून्य फिर आगे के एक घर में आठवें चक्रवर्ती का नाम, उससे आगे के दो घरों में शून्य, फिर आगे के एक घर में नौवें चक्रवर्ती का नाम, उससे आगे के एक घर में शून्य, उससे आगे के दो घरों में दशवें और ग्यारहवें चक्रवर्ती का नाम, उससे आगे के एक घर में शून्य उससे आगे के एक घर में बारहवें चक्रवर्ती का नाम, उससे आगे के अन्तिम दो घरों में शून्य । ३६०।

[अथ तृतीया पंक्ति:]

दस सुन्न पंच केशव, पण सुन्नं, केसी सुन्न केसी य ।

दो सुन्न केशवोऽपि य, सुन्न दुगं केशव ति-सुन्नं । ३६१।

(दश शून्यानि पंच केशवा, पंचशून्यानि केसीः शून्य केसी च ।

द्वे शून्ये केशवोऽपि च, शून्यद्विकं केशवः त्रीणि शून्यानि ।)

तीसरी पंक्ति:—

तीसरी पंक्ति के पहले दश घरों में शून्य, आगे के पांच घरों में क्रमशः ५ केशवों (वासुदेवों) के नाम, आगे के पांच घरों में शून्य, इससे आगे के एक घर में केशव का नाम, फिर एक घर में शून्य, इससे आगे के एक घर में केशव का नाम, फिर दो घरों में शून्य, फिर एक घर में केशव का नाम, फिर दो घरों में शून्य, इससे आगे के एक घर में नौवें केशव का नाम, इससे आगे के अन्तिम तीन घरों में शून्य । ३६१।

पंचसय अद्द पंचम, चउरो चउद्द तिन्नि य सयाइं ।

अड्डाड्डजा दोन्नि य, दिवद्धमेगं धणुसयं च । ३६२।

नइइ असीइ सत्तरि, सट्टी पणास तह य पणयाला ।

वायालाई धणुइं य, चालीस [चत्तालं] अद्द धणुगं च । ३६३।

चत्ताला पणतीसा, तीसा उणतीस अट्टवीसा य ।

अट्टवीसा पणवीसा वीसा तह सोल पणरसं । ३६४।

वाम दस सप्तधनुं, स्यणी षड सप्त होइ उच्चव ।
त्रिण चक्रवर्तिकेव, चउथ पर यमि निर्दिष्ट ॥३६५॥

[चतुर्थ पंक्तिः]

(पंचम अङ्ग पंचम, चत्वारि चत्वार्यङ्गं त्रीणि च गतानि ।
आर्द्धं द्वि द्वौ च, इत्यर्द्धं एकं भुजुदभनं च ॥३६२॥
नवति अर्धलिः सप्तलिः, षष्टिः पञ्चाशद् तथा च पंचचत्वारिंशत् ।
द्वि चत्वारिंशत् भुजुपि च, चत्वारिंशद्वर्द्धं भुजुष्कं च ॥३६३॥
चत्वारिंशत् पञ्चविंशत्, त्रिंशत् एकोनविंशत् अष्टाविंशतिश्च ।
पञ्चविंशतिः पञ्चविंशतिः तथा षोडश पञ्चदश ॥३६४॥
त्रादश दस सप्त भुजुपि, सन्नयः नव सप्त भवति उच्चता ।
त्रिनचक्रवर्तिकेव, चतुर्थ गृहे निर्दिष्टम् ॥३६५॥)

शेषो पंचिम ...
शेषो पंचिम मे पदके मे संकर २७ के मर ३३५ पमर, ५००
पमर, ५५० पमर, ५००, ३३०, ३००, २५०, २००, १५०, १००
पमर -- २५०

१०, ५०, ३०, २०, १०, ५०, २०, १०, ५०, २०, १०, ५०, २०, १०, ५०
५० पमर २०, १०, ५०, २०, १०, ५०, २०, १०, ५०, २०, १०, ५०

१० पमर, १० पमर -- ५० पमर, ६ पमर अर्धान् शेष हाथ शीर
७ पमर शरीर की पमरार्ध, ६ पमर अर्ध शीर मे चार्धशरीर
पमरशरीर शीर पमर अर्धान् चार्धशरीर के शरीर की अर्धार्ध शरीर
शरीर ॥३६॥

उपरो पंच पदार्थ, शेषो नव ग्यणि सप्तशतं त्रिणो ।
सोमद पंच मरु च उच्चतम दस पंच परिर्हाता ॥३६६॥

पमर शरीर शरीर ...
पमरः पमरशरीर शरीर, शरीरः नवगणयः सप्तशतं त्रिणो ।
शेषो शरीर शरीर शरीर च, उच्चतम दस पमर पमि शरीर

पंचनवतिः चतुरशीतिः, पञ्चपष्टिः पष्टिः तथा च षड्पञ्चाशत् ।
 पञ्च पञ्चाशत् त्रिंशत् द्वादश, दश त्रीणि एकं सहस्राणि ।३७३।
 सप्तशतानि शतमेकं, वर्षाणां द्वासप्ततिश्च ।
 पञ्चाद्दशत (४५०) जिनचक्रिकेशवानां आयुप्रमाणं मुनेतव्यम् ।
 ३७४।)

[चतुर्भिःकुलकम्]

पांचवीं पंक्ति :---

पांचवीं पंक्ति के पहले घर से लेकर सैंतीसवें घर तक क्रमशः
 निम्नलिखित रूप में लिखा जाय :--

८४ लाख पूर्व, ७२ लाख पूर्व, साठ लाख पूर्व, ५० लाख पूर्व,
 ४० लाख पूर्व, ३० लाख पूर्व, २० लाख पूर्व, १० लाख पूर्व, २ लाख
 पूर्व, १ लाख पूर्व---।३७१।

८४ लाख वर्ष, ७२ लाख वर्ष, ६० लाख वर्ष ३० लाख वर्ष,
 १० लाख वर्ष, ५ लाख वर्ष, ३ लाख वर्ष, १ लाख वर्ष---।३७२।

६५ हजार वर्ष, ८४ हजार वर्ष, ६५ हजार वर्ष, ६० हजार
 वर्ष, ५६ हजार वर्ष, ५५ हजार वर्ष, ३० हजार वर्ष, १२ हजार वर्ष,
 १० हजार वर्ष, ३ हजार वर्ष, १ हजार वर्ष---।३७३।

७०० वर्ष, १०० वर्ष और ७२ वर्ष । यह पांच भरत और
 पांच ऐरवत--इन दशों क्षेत्रों के कुल मिलाकर ४५० तीर्थकर-चक्री-
 और वासुदेवों की आयु का प्रमाण समझना चाहिए ।३७४।

चुलसीति वावचरि, सङ्घी पण्णास चत्त तीसा य ।

वीसा दस दो एगं च, होंति पुव्वाण लक्ख्वाइं ।३७५।

चउरासी य वावचरि य, सङ्घी य होइ नायव्वा ।

तीसा दसेव एगं च, वासलक्ख्वा मुण्येव्वा ।३७६।

पञ्चाणउइ सहस्सा, चउरासीति य पंचपण्णा य ।

तीसा दस एग सहस्सं, समयेगं य वावचरिं वीरे ।३७७।

(पक्षेय भीषं कृत्वा मातृवृत्त्या पृथक् च विद्यमानं चक्षुष्यात् --)

(चतुर्गोत्रिभिः ज्ञानमनिचः, पष्टिः पञ्चाशत्तु चक्षुषिणश्च त्रिंशत्तु त्रिंशत्तु ।
त्रिंशत्तुः दश द्वौ एकं च, भवन्ति पक्षाणां लक्षाणि ॥३७४

चतुर्गोत्रिणश्च ज्ञानमनिचश्च, पष्टिश्च भवन्ति ज्ञानमनिचः ।
त्रिंशत् दशैव एकं च, अपलिभाः मृतेतन्या ॥३७६॥

पञ्चमवनिमहत्याः, चतुर्गोत्रिणश्च पञ्चरश्माश्च
त्रिंशत् दश एकं महत्याणि, ज्ञानमेकं च ज्ञानमनिचः त्रिंशत् ॥३७७॥
पृथक् एव मे शीर्षं करोती वायु वा विद्यमान --

२४ ज्ञान पूर्व, ७२ ज्ञान पूर्व, ६० ज्ञान पूर्व २० ज्ञान पूर्व,
२० ज्ञान पूर्व, २० ज्ञान पूर्व २० ज्ञान पूर्व १० ज्ञान पूर्व, १० ज्ञान
पूर्व, १ ज्ञान पूर्व -- ३७४

२४ ज्ञान पूर्व, ७२ ज्ञान पूर्व, ६० ज्ञान पूर्व, २० ज्ञान पूर्व
१० ज्ञान पूर्व १ ज्ञान पूर्व -- ३७५

६२ ज्ञान पूर्व, २४ ज्ञान पूर्व, २४ ज्ञान पूर्व ६ ज्ञान पूर्व,
६० ज्ञान पूर्व १ ज्ञान पूर्व, २० ज्ञान पूर्व १० ज्ञान पूर्व, १० ज्ञान
पूर्व १० ज्ञान पूर्व, १० ज्ञान पूर्व १० ज्ञान पूर्व १० ज्ञान पूर्व
वायु वा विद्यमान ॥३७६॥

चतुर्गोत्रिणश्च चक्षुष्यात् पृथक् च विद्यमानं चक्षुष्यात् ॥३७६॥
ज्ञानं च विद्यमानं चिच्छेत् । ज्ञानार्थं मयं महत्यात् ॥३७६॥

(एष पञ्चमवनिमहत्याः पृथक् च वायु वा विद्यमानं चक्षुष्यात् वा
चतुर्गोत्रिणश्च ज्ञानमनिचश्च, पक्षाणां भवन्ति लक्षाणि ।
ज्ञानं च त्रिंशत् दशैव एकं च, अपलिभाः मृतेतन्या ॥३७६॥

पृथक् एव मे शीर्षं करोती वायु वा विद्यमान --
२४ ज्ञान पूर्व ७२ ज्ञान पूर्व ६० ज्ञान पूर्व २० ज्ञान पूर्व
२० ज्ञान पूर्व २० ज्ञान पूर्व २० ज्ञान पूर्व १० ज्ञान पूर्व
१० ज्ञान पूर्व १ ज्ञान पूर्व -- ३७४

२४ ज्ञान पूर्व, ७२ ज्ञान पूर्व, ६० ज्ञान पूर्व, २० ज्ञान पूर्व
१० ज्ञान पूर्व १ ज्ञान पूर्व -- ३७५

से और शेष बावीस तीर्थकर अपनी अपनी जन्म-नगरियों से महाभिनिष्क्रमण कर प्रव्रजित हुए ।३६०।

मल्ली पासो अरहा, सेज्जंसो चेत्र वासुपुज्जो य ।

पुव्वण्हे पव्वइया, सेसा पुण पच्छिमण्हम्मि ३९१।

(मल्लिपार्ष्वाऽर्हतौ, श्रेयांशश्चैव वासुपूज्यश्च ।

पूर्वाह्णे प्रव्रजिताः, शेषाः पुनः पश्चिमाह्वे ।)

तीर्थङ्करों के प्रव्रजित होने का समय—

तीर्थकर मल्लिनाथ, पार्श्वनाथ, श्रेयांसनाथ और वासुपूज्य--- ये चार तीर्थङ्कर पूर्वाह्णे में तथा शेष बीस तीर्थकर मध्याह्नोत्तर काल में प्रव्रजित हुए ।३६१।

[स्पष्टीकरण--आवश्यक मलय में निम्नलिखित गाथा द्वारा पार्श्वनाथ, अरिष्टनेमि, श्रेयांसनाथ, सुमतिनाथ और मल्लिनाथ इन पांच तीर्थंकरों के पूर्वाह्णे में दीक्षित होने का उल्लेख किया गया है :---]

पासी अरिट्ठनेमो, सेज्जंसो सुमति मल्लिनाथो य ।

पुव्वण्हे निक्खन्ता, सेसा पुण पच्छिमण्हम्मि ।२१०।]

एगो भगवं वीरो, पासी मल्ली य तिहिं तिहिं सएहिं ।

भगवं पि वासुपुज्जो, अहिं पुरुस सएहिं निक्खन्तो ।३९२।

(एकः भगवान् वीरः, पार्श्वः मल्ली च त्रिभिस्त्रिभिश्शतैः ।

भगवानपि वासुपूज्यः, षट्भिर्षु रूपशतैः निष्क्रान्तः ।)

तीर्थंकरों के दीक्षा साथी :—

भगवान् महावीर एकाकी ही, भगवान् पार्श्वनाथ और मल्लिनाथ दोनों तीन तीन सी व्यक्तियों के साथ, भगवान् वासुपूज्य छः सी पुरुषों के साथ महाभिनिष्क्रमण कर प्रव्रजित हुए ।३६२।

उग्गाणं भोगाणं, राट्ठणाणं च खत्तियाणं च ।

चउहिं सहस्सेहिं उससो, सेसा उ सहस्स परिवारा ।३९३।

(उग्राणां मोगानां, राजन्यानाञ्च क्षत्रियाणाञ्च ।
चतुर्भिस्तादृशैः प्रायमः, शेषान्तु नहस्य परिवाराः ।)

मगवान् ऋषभदेव उग्र (आरक्षक न्यायीय), मोग (गुरु प्राय
अर्थात् संगार पक्ष में वायु आदि की दृष्टि में यह होने के कारण
समाहर के पात्र), राजन्य (मगव्य मिथजन), और क्षत्रिय (मामग्न
आदि) इन चार वर्गों के चार हजार पुरुषों के साथ और उग्र
गौरव एक एक महस्य पुरुषों के साथ प्रदर्शित हुए । ११६३।

उदिय उदिय कृत्यंभा, सर्व्वैषि य जिणवरा चउर्वाव ।
अपकणमारयण निदय अवउज्जिप तेउ पव्वद्वा । ३९४
(उदितोदित कृत्यंभाः सर्व्वैषि च जिनवराश्चतुर्विंशतिः ।
अपकनकरत्ननिचयान् अपोद्य ते तु प्रव्रजिताः ।)

उरुहृष्ट कुल और उरुहृष्ट वंश में उग्रकन हुए सभी शीघ्रीतो
तीर्थंकर धम-धान्य-रक्षण और रत्नों की प्रति विमान राक्षियों का
परित्याग कर प्रदर्शित हुए । ११६४।

समणगण पच गुरुणो, भवियजण विबोहगा जिणवरिदा ।
पंचमहस्यप सुता, तवचरसुवणसगा पीता । ३९५
(अपणगणभवगुरवः, भविकजन विबोधकाः जिनवरेंद्राः ।
पंच महास्यप सुत्ताप्यपचणोपदेसकाः पीताः ।)

सभी तीर्थंकर समणगणों के तबोहृष्ट महान् धर्मनाटक,
कमरपूर, मध्य वर्गों की प्रबुद्ध करने वाले, पंच महास्यो के धामक,
अपणगण के उपदेसक और महापीर थे । ११६५।

सीहसा निदसांसा, सीहसा पंच विहरिया पीया ।
सीहेदि सीहसरिसेदि, सीह सलित विदकन पया । ३९६।
(विहवसा निप्यसन्दा, विहवसा पंच विहरिसापीयाः ।
किरिपैः तिरमरुपैः, सिंदरसलितविहसं प्राप्याः ।)

जब सब तीर्थंकरों के सिह के समान धर्मविद्वान्मरण किया जब
पीर शीघ्री के सिह की प्रति विभेन ही विचरता किया और सिहो

समान शिष्यों के साथ पुरुषसिंहों के योग्य शोभास्पद अनन्त पराक्रम को प्राप्त किया । ३६६।

दंसणनाण चरित्रस्स, देसचरण निच्चयविहण्णू ।

नवसुवि वासेसेवं, निकखंताकखायकित्ति जिणा । ३९७।

(दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्य, देशचरण? - निश्चयविधिज्ञा ।

नवस्वपि वर्षेष्वेवं, निष्क्रान्ताऽऽख्यातकीर्त्तिजिनाः ।)

दर्शन, ज्ञान, चारित्र तथा व्यवहार और निश्चय की विधि के पूर्ण ज्ञाता विश्वविश्रुत कीर्त्तिशाली ६ क्षेत्रों के तीर्थंकर भी इसी प्रकार महाभिनिष्क्रमण कर प्रव्रजित हुए । ३६७।

सुमइत्थ निच्चभत्तेण, निग्गओ वासुपुज्जो जिणो चउत्थेण ।

पासो मल्लिच्चिय, अट्टमेण सेसाउ षट्ठेण । ३९८।

(सुमतित्थ नित्यभक्तेन निर्गतः वासुपूज्य जिनश्चतुर्थेन ।

पार्श्वः मल्ली किल, अष्टमेन शेषास्तु षष्ठेन)

तीर्थंकर का अभिनिष्क्रमण तपः—

भगवान् सुमतिनाथ नित्य भक्त अर्थात् अनवरत भक्त से, वासुपूज्य चतुर्थ भक्त (एक उपवास) से, पार्श्वनाथ तथा मल्लिनाथ अष्टम भक्त अर्थात् षष्ठे की तपस्या से और शेष वीस तीर्थंकर षष्ठ भक्त अर्थात् षष्ठे (दो उपवास) की तपस्या से अभिनिष्क्रमण कर दीक्षित हुए । ३६८।

नास्ति प्रताग्रपि । ३९९।

[३६९ संख्या की गाथा हमारे पास की हस्तलिखितप्रति में नहीं है । पूर्वपर सम्बन्ध को देखते हुए, ऐसा तो प्रतीत नहीं होता कि कोई गाथा लिपिक दोष के कारण छूट गई हो । संख्या लगाने में ही सम्भवतः कोई त्रुटि रह गई है ।]

संवच्चरेण भिक्खा, लद्धा उसभेण-लोगनाहेण ।

सेसेहि वीय दिवसे, लद्धाउ पढमभिक्खाउ ४००।

(संक्षेपेण भिक्षा, लब्धा ऋपमेण लोकनाथेन ।
शेषेर्द्वितीय दिवसे, लब्धाः प्रथमभिक्षास्तु ।)

श्री लोचननाथ भगवान् ऋषभदेव ने एक वर्ष पश्चात् प्रथम भिक्षा प्राप्त की । सोप मथ तीस करों ने दीक्षा पदार्थ करने के दूसरे दिन ही प्रथम भिक्षा प्राप्त की । ४०० ।

उत्तमस्ता पठम भिक्षुकेकरोपरतो अमि लोगनाहम्न
सैमाणं परमण्णं, अमियरस रतोवमं आमि । ४०१ ।
(आपमस्य प्रथमभिक्षायामिस्तुरममामीन्लोकनाथस्य ।
शेषानां परमान्त्तं, असृतरस-रसोपममासीत् ।)

लोकनाथ ऋषभदेव की प्रथम भिक्षा में इक्षुरस और जैतून सेबीज तीस करों की प्रथम भिक्षा में असृतरस के समान स्वादिष्ट श्रेष्ठ पकवान् था । ४०१ ।

मन्तीपायुत्तमस्म, णाणं सेज्जंमथायुपुज्जस्म ।
पुज्जण्हे उत्तण्णं, सैमाणं पच्छिमण्हम्मि । ४०२ ।
(मन्तीपारदर्पितस्य, ज्ञानं श्रेयानं वासुपुज्जस्य ।
पूर्वादि, ये उत्तण्णं, शेषानां पच्छिममाहं ।)

मन्तिनाथ, वासुदेवाय वासुभदेव, शंभुनाथ और वासुदेव
दस तीस तीस करों की पूर्वाह्न में तथा जैतून १२ तीस करों की पश्चि-
माह्न में देवमन्थान की उत्तमपि हुई । ४०२ ।

मन्तीकरण-मन्तिरजम कला में विष्णुमिथिल गाराहं द्वारा
केवल भगवान् महावीर वा पच्छिमाह्न में और जैतून १२ तीस करों
की पूर्वाह्न में देवमन्थान की उत्तमपि का प्रयोग किया गया है—

वासु भगवान्, पुज्जण्हे पच्छिमदिह वीरस्य । ४०३ ।

श्री लोचन के यह वाक्य मन्थान दिशा की दिग्
निर्धारणक है ।

चंद्राणणे मरुदेवे य, अग्निदत्ते य जुत्तिसेणजिणे ।
 सेज्जंसे पुव्वण्हे, सेसाणं पच्छिमण्हम्मि ।४०३।
 (चन्द्राननमरुदेवौ च अग्निदत्तश्च युत्तिसेन जिनस्य ।
 श्रेयांसस्य पूर्वान्हे, शेषानां पश्चिमाह्नि ।)

चन्द्रानन, मरुदेव, अग्निदत्त, युवितसेन और श्रेयांस (नामक पांचों ऐरवत क्षेत्रों के तीर्थ'करो) को पूर्वाह्नि में और ऐरवत क्षेत्रों के शेष (६५) तीर्थ'करो को पश्चिमाह्नि (अपराह्नि) में केवलज्ञान की उपलब्धि हुई ।४०३।

स्पष्टीकरण—तित्थोगाली पइन्नयकार ने कहीं स्पष्ट शब्दों में धातकी खण्ड एवं पुष्कराद्ध द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्रों की चौबीसियों के तीर्थ'करो के नामों का उल्लेख नहीं किया है, किन्तु इस गाथा में पांचों तीर्थ'करो के नामों में प्रयुक्त बहुवचन को देखकर अनुमान किया जाता है कि यदि इसमें लिपिकारों की ओर से कहीं त्रुटि नहीं की गई है तो तित्थोगाली पइन्नयकार की मान्यतानुसार जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र को चौबीसी के तीर्थ'करो के समान शेष चार भरतक्षेत्रों की चार चौबीसियों के तीर्थ'करो के नाम भी ऋषभ आदि तथा ऐरवत क्षेत्रों को पांचों चौबीसियों के तीर्थ'करो के नाम भी समान रूप से चन्द्रानन आदि थे ।]

दससुवि वासेसेवं, दस समेगं^२ तु केवली होंति ।
 दस चैव धम्म तित्था, निर्दिट्ठा वीतरागेहिं ।४०४।
 (दशष्वपि वर्षेष्वेवं, दश समेकं तु केवलिनः भवन्ति ।
 दश चैव धर्मतीर्थाः, निर्दिष्टाः वीतरागैः ।)

दशों क्षेत्रों में इस प्रकार के एक साथ-एक समय में दश तीर्थ'कर और दश ही धर्मतीर्थ होते हैं यह वीतरागों ने बताया है ।४०४।

१ ऐरवत क्षेत्रेषूपत्यन्नात् जिमानुद्दिश्यैषा गाथा प्रोक्ता ।

२ समेगं—समेकं, साद्धंम् वा एकसमये—इत्यर्थः ।

उत्तमस्त पुरिमवाले, पारवतीये अरिट्टनेमिस्त ।
 आग्रमपय उजाये, मन्लिस्त मणोरमे चैव ।१०५।
 (श्रुपमस्य पुरिमवाले, ब्राह्मव्यामरिट्टनेमिनः ।
 आश्रमपदोदाने, मन्ल्याः मनोरमे चैव ।)

तीर्थं करीं के कंयनीपलक्षि के म्यन :-
 मगवान् श्रमभदेव को पुरिमताय उद्यान में, अरिट्टनेमि को
 शारिका के आश्रमपद उद्यान में, मन्लिनाय को मनोरम उद्यान में
 ।१०५।

नाणं च बद्धमाणस्त, उज्जुवाली नदीय नीरंमि ।
 सेनाणं सन्वेमि, जमुज्जाणेषुं निक्खंता ।१०६।
 (नाणं च बद्धमाणस्य, श्रुपुपालीनयास्तीरे ।
 सेनाणां सन्वेपां, वेसु उधानेषु निष्कान्ताः ।)

मगवान् बद्धमाण को अज्जुवाली नदी के तट पर सोर संव
 तीर्थं करीं वाली उद्यान में बंधवमाण कायम हुआ जिनमें कि वे
 कीर्तित हुए थे ।१०६।

पर्याणं पणुवई, वेदपककरो उ बद्धमाणस्त ।
 सेनाणं पुच कन्ता, मरीओ कास गुणाड ।१०७।
 (शाशिकुं धनू वि चैव वृशास्तु बद्धमाणस्य ।
 सेनाणां पुनई द्वाः शरीकः श्रावणगुणास्तु ।)

चैव वृशी की अर्थाई :-
 मगवान् महाकीर के चैव वृश की अर्थाई ११ वसुप सोर
 तीर्थ तीर्थकारी के चैव वृशी की अर्थाई उनके मरीओ की अर्थाई से
 कासु वृशिक की ।१०७।

नन्तोह मगवाने काली विपय, विपंगु कसे प ।
 बच्छई प मिंमि, नामे माणू तिरकसु प ।१०८।
 (नन्तोहः मगवानः काली विपकाः विपंगुहाराप ।
 कलावापनिरीरः नामः माणू तिरकसुरप ।)

तीर्थंकरों के कैवल्यवृक्ष :—

ऋषभादि महावीरान्त चौबीस तीर्थंकरों को क्रमशः निम्न-लिखित वृक्षों के नीचे केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ :—

न्यग्रोध (१), सप्तपर्ण (२), शाल (३), प्रियक अथवा प्रियाल (४), प्रियंगु (जामुन) (५), छत्राभवृक्ष (६), शिरीष (७), नाग (८), मालू (मल्लीवृक्ष) (९), पिलङ्गु (१०)---१४०८।

तिन्दू य पाडलि जंबू य, आसत्थे तह्य होइ दहिषण्णे ।

तत्तो नंदी रुक्खे, तिल पव्वए असोमे य ।४०९।

(तिन्दुकः पाटलः जंबुश्च, अश्वत्थस्तथा च भवति दधिपर्णः ।

ततः नान्दिवृक्षः, तिल (पिलङ्गु) पर्वतकोऽशोकश्च ।)

तिन्दुक (११), पाटली (१२), जम्बू (१३), अश्वत्थ (१४), दधिपर्ण (१५), नन्दी (१६), तिल---(पिलङ्गु) (१७), आम्र (१८), अशोक (१९)---१४०९।

चम्पग वउले वेडस, धावोडग सालतेयए चेव ।

नाणुप्पया य रुक्खे, जिणेहिं एते अणुग्गहिया ।४१०।

(चम्पकवकुले वेतस, -धावोडक' सालतेजकश्चैव ।

ज्ञानोत्पादाच्च वृक्षाः, जिनै एते अनुगृहीताः^२ ।)

चम्पक (२०), वकुल (वकुश) (२१), वेतस (२२), धावडक (घातकी) (२३) और शाल तेजक (२४) । इन वृक्षों के नीचे केवल ज्ञान प्राप्त कर तीर्थंकरों ने इन्हें (विश्वविख्यात बना) अनुगृहीत किया ।४१०।

नाणुप्पयाय मासा, फग्गुण पोसे य कत्तिये पोसे ।

चेत्ते २ चेत्ते २ फग्गुण २, चेत्ते य वइसाहे य ।४११।

१ घातकी ।

२ एतेषां वृक्षाणामधस्तात् ऋषभादिमहावीरान्तैश्चतुर्भिस्तीर्थंकरैः केवल-ज्ञानमुत्पादितमत एवैतेऽनुगृहीता इत्यर्थः ।

सुद्धो बहुलो सुद्धो य, तिन्नि बहुले य सुद्ध बहुलदुगं ।

सुद्धो य पक्खा एते, एत्तो दिवसा पक्खामि ।४१४।

(शुद्धः बहुलः शुद्धश्च, त्रयो बहुलाश्च शुद्धः बहुलद्विकम् ।

शुद्धश्च पक्षा एते, इतः दिवसान् प्रवक्ष्यामि ।)

शुक्ल (१५), कृष्ण (१६), शुक्ल (१७), कृष्ण (१८), कृष्ण (१९), कृष्ण (२०), शुक्ल (२१), कृष्ण (२२), कृष्ण (२३), और शुक्ल (२४) - ये पक्ष हैं । अब तीर्थङ्करों के केवलज्ञान लाभ की तिथियों का कथन करूंगा ।४१४।

एक्कारसि एक्कारसि, पंचमी चाउद्दसी य एक्कारसी ।

पूनिम छट्ठी पंचमि, तह सत्तमि नवमी ।४१५।

(एकादशी एकादशी, पंचमी चतुर्दशी च एकादशी ।

पूर्णिमा षष्ठी पंचमी, तथा सप्तमी नवमी ।)

एकादशी (१), एकादशी (२) पंचमी (३), चतुर्दशी (४), एकादशी (५), पूर्णिमा (६), छठ (७), पंचमी (८), सप्तमी (९), नवमी (१०)---४१५।

वारसि सत्तमि अट्ठमी, एक्कारसी सत्तमी त (च) तियवारा ।

एक्कारसि य अट्ठमि, एक्कारसी तह य वामासा ।४१६।

(द्वादशी सप्तमी अष्टमी, एकादशी सप्तमी त्रि (चतुः) वारान् ।

एकादशी च अष्टमी, एकादशी तथा चामावस्या ।)

द्वादशी (११), सप्तमी (१२), अष्टमी (१३), एकादशी (१४), सप्तमी (१५), सप्तमी (१६), सप्तमी (१७), [इस गाथा के द्वितीय चरण के अंतिम शब्द 'ततियवारा' को यदि पूरी २४ तिथियों की पूर्ति हेतु 'चतियवारा' पढा जाय तो--सप्तमी (१८),] एकादशी (१९), अष्टमी (२०), एकादशी (२१), अमावस्या (२२)---४१६।

तत्तो चउत्थि दसमी, कमेण नाणुप्पया एते ।

वेलाए काए नाणं, कस्सुपन्नं इमं सुणसु ।४१७।

पार्श्वनाथ को पूर्वाह्न में तथा शेष तीर्थंकरों को अपराह्न में केवल-ज्ञान प्रकट हुआ १४१८।

[स्पष्टीकरण---यह गाथा परिवर्तित स्वरूप में पुनः दे दी गई है । देखिये गाथा संख्या ४०२ और उसका स्पष्टीकरण]

जे चैव जन्मरिक्खा, नाणुपत्तीए होति ते चैव ।

भणिया रिक्खा एत्तो, वोच्छामि तवं समासेण १४१९।

(ये चैव जन्मऋक्षाः ज्ञानोत्पत्तेः भवन्ति ते चैव ।

भणिताः ऋक्षा इतः वक्ष्यामि तपो समासेन)

तीर्थंकरों के जन्मनक्षत्रों और ज्ञानोत्पत्ति के नक्षत्रों का कथन कर दिया गया अब उनके केवलज्ञानोत्पत्ति के तप का संक्षेपतः कथन करूंगा १४१९।

उसभस्स अट्ठमेणं, चउभत्तेण वासुपूज्जस्य ।

केवलनाणुप्पत्तीः, सेसाणं छट्ठभत्तेण १४२०।

(ऋषभस्याष्टमेन, चतुर्भक्तेन वासुपूज्यस्य ।

केवलज्ञानोत्पत्तीः, शेषानां षष्ठभक्तेन ।)

तीर्थंकरों के केवलज्ञान की उत्पत्ति के समय के तप :---

भगवान् ऋषभदेव को अष्टमभक्त (तेळे) के तप में, भगवान् वासुपूज्य को चतुर्थभक्त (१ उपवास) के तप में और शेष इकवीस तीर्थंकरों को षष्ठभक्त अर्थात् वेळे के तप में केवलज्ञान की उपलब्धि हुई १४२०।

[स्पष्टीकरण :---आवश्यक मलय और सत्तारिसय गण की एतद्विषयक यह गाथा द्रष्टव्य है :---

“अट्ठमभत्तामि कए, नाणमुसहमल्लि नेमि पासाणं ।

वासुपुज्जस्स चउत्थे, सेसाणं छट्ठभत्ततवे ॥”

श्वेताम्बर परम्परा में तीर्थंकरों के केवलज्ञानतप के सम्बन्ध में यही मान्यता आज प्रचलित है । पूर्व में रहे यत्किञ्चित् मान्यताभेद

को जो आर्षका हमने गाथा संख्या ४१७ के स्पष्टीकरण में व्यक्त की है, उस आर्षका की इस गाथा से पुष्टि होती है ।]

उष्णामि अर्णवे, नष्टमिय इउमत्थिय, नाणे ।
तो देव दाणविंदा, करेति पूयं जिणिंदाणं । १४२१ ।
(उत्पन्ने अनन्ते, नष्टे च क्षामस्थिके ज्ञाने ।
ततः देवदानवेन्द्राः, कुर्वन्ति पूजां जिनेन्द्राणाम् ।)

अनन्तज्ञान (केवलज्ञान) के उत्पन्न होने और क्षामस्थिक ज्ञान के नष्ट हो जाने पर तीर्थाचरों को देवेंद्र तथा दानवेन्द्र पूजा करते हैं । १४२१ ।

भवणभदे धाणवन्तर, जोइयवामी विमाणवामी य ।
सविबहुदीण सपरिमा, कामी नाणुण्णायमहिमं । १४२२ ।
(भवनपतिः धानवन्तर, ज्योतिषवामी विमानवामी य ।
सर्वदेव्या सपरिपदा, अकार्पणं ज्ञानोन्वादे महिमाम् ।)

धवनपति, धानवन्तर और ज्योतिष-मण्डल एवं विमानों में विद्यमान करने वाले देव-देवेंद्र से धरणी समस्त जगति और परिपटी महिमा के दानदान की उत्पत्ति की महिमा की । १४२२ ।

मणि कणम-रयण विषे, भूमिमाग समंततो सुरभि ।
आशोदणंकरेणं, करेति देवा विपित्तं तु । १४२३ ।
(मणि-कनक-दानविषे, भूमिधार्य समन्ततः सुरभिः ।
आशोदणान्तरेण, कुर्वन्ति देवाः विपित्तं तु ।)

केवलज्योतिष के रूप के धरणी और एक ही जगत् भूमि का देवी के रूपमें, मणिधरी तथा धरणी से विपित्त, कुर्वाणियों के कुर्वाणित्त और धरदुक्त तथा दिवा । १४२३ ।

मणिकणमारयण विषे, समंततो शौरणा वि उच्चरि ।
सज्जय साशिसंविष, नवरत्नपविष संदाये । १४२४ ।

(मणि-कनक-रत्न चित्राणि, समन्ततः तोरणानि विकुर्वन्ति ।
सद्यत्र-शालिभंजिक, मकरध्वजचिह्नसंस्थानानि ।)

वे देवगण उस भूमि के चारों ओर स्थान स्थान पर छत्रों पुत्तलिकाओं तथा कामदेव की आकृतियों से युक्त, तथा स्वर्ण-मणिरत्नों से निर्मित एवं चित्रित तोरणद्वारों की रचना करते हैं । ४२४।

विंशं ठाडं सुरभिं, जलस्थलयं दिव्यं कुसुममनीहारिं ।

पर्येति समंतेणं, दसद्ववन्नं कुसुमवासं । ४२५।

(वृन्तस्थां सुरभिं, जलस्थलयं दिव्यकुसुमनिहारिम् ।

प्रकुर्वन्ति समन्ततः, दशाद्धवर्णां कुसुमवर्षाम् ।)

वे आभियोगिक देव पाँच वर्णों के पुष्पों की वर्षा करते हुए एक योजन पर्यन्त उस समवसरण-भूमि को, जल और स्थल दोनों ही प्रकार के प्रदेशों में उत्पन्न हुए वृन्तों (डंठलों) पर पत्तों के ऊपरी भाग में स्थित (तरोताजा) परम सुगन्धित दिव्य कुसुमों की निर्हारी बना देते हैं अर्थात् दिव्य कुसुमों की अनुपम सुगन्ध से समस्त वायु-मण्डल सम्पूर्ण वातावरण को गमका (महका) देते हैं । ४२५।

तत्तोय समंतेणं, कालागुरुकुंदुरुकमीसेणं ।

गंधेण मणहरेणं, धूपघटीओ विउव्वन्ति । ४२६।

(ततश्च समन्ततः, कालागुरु-कुंदुरुकमिश्रेण ।

गन्धेन मनोहरेणं, धूपघटिकाः विकुर्वन्ति ।)

तदनन्तर आभियोगिक देवगण चारों ओर कृष्णागरु एवं कुन्दुरुक मिश्रित मनोहर सुगन्धित गन्धचूर्णों की (प्रत्येक द्वार पर तीन तीन) धूप घटिकाओं (धूपपात्रों) को संजा उन्हें प्रदीप्त करते हैं । ४२६।

उक्किट्ट सीहनाए, कलकलसदयं सव्वओ सव्वं ।

तित्थगर-पायमूले, करेति देवा निव्वयमाणा । ४२७।

(उत्कृष्ट सिंहनादानं, कलकल शब्दं च सर्वतः सर्वे ।

तीर्थकर-पादमूले, कुर्वन्ति देवाः निपतमानाः ।)

रत्नमय आभ्यन्तर प्राकार के मध्य भाग में (बीचों-बीच) चैत्यवृक्ष अर्थात् अशोकवृक्ष, उसके नीचे सर्वरत्नमय पीठ अर्थात् विशाल मंच, पीठ के ऊपर श्रीर अशोकवृक्ष के नीचे देवच्छंदक, देवच्छंदक में स्फटिक पादपीठ सहित सिंहासन, सिंहासन के ठीक ऊपर छत्रत्रयी, उसके दोनों पार्श्व में दो यक्षों के हाथों में दो चामर और धर्मचक्र आदि के अन्य जो जो करणीय कार्य हैं, उन्हें वानमन्तर (व्यन्तर) सम्पन्न करते हैं । ४३१।

सूर्योदय पच्छिमाए, ओगाहंतीए पुव्वओ एइ ।

दोहि पउमेहिं पाया, मग्गेण य होंति सत्तन्ने । ४३२।

(सूर्योदये [प्रथमायां या] पश्चिमायां [पौरुष्यां] अवगाहमानायां पूर्वत एति ।

द्वयोः पद्मयोः पादौ, मार्गतश्च भवन्ति सप्तान्ये ।)

देवों द्वारा समवसरण की रचना सम्पन्न होने पर सूर्योदय के पश्चात् सामान्यतः प्रथम पौरुषी और कभी विशेष स्थिति में पश्चिम पौरुषी की वेला में तीर्थकर भगवान् देवताओं द्वारा निर्मित दो पद्मों पर अपने चरण कमल रखत हुए पूर्व द्वार से प्रवेश करते हैं । उनके पीछे सात अन्य पद्म और रहते हैं । भगवान् के पदन्यास के पूर्व ही अन्तिम दो पद्म देवताओं द्वारा भगवान् के चरणों के नीचे रख दिये जाते हैं । ४३२।

आयाहिणपुव्वमुहो, तिदिंसिं पडिरूवगाउ देवकया ।

जिड्ड गणीअण्णो वा, दाहिण पासे अदूरम्मि । ४३३।

(आदक्षिणं पूर्वमुखः त्रिदिशं प्रतिरूपकास्तु देवकृताः ।

ज्येष्ठगणी अन्यो वा, दक्षिण पार्श्वे अदूरे ।)

तदनन्तर प्रभु अशोकवृक्ष की प्रदक्षिणा कर पूर्व की ओर मुख किये सिंहासन पर विराजमान होते हैं । शेष तीनों दिशाओं में देवों द्वारा निर्मित सिंहासनादि सहित प्रभु के प्रतिरूप प्रादुर्भूत होते हैं । भगवान् के पादपीठ के पास ही उनके ज्येष्ठ अथवा अन्य गणघर प्रभु को प्रणाम कर दक्षिण पूर्व दिग्भाग में बैठते हैं । ४३३।

जे ते देवेहि कया, निदिशि पट्टिरुक्ता जिनिंदाणं ।
नेमिं पि तप्पभावा, तयापुत्तुं हवद्दं रुवं । १४३४ ।
(मानि तानि देवैः कृतानि, विदिशं प्रतिरूपकाणि जिनेन्द्राणाम् ।
तेषामपि तत् प्रभावात् तदनु रूपं च भवति रूपम् ।)

सीधैक्यं के धर्मोक्तिक प्रभाव के कारण देवों द्वारा निमित्त
सीधैक्यं के इन विदियात्मनी तीन प्रतिरूपों का भी प्रतीक बनकर
अनुरूप ही रूप होता है । १४३४ ।

वीक्षात्मो नितन्ना, रचामोमन्म हिदि वीग ।
नवका महेमज्जणे, नेगहेति मयं तु इत्ताद् । १४३५ ।
[निंदात्मो निपण्याः रत्तागोकस्याथन्नाद् वीगाः ।
रत्ताः महेमज्जालानि, नृपदन्ति स्वयं तु इत्त्राणि ।]

रचामोक्त के नीचे निंदात्मो पर भीमकीन सीधैक्य विद्यया-
त्मो होते हैं । स्वयं इतर रत्तागोक नृप नामक शब्दों के कारण कथक
है । १४३५ ।

दोदिनि नामगड, सेयाडमणिमएदि देवेहि ।
ईजणे यमर नदि [ए] परेणि मे जिणदग्गिदाणं । १४३६ ।
(दोदिबल्लि नामगणि, सेयाणि मणिमवैरेण्टिः ।
ईमाणादयमर [मिन्द्र] महिणा, भाग्यन्ति तानि जिणदग्गिदाणाम् ।)

दोदिबल्लि और यमरदण्ड शब्दों के नीचे दोदिबल्लि नामगणि के
दोदिबल्लि नामगणि का ही प्रतीक बनकर प्रतीक है । १४३६ ।

दोदिबल्लि नामगणि, देवी के मणिमवैरेण्टि नामगणि ।
दोदिबल्लि नामगणि, दोदिबल्लि नामगणि । १४३७ ।
दोदिबल्लि नामगणि, देवी-ईमाणिनामगणि नामगणि ।
दोदिबल्लि नामगणि, दोदिबल्लि नामगणि ।

(पूर्वद्वारमागच्छन्ति, अतिसुन्दरेण द्वारेण दक्षिणिल्लेन ।
भवनपतिवानमन्तर, ज्योतिष्कानां च देव्यः ।)

भवनपति, व्यन्तर और ज्योतिष्क देवों की देवियां अति-सुन्दर दक्षिणी द्वार से पूर्व द्वार की ओर आती हैं । ४४२।

जे भवणवई देवा, अवरद्वारेण तेउ पविसंती ।

तेणं चिय जोइसिया, देवा दइया जणसमग्गा । ४४३।

(ये भवनपति-देवाः, अपरद्वारेण ते तु प्रविशन्ति ।

तेनैव हि ज्योतिष्काः, देवाः दयिताः जनसमग्राः ।)

जो भवनपति देव हैं, वे पश्चिमी द्वार से समवसरण में प्रवेश करते हैं । उसी पश्चिमी द्वार से ज्योतिष्क देव और सभी नर-नारी-गण प्रवेश करते हैं । ४४३।

एककेकिय दिसाए, तिगं तिगं होइ संनिविट्टं तु ।

आइचरिमे विमिस्सा, थी पुरिसासेसपत्तेयं । ४४४।

(एकैकस्यां दिशायां, त्रिकं त्रिकं भवति सन्निविष्टं तु ।

आद्ये चरमे विमिश्राः, स्त्री पुरुषा शेष प्रत्येकम् ।)

उपर्युक्त पूर्व-दक्षिण आदि चारों दिशाओं में से प्रत्येक में तीन-तीन वर्ग एकत्र होते हैं । जिस प्रकार पूर्व-दक्षिण दिशा में (१) संयतों का वर्ग, (२) वैमानिक देवियों का वर्ग तथा (३) श्रमणी वर्ग । दक्षिण-पश्चिम दिशा में—(१) भवनवासी देवों की देवियों का वर्ग, (२) ज्योतिष्क देवों की देवियों का वर्ग एवं (३) व्यन्तर देवों की देवियों का वर्ग । पश्चिमोत्तर दिशा में (१) भवनपति, (२) ज्योतिष्क तथा (३) व्यन्तर—ये तीन देवों के वर्ग और उत्तर-पूर्व दिशा में (१) वैमानिक देवों का वर्ग, (२) मनुष्यों का वर्ग तथा मनुष्यों की स्त्रियों का वर्ग । इनमें से पहले और चौथे इन दो त्रिकों में स्त्री तथा पुरुष दोनों ही होते हैं । जब कि दूसरे त्रिक में केवल स्त्रियां और तीसरे वर्ग में केवल पुरुष ही होते हैं । ४४४।

एतं महिड्ढियं, पणिवयंति ठियमवि वयंति पणमंता ।

ण वि जंतणा, न विकहा न परोप्पर मच्छरो न भयं । ४४५।

(गुणं महद्विकं प्रणिपद्यन्ति. शिखतमपि ब्रह्मणि प्रणमन्तः ।
नापि संशया, न विकथा न परस्पर मान्यये न भयम्)

समयपरतम में पढ़ने काकर ठंडे हुए जल की सहायता देकर
मनुष्यादि पदों में उपरिक्त यद्वि समय की प्रातः हुए देना इन समयों पर
करने और जो अत्यधिक शयन में पड़े हैं वे समयपरतम में पढ़ने में
बड़े हुए मनुष्यों का प्रमाण करने हुए अपने स्थान की और अत्यन्त
होते हैं । समयपरतम में उपरिक्त हुए पाणिपत्ता का परस्पर न किलो में
किसी प्रकार का यथत्वा ही होती है न किसी प्रकार का मान्यये और
भय ही । समयपरतम मुक्तियुक्त हुए देना, इतनी मनुष्यर हुए नही पढ़ने
किसी प्रकार की विकथा नहीं कराने । (१८८५)

सोचनें होंनि विरिया, तद्गुण, पागागमनेण जाणा ।
समाग ब्रह्मे विरिया वि ह्वंति पचोम दिग्गता वा । १८८६ ।
(द्वितीयं भवन्ति निर्वंधा, तृतीयं प्रकारान्तरैः पान्नाः ।
समागमनेः विरियाः ।

अपरिग्रह रूपी चातुर्याम धर्म में ही पाँचों महाव्रतों का पूर्णांतः पालन करते हैं। यही कारण है कि तीर्थंकरों ने अपने-अपने शासनकाल के साधुओं की प्रकृति एवं प्रज्ञा को ध्यान में रखते हुए पंचमहाव्रत और चातुर्याम धर्म की प्ररूपणा का। प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर ब्रह्मचर्य महाव्रत का पृथकतः उपदेश नहीं करते तो प्रथम तीर्थंकर के ऋजु-जड़ प्रकृति के साधु "प्रभु ने चार महाव्रतों के पालन का ही उपदेश दिया है"—यह कह कर ब्रह्मचर्य महाव्रत का पालन नहीं करते। अन्तिम तीर्थंकर के साधु भी अपनी अऋजु और कदाग्रहो प्रकृति के कारण—"यदि प्रभु को पाँचों महाव्रत अभिप्रेत होते तो स्पष्टतः पृथकतः उन पाँचों का उल्लेख करते"—इस प्रकार के अनेक तर्क प्रस्तुत कर ब्रह्मचर्य महाव्रत को छोड़ केवल शेष चार महाव्रतों का ही पालन करते।

इसी बात को दृष्टिगत रखते हुए प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर अपने साधुओं को छेदोपस्थापन (पूर्व-पर्याय को छेद कर अपनी आत्मा को पंचम महाव्रत रूपी चारित्र्य में उपस्थापन करने) का उपदेश करते हैं। छेदोपस्थापन का स्वरूप निम्नलिखित गाथा में नये तुले शब्दों में स्पष्टतः बताया गया है—

छेत्तूण तु परियायं, पौराणं तो उवित्ति अष्पाणं ।

धम्मम्मि पंच जामे, छेओवट्ठावणे स खलु ॥

एवं नवसुवि खेत्तेसु, पुरिमपच्छिममज्झिम जिणाणं ।

वोच्छं गणहरसंखं, जिणाणं नामं च पढमस्स ।४५१।

(एवं नवव्वपि क्षेत्रेषु, पुरिम-पश्चिम-मध्यम जिनानाम् ।

वक्ष्ये गणधर संख्यां, जिनानां नामं च प्रथमस्य^१ ।)

इस प्रकार शेष ६ क्षेत्रों में भी प्रथम और अन्तिम तीर्थंकरों के शासनकाल में साधुओं का छेदोपस्थापन व्रत रूप धर्म अथवा कल्प और मध्यवर्ती बावीस तीर्थंकरों के साधुओं का चातुर्याम धर्म होता है। अब मैं तीर्थंकरों के नाम, उनके गणधरों की संख्या तथा उनके प्रथम गणधरों के नाम का कथन कहूँगा—१४५१।

१ गणधर संख्यां जिनानां नामं, तेषां प्रथम गणधरस्य नामं च वक्ष्यामीत्यर्थः ।

उपनिषदेषु लुप्तमिति, गणपतय उक्तस्यैव आर्ही-(१)-या ।

अत्रिय विधिदे मउति, तु गीतगेषो' भवे आर्ही ॥१५२॥

(श्रुतभक्तिनस्य सतुगशीनिः गणपतय प्रथमसेनायाः ।

आजिनविनेन्द्रस्य सवतिः तु मिहसेनः भवेदादिः ।)

प्रथम शीर्षकार भगवान् अथमदेव के शीर्षको गणपत ये, द्वितीये प्रथमभवेन प्रथम अथवा सुदुत गणपत ये । तृतीये शीर्षकार परिकल्पनाय के २० अथवा २१ ये । चतुर्थे प्रमुक्त प्रथम गणपत प्रमुक्त प्रथम गणपत वा नाम या निरूपणेन ॥१५२॥

नाम य संभार द्विती, संनार्ण्ड शीर्ष' गणपतय तस्य ।

पदयो य वज्रधारी, अभिर्नदय विवधिक सयं' तु ॥१५३॥

(नादुतय संभारजिनस्य, संनवतिदय गजधराः तस्य ।

प्रथमदय वज्रधारीऽभिनन्दनस्य उपधिरुतयं तु ।)

श्रीतये शीर्षकार भगवान् गजधाराय के २३ गणपत ये । चतुर्थे प्रमुक्त गणपत वा नाम या नाम । पौर्वे विनोक्तय परिकल्पनाय के १०१ गणपत ये । तृतीये प्रमुक्त गणपत वा नाम वज्रधाराय या ॥१५३॥

शीर्षकारं' सुमदस्येड, सवती' विवध परम गणपतये तस्य ।

सुदुतो' य प्रथमश्रीते' सपुनकदानी' गणपतयो' ॥१५४॥



(पोढशशतं सुमतेस्तु, चमरः किल प्रथमगणधरस्तस्य ।
सुज्जश्च सु(पदा)प्रभजिनस्य शतमेकं गणधराणाम् ।)

पांचवें तीर्थंकर सुमितनाथ के ११६ गणधर थे और उनमें प्रमुख थे चमर । छठे तीर्थंकर सुप्रभ पद्मप्रभ के १०१ गणधरों में सुज्ज प्रमुख गणधर थे । ४५४ ।

होइ सुपासेवियब्धो, पंचाणवतीय गणहरा तस्स ।
दिण्णो य पढमसिस्सो, तेनउई होंति चंदाभे (चन्द्रप्पमे) । ४५५ ।
(भवति सुपार्श्वस्य विदर्भः, पंचनवतिश्च गणधरास्तस्य ।
दिन्नश्च^३ प्रथमशिष्यः, त्रिनवतिः भवन्ति चन्द्रप्रभे ।)

सातवें तीर्थंकर सुपार्श्व के ६५ गणधर थे, उनमें प्रमुख विदर्भ और आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभ के ६३ गणधरों में प्रमुख एवं प्रथम गणधर दिन्न थे । ४५५ ।

सुविहिज्जिणे वाराहो,^३ चुलसीति^४ गणहरा भवे तस्स ।
नंदो य सीयलजिणे, एक्कासीति मुण्येयव्वा ४५६ ।
(सुविधिजिनस्य वाराहः, चतुरशीतिः गणधरा भवेयुस्तस्य ।
नन्दश्च शीतलजिनस्य, एकाशीतिः मुनेतव्या ।)

६ वें तीर्थंकर सुविधिनाथ के ८४ गणधर थे, उनमें प्रथम गणधर का नाम था वराह । १० वें तीर्थंकर शीतलनाथ के ८१ गणधर और उनमें प्रथम गणधर का नाम नन्द जानना चाहिए । ४५६ ।

१ दिगम्बरपरम्परायाः हरिवंशपुराणे वली, तिलोयपन्नत्तो च बलदत्त इति नामोल्लेखः ।

२ तिलोयपन्नत्तो तु वेदभं-इत्युल्लेखोऽस्ति ।

३ तिलोय पण्णत्तो नागः हरिवंशपुराणे च विदर्भेऽप्युल्लेखा श्वेताम्बर परम्पराया ग्रन्थेषु 'वराह' एव ।

४ समवायिणे पद्मशीतिः; किन्तु श्वेताम्बर दिगम्बर परम्परोभय-योरवान्यज्ञवर्गग्रन्थेषु सुविधिगणधराणां संख्या ८८ ।

संज्ञस्यै मन्त्रवति, १ षट्मो विरसो व गोधूमो १ होइ ।
 वायुर्दो १ व सुधूमो १ वीथयो वासुधुवज्जन्म । १४५७।
 [ध्रं याजाम्य मन्त्रवतिः, प्रथमः विष्णुश्च गोधूम मन्त्रि ।
 षट्पण्डितान् सुधूमः वीथयः वासुधुवज्जन्म ।]

११ वे तीर्थोक्ते ध्रंयाज के ७० मन्त्रपर मे । जगमें प्रथम वासु-
 धुव का नाम गोधूम था । १२ वे तीर्थोक्ते वासुधुव के ६६ मन्त्रपर
 मे । उनके प्रथम मन्त्रपर का नाम सुधूम मन्त्रवता वाद्विपु । १४५७।

विमलजिने जन्मना १ मन्त्रपर षट्मो मन्त्रो १ होइ ।
 पञ्चासायं १ जिने, षट्मविन्वो जलो नाम । १४५८।
 [विमलजिने षट्पंचासन्, मन्त्रपरः प्रथमः मन्त्रो मन्त्रि ।
 पंचासन् जन्म दिनस्य, प्रथम विष्णुः पञ्चो नामा ।]

* पासस्स अज्जदिण्णो,^१ पढमो अट्ठेव^२ गणहरा सहिया ।

जिणवीरं एककारस, पढमो से इंदभूई उं ।४६४।

(पार्श्वस्यायं दिन्नः, प्रथमोऽष्टावेव गणधराः सहिताः ।

जिन-वीरस्यैकादश, प्रथमः स इन्द्रभूतिस्तु ।)

२३वें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ के कुल ८ गणधर थे । उनके प्रथम गणधर का नाम आर्य दिन्न था । और २४ वें तीर्थंकर वीर (महावीर) के ११ गणधर थे । उनके प्रथम गणधर का नाम इन्द्रभूति था ।४६४।

गणहर संखा भणिया, जं नामो पढम गणहरौ जस्स ।

एत्तो सिस्सिणी नामा, उसभादीणं तु वोच्छामि ।४६५।

(गणधर संख्या भणिता, यन्नामा प्रथम गणधरः यस्य ।

इतः शिष्या नामानि, ऋषभादीनान्तु वक्ष्यामि ।)

चौबीस तीर्थंकरों के गणधरों की संख्या और जिन जिन तीर्थंकरों के जिस जिस नाम के प्रथम गणधर थे उनका कथन किया गया । अब मैं ऋषभादि चौबीसों तीर्थंकरों की प्रथम शिष्याओं के नाम का कथन करूंगा ।४६५।

* उसभस्स होइ वंभी, फग्गू^३ अजियस्स सम्भवस्स सामा^४ ।

अभिनंदणस्स अजिया,^५ कासवी^६ सुमति जिणिंदस्स ।४६६।

* त्रिपट्यधिक चतुर्शांता गाथा प्रती नास्ति । गाथांकलेखने लिपिक-प्रमादात् त्रुटिः संजाता प्रतीयते ।

१ समवायांगे तथा श्वेताम्बरपरम्परायाः इतरग्रन्थेषु पार्श्वस्य प्रथम गणधर 'अज्ज दिन्न' (आर्यदत्तः) आसीदिति निविवादोल्लेखः विद्यते किन्तु दिगम्बर परम्परायाः 'हरिवंशपुराणे' तिलोयपन्नती च पार्श्वस्य प्रथम गणधरः 'स्वयंभुः' नाम्नाख्यातः ।

२ समवायांगे पार्श्वजिनस्य गणधराणां संख्या तावदष्ट निर्दिष्टा किन्तु श्वेताम्बर-दिगम्बरोभयपरम्परयोरितरग्रन्थेष्वेवा संख्या दशः समुल्लिखितास्ति ।

* दिगम्बरपरम्परायाः मान्य ग्रन्थेषु यथा तिलोयपन्नती हरिवंश-पुराणे, उत्तरपुराणे च प्रथम-पठ, -द्वाविंशति-चतुर्विंशतितम जिनानां प्रथम शिष्यानामानि तान्येव समुल्लिखितानि सन्ति यानि श्वेताम्बरपरम्परायाः आगमेष्वथवा ग्रन्थेषु तथा प्रस्तुतं ग्रन्थे चोपलभ्यन्ते । शेष विंशति जिनप्रमुखशिष्यानामानि तु पूर्णतः भिन्नान्येव । यथा

३ प्रकुब्जा ४ धर्मश्री वा धर्मर्या ५ मेरुपेणा-मरुपेणा वा ६ अनन्ता

(अथमस्य मयति प्राप्ती, पत्न्यु अतिवस्य सन्भरस्य न्याया ।

मन्वन्त्यस्य अतिवस्य, काशयती सुमति जिनेन्द्रस्य ।)

अथमस्य की प्रथम शिष्या प्राप्ती, अतिवस्य की पत्न्यु की, मन्वन्त्या की न्याया, अथमस्य की अतिवस्य की सुमतिवस्य की काशयती की १४६९।

पठमस्यस्य तु मती, मोमा सुतामस्य पठम विष्णीणी य ।

पन्वन्त्यस्य सुमता, पत्न्यु सुविहितम जेद्वत्ता १५६७।

(पठमस्य तु मती, मोमा सुतामस्य प्रथम शिष्या य ।

पन्वन्त्यस्य सुमता, पत्न्यु सुविहितम जेद्वत्ता १५६७।)

पठमस्य की प्रथम शिष्या प्राप्ती मोमा सुताम की मोमा की, पठमस्य की सुमता की सुविहितम की पत्न्यु शिष्या प्राप्ती काशयती की १५६७।

मोमा शिष्यास्य सुत (सु) ता, मोमाशिश्यास्य पत्न्यु प्राप्ती ।

पत्न्यु य काशयती, पत्न्यु य विमलस्य जेद्वत्ता १६६८।

मोमाशिश्यास्य सुतस्य, मोमाशिश्यास्य पत्न्यु प्राप्ती ।

पत्न्यु य काशयती, पत्न्यु य विमलस्य जेद्वत्ता १६६८।)

मोमाशिश्या की प्रथम शिष्या सुतस्य की मोमाशिश्या-स्य की पत्न्यु की, काशयती की मोमाशिश्या की पत्न्यु काशयती की १६६८।

पउमा^१ अणंतइ जिणे, सिवा^२ य धम्मे सुतीय^३ संतिस्स ।
 कुंधुस्स दामिणि^४ खलु, जेठज्जा रक्खी^५ य अरस्स ।४६९।
 (पद्मा अनन्त-जिनस्य, शिवा च धर्मस्य श्रुती च शान्तेः ।
 कुंधोः दामिनी खलु, ज्येष्ठार्या रक्खी च अरस्य ।)

भगवान् अनन्तनाथ की प्रथम शिष्या पद्मा, भ० धर्मनाथ की शिवा, शान्तिनाथ की श्रुती, कुंधुनाथ की दामिनी और अरनाथ की रक्षी थी ।४६९।

वंधुमती^६ मल्लिस्सस, मुणिमुव्वय-जिणवरस्स पुप्फवती ।^७
 अणिला^८ य नमि जिणिंदे, जक्खिणी^९ तह रिट्ठनेमिस्स ।४७०।
 (वन्धुमती मल्ल्याश्च, मुनिसुव्रतजिनवरस्य पुष्पवती ।
 अनिला च नमिजिनेन्द्रस्य, यक्षिणी तथा अरिष्टनेमिनः ।)

मलिनाथ की प्रथम शिष्या वन्धुमती, मुनिसुव्रत की पुष्पवती नमिनाथ की अनिला और भगवान् अरिष्टनेमि की यक्षिणी थी ।४७०।

पासस्स पुप्फचूला, वीर जिणिंदस्स चंदणज्जाउ ।
 एया पढमावक्खाया, (सव्व जिणाण) भिस्सिणीओ ।४७१।

-
- १ दिगम्बरपरम्परायां सर्वश्री ।
 - २ दिग० पर० सुव्रता ।
 - ३ प्रवचन सारोद्धारं 'सुहा' । दिगम्बर परम्परायाः ग्रन्थेषु 'हरिवेना' ।
 - ४ समवायांगे 'धंजुया' प्रवचनसारोद्धारं सत्तरिसय द्वारे च दामणी-दामिणी वा । दिगम्बरपरम्पराग्रन्थेषु भाविता ।
 - ५ 'हरिवंशपुराणे' कुंधुसेना, 'तिलोयपन्नत्ती' कुंधुसेना तथा 'उत्तर-पुराणे' च यक्षिणी ।
 - ६ तिलोय पन्नत्ती हरिवंशपुराणे च 'मधुसेना', उत्तरपुराणे वन्धुपेणा ।
 - ७ ति० पन्नत्ती, हरि० पुराणे 'पूर्वदत्ता' तथोत्तरपुराणे 'पुष्पदन्ता' ।
 - ८ समवायांगे अमिला, प्रव. सारोद्धारं सत्त. द्वारे च 'अनिला' । दिगम्बरपरम्परायां तु मागिणी मंगिनी वा ।
 - ९ समवायांगे 'यक्षिणी', प्र. सारोद्धारं, सत्त. द्वारे च 'जक्खदिन्ना' । दिगम्बरपरम्पराग्रन्थेषु 'यक्षीः' 'यक्षिणी' वा ।

(पाम्यस्य पुष्यकृत्य, श्रीरजिनेन्द्रस्य नन्दनार्या तु ।

एताः प्रथमा मयावपावा (सर्वे जिनानां) शिष्यास्तु ।)

अन्यथा चार्वकनाथ को पुष्यकृत्य श्रोत म. शीन ही पाम्या
कथना चरम शिष्या थी . ही श्रोवीको शीर्ष'करी को चरम शिष्याएं
श्रिमिह है । १७७५।

वित्पयसाणं मीमे, श्रीरजिनेन्द्रस्य भूष्यकृत्य परिगीम् ।

सथा लो नोमि तुमे, अतिनि (पिडनाथगे) अहया । १७७२।

(श्रीरजिनेन्द्रस्य शिष्यात्, यदयामि म्नुक्तिमहयपरिशीवान् ।

सत्ता यः शरिजन पुगे अतानी विह्यमानः शय वा । १७७२।

अब ही शीर्ष'करा के म्हुको श्रुतिको उरम मंश्रुत शिष्या,
शीर्ष'करी के मभय के शरुको तथा शीर्ष'करी के शरु-शिरु के
शरुकरा के कथन कह्यो । १७७२।

शुलसीति मह्यशोर्, उग्रमजिनिदमन सीतपरिशयो ।

भक्तपदिमशुनिर्व, महर्षी नानिवशपरम । १७७६।

(अनुश्रीति मह्यशो, श्रीरजिनेन्द्रस्य शिष्यपरिशयो ।

भक्तपदिमोत्तम, महर्षीनानिवशपरम ।)

महर्षी शरु शरुकरा के शरुकरा मभय कथी के चरम श्रुत
शरुकरा के शिष्या को कथन कह शरुकरा भी । १७७५।

संशु मयनहस्यं, अतिम शिनिदमन सीतपरिशयो ।

समय शरुकराशुनिर्व, शिष्याशिरुकराशुनिर्व । १७७६।

(संशु श्रु मभय, अतिमजिनेन्द्रस्य शिष्यपरिशयो ।

समयशिरुकराशुनिर्व, शिष्याशिरुकराशुनिर्व ।)

दो चैवसयसहस्सा, सीसाणं आसि संभवजिणस्य ।

मित्तविरिय थुयस्स, सेणाए' जियारितण यस्स । ४७५।

(द्वौ चैव शतसहस्राणि, शिष्याणामासन् संभव-जिनस्य ।

मित्रवीर्यस्तुतस्य, सेनायां-जितारितनयस्स ।)

महारानी सेना और महाराज जितारि के तनुज तथा नृपवर मित्रवीर्य द्वारा स्तुत भगवान् संभवनाथ के २,००,००० शिष्य थे । ४७५।

तिन्ने वसयसहस्सा, अभिनन्दण जिणवरस्ससीसाणं ।

सव्वरिरियथुयस्स, सिद्धत्थासंवरसुयस्स । ४७६।

(त्रीण्येव शतसहस्राणि, अभिनन्दन जिनवरस्य शिष्याणाम् ।

सर्ववीर्यस्तुतस्य, सिद्धार्था-संवरसुतस्य ।)

महारानी सिद्धार्था और महाराज संवर के सुत तथा नृपेन्द्र सर्ववीर्य द्वारा संस्तुत तीर्थंकर प्रभु अभिनन्दन के शिष्यों की संख्या ३,००,००० थी । ४७६।

तिन्नेव सयसहस्सा, वीससहस्सा य आसि सुमइस्स ।

जियसेण पणमियस्स, मंगलामेहतणयस्स । ४७७।

(त्रीण्येवशतसहस्राणि विंशतिमहस्राणि चासन् सुमतेः ।

जितसेन प्रणमितस्य, मंगलामेवतनयस्स ।)

महारानी मंगला और महाराज मेघ के नन्दन तथा नरपति द्वारा स्तुत एवं प्रणत भगवान् सुमतिनाथ के शिष्य साधु परिवार की संख्या ३,२०,००० थी । ४७७।

तिन्नेव सयसहस्सा, तीस सहस्साय आसि पउमाभो ।

दाणविरियवु[थु] यस्स, सुसीम-धर^२ रायतणयस्स । ४७८।

१ तिलोपपन्नत्ती तथा उत्तर पुराणे सुसेना, ष्वेताम्बरपरम्पराया ग्रन्थेषु हरवंश-पुराणे च मातुः 'सेना' नामोल्लेखः ।

२ दिगम्बरपरम्परायां 'धरण' इति नामोल्लेखः विद्यते ।

(श्री) श्रीवैद्य शिवशक्तिविद्या विद्यालयी विद्यालयी विद्यालयी ।

दानवैश्विनवस्य, सुदीपा-धन राजवतवस्य ।)

महाशक्ति सुदीपा और महाशक्ति हर के कर्म के लिये राजा
दानवैश्विनव द्वारा सुदीपा सुदीपा के १,१०,००० सिद्धि के १९००।

विद्यायै शिवशक्तिविद्या, श्रीशक्तिविद्या विद्या सुदीपाय ।

शिवशक्तिविद्या सुदीपा, सुदीपा-धन राजवतवस्य । १९०१।

(श्री) श्रीवैद्य शिवशक्तिविद्या, विद्यालयी विद्यालयी ।

शिवशक्तिविद्या सुदीपा, सुदीपा-धन राजवतवस्य ।)

महाशक्ति सुदीपा और महाशक्ति हर के कर्म के लिये राजा
दानवैश्विनव द्वारा सुदीपा सुदीपा के १,१०,००० सिद्धि के १९००।

शिवशक्तिविद्या सुदीपा, सुदीपा-धन राजवतवस्य ।

शिवशक्तिविद्या सुदीपा, सुदीपा-धन राजवतवस्य । १९०१।

(शिवशक्तिविद्या सुदीपा, सुदीपा-धन राजवतवस्य)।

शिवशक्तिविद्या सुदीपा [१] सुदीपा-धन राजवतवस्य ।)

महाशक्ति सुदीपा और महाशक्ति हर के कर्म के लिये राजा
दानवैश्विनव द्वारा सुदीपा सुदीपा के १,१०,००० सिद्धि के १९००।

श्री श्री शिवशक्तिविद्या, श्रीशक्तिविद्या सुदीपाय ।

शिवशक्तिविद्या सुदीपा, सुदीपा-धन राजवतवस्य । १९०१।

(श्री) श्री शिवशक्तिविद्या, विद्यालयी विद्यालयी ।

शिवशक्तिविद्या सुदीपा, सुदीपा-धन राजवतवस्य ।)

महारानी वामा और महाराज सुग्रीव के पुत्र तथा युद्धवोर्य नृपतिद्वारा स्तुत तीर्थकर पुष्पदन्त (सुविधिनाथ) के शिष्य-परिवार की संख्या २,००,००० (दो लाख) थी ।४८१।

एगं तु सयसहस्सं, सीसाणं आसिसीयलजिणस्स ।
सीमंधर महियस्सउ, नंदाए^१ दढरह सुयस्स ।४८२।
(एकं तु शतसहस्रं, शिष्यानामासीत् शीतल जिनस्य ।
सीमंधर महितस्य तु, नन्दाया दढरथसुतस्य ।)

महारानी नन्दा और महाराज दढरथ के नन्दन तथा राजा सीमंधर द्वारा पूजित तीर्थकर शीतलनाथ के १,००,००० (एक लाख) शिष्य थे ।४८२।

चुलसीति सहस्साइं, सिज्जंस जिणस्स सीसपरिवारो ।
तिविट्ठ^२ महियस्स, तहा विण्हाए विण्हु^३ पुत्तस्स ।४८३।
(चतुरशीति सहस्राणि, श्रेयांसजिनस्य शिष्यपरिवारः ।
त्रिपृष्ठ महितस्य, तथा विष्णायां-विष्णुपुत्रस्य ।)

महारानी विष्णु देवी और महाराज विष्णु के तनय तथा त्रिपृष्ठ वासुदेव द्वारा पूजित जिनराज श्रेयांसनाथ के शिष्य परिवार की संख्या ८४,००० (चौरासी हजार) थी ।४८३।

वावत्तरिं सहस्सा, सीसाणं आसि वासुपुज्जस्स ।
दुविट्ठ^४ महियस्स, तणयस्स जयाएं वसु पुज्जस्स ।४८४।
(द्विसप्ततिःसहस्राणि, शिष्यानामासीत् वासुपूज्यस्य ।
द्विपृष्ठमहितस्य तनयस्य जायायां वसुपूज्यस्य ।)

१ उत्तरपुराणे हरिवंशपुराणे च सुनन्दा नामोपलभ्यते ।

२ तृपृष्ठः प्रथम वासुदेवः ।

३ श्रेयांसजिनस्य जननिजनकयोस्मयोरपि नास्ति समवायांगादी विष्णु उल्लिखिते स्तः । तिलोयपण्णत्तो तु मातुः नाम वेणुदेवी विद्यते ।

४ द्वितीयो वासुदेवः द्विपृष्ठः ।

(अष्टादश च सहस्राणि, शिष्यानामासीत् अरिष्टनेमिनः ।

कृष्णेन प्रणमितस्य, शिवासमुद्रयोः तनयस्य ।)

महारानी शिवा और महाराज समुद्रविजय के नन्दन तथा कृष्ण वासुदेव के नमस्य बाबीसवें तीर्थंकर अरिष्टनेमि के १८,००० (अठारह हजार) शिष्य थे । ४६४।

सोलस साहस्रीओ, पास जिणिदस्स सीसपरिवारो ।

महियस्स पसेणइणा, सुयस्स वायससेणाणं । ४९५।

(षोडश साहस्रिकः, पार्श्वजिनेन्द्रस्य शिष्यपरिवारः ।

महितस्य प्रसेनजितेन सुतस्य वामाश्वसेनयोः ।)

वामा महारानी और अश्वसेन महाराज के पुत्र तथा राजा प्रसेनजित् द्वारा पूजित तेबीसवें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्यों की संख्या १६,००० (सोलह हजार) थी । ४६५।

चोद्दस साहसीओ, सीसाणं आसि वद्धमाणस्स ।

सेणियरायनयस्स, तिसलासिद्धत्थ तणयस्स । ४९६।

(चतुर्दश साहस्रीकः, शिष्यानामासीत् वर्द्धमानस्य ।

श्रेणिक राजनतस्य, त्रिशलासिद्धार्थतनयस्य ।)

महारानी त्रिशला और महाराज सिद्धार्थ के पुत्र तथा श्रेणिक द्वारा प्रणत चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् महावीर के १४००० (चौदह हजार) शिष्य थे । ४६६।

ओसप्पिणी इमीसे, जिणंतर समुट्टिण कालेणं ।

वोच्छामि चउव्वीसं, अरहंते भारएवासे ४९७।

(अवसर्पिण्यामस्यां, जिनान्तरं समुत्थितेन कालेन ।

वक्ष्यामि चतुर्विंशति अरिहन्तान् भारते वर्षे ।)

प्रवर्तमान इस अवसर्पिणी काल में एक तीर्थंकर के अनन्तर दूसरे तीर्थंकर के उत्पत्तिकाल के माध्यम से मैं भारतवर्ष के चौबीस तीर्थंकरों का कथन करूंगा । ४६७।

विशोभायी वसप्र

वद्वयत्तमारिनिन्दुह, निवास भद्रनवमासः सेपम्भि ।
उत्तमत्रिणाराय सुषिय, त्रिणवंस पगहृ वणिचाप' 1890
(मृतीपसमापरिनिर्घृती, त्रिवर्षादी नवमासश्रेपे ।
श्रेपम त्रिनः रात्र-सत्रिय-त्रिनवंसप्रकटफः विनीतायाम् ।)

मृत्पम दुग्गमा नामक लोमरे प्रारक के समाप्त होने से जब
८४ मास पूर्व तथा लोम सर्व जीर गाह पाठ नाम व्यवहित से, उन
मत्तम साकबंन, उदितवर्षन तथा त्रिनवत के प्रकटवितता प्रथम तीर्थकार
सुवतस्येव विनीता नगरी से श्रवण हुए 18६८

उत्तमायो उप्पणं, पायासाकोटिसय महासोहि ।
से सागरोचमानं, भक्तिव्रिनंदीविनीया उ' 189९
(सुपमात् इन्पन्ने, पञ्चाप्रमकोटि श्रत सहस्रैः ।
सन् सागरोचमैः, भक्ति क्षिनेन्द्रः विनीतायाम् ।)

सुवतस्येव से दशममास करोह सागरीवम सतीत ही नाम के
परवात् विनीता नगरी से प्रुमरे तीर्थकार अहितनाम उत्पम हुए 18६६

वीन्द्रा सागरोचम, कोटिययतदन्तु मन्दरुप्पणं ।
प्रक्षिपाड संमवक्षिणो, साधनीय विनाणा हि 18०० ।
(विक्खन् सागरोचमकोटिमुदगाद्मानन्दरमुत्पन्नाः ।
भक्तिप्रान्तु संमवक्षिनः, भावस्यन्दा विज्ञानोहि ।)

भक्तिप्रान्त से लोममास करोह नामक परवात् लोमरे तीर्थकार
सुवतस्येव सागरोचम से उत्पम हुए यह नामका माहित
१३००

1. एकका का अर्थ एकपूर्वक अर्थात् सागरीवमकोटिप्रान्तः के विधिसे विनिर्दिष्ट
तीर्थकारिकः लक्षणात्केवलं मत्तम के उक्तिसीति । इती म् दुस्वित्त
नामः - विष्णुसुक्त इत्युक्तिसन्तु ३० अथि सागरोचमकोटिसि, सुपम
१४४३ इत्युक्तिसि - विष्णु इत्युक्तिसि, सागरोचम इत्युक्तिसि ।
2. विनीतायाम् अर्थसागरीवम - सुवतस्येव, सागरीवम इति ।

जाणाहि सीयलाओ, सेज्जंसं उणियाए कोडी ए ।
 तं सागरोवमाणं, सएहि वासेहिय इमेहिं । ५०८ ।
 (जानीहि शीतलात्, श्रेयांसं अनितायाः कोट्याः ।
 तं सागर-उपमानं, शतैर्वपैश्च एभिः)

छावट्टिसय सहस्सा, छव्वीसं खलु भवे सहस्साइं ।
 एएहिं उणिया खलु, मग्गिन्ला कोडि सीहपुरे । ५०९ ।
 (पड् पट्टि सहस्राणि, पड् विंशतिः खलु भवेयुः सहस्राणि ।
 एतैरूनिता खल्वग्रिला कोटिः सिंहपुरे ।)

शीतलनाथ के पश्चात् १०० सागर तथा ६६,२६००० वर्ष
 कम एक कोटि सागरोपम काल व्यतीत हो जाने पर सिंहपुर में
 ग्यारहवें तीर्थंकर श्रेयांसनाथ का जन्म हुआ । ५०८-५०९ ।

सेज्जंसाओ वासुपुज्जं, चंपाए सगल चंद सोम-मुहं ।
 चउप्पण्णा, उप्पण्णं सागरसिरिनामधेज्जाणं । ५१० ।
 (श्रेयांसात् वासुपूज्यं, चंपायां सकलचन्द्र सौम्य मुखम् ।
 चतुर्पञ्चाशत् उत्पन्नं सागरश्री नामधेयानाम्)

श्रेयांसनाथ के पश्चात् ५४ सागरोपकाल व्यतीत हो जाने पर
 पूर्णिमा के चन्द्र तुल्य सौम्य मुखवाले १२ वें तीर्थंकर वासुपूज्य का
 चम्पा नगरी में जन्म हुआ । ५१० ।

विमलं च वासुपुज्जा, कम्पिल्लपुरी विलीण संसारे ।
 तीसाए समुप्पन्नं, सागरसिरि नाम धेज्जाणं । ५११ ।
 (विमलं च वासुपूज्यात्, काम्पिल्यपुरे विलीन संसारम् ।
 त्रिंशत्सु उत्पन्नं, सागरश्रीनामधेयानाम् ।)

वासुपूज्य से ३० सागरोपम पश्चात् काम्पिल्यपुर में जन्म-
 मरण का अन्त करने वाले १३ वें तीर्थंकर विमलनाथ का जन्म
 हुआ । ५११ ।

गजपुर में उत्पन्न हुए सत्रहवें तीर्थंकर कुरुकुल तिलक कुंथु-
नाथ का १६ वें तीर्थंकर शान्तिनाथ से अर्द्ध पल्योपम काल का
अन्तर जानना चाहिये अर्थात् शान्तिनाथ से अर्द्ध पल्य पश्चात् कुंथु-
नाथ का जन्म हुआ । ५१५ ॥

पलिय चउवभागेण य, कोटि सहस्सूणएण वासाणं ।
अर जिणवरं गयपुरे, कुंथुजिणाओ समुपण्णं । ५१६।
(पल्य चतुर्भागेन च कोटि सहस्र-उत्तेन वर्षाणाम् ।
अर जिनवरं गजपुरे. कुंथुजिनात् समुत्पन्नं)

कुंथुनाथ से एक हजार करोड़ वर्ष कम पाव (एक चौथाई)
पल्योपम काल व्यतीत होने पर गजपुर में अठारहवें तीर्थंकर अरनाथ
का जन्म हुआ । ५१६।

मल्लिजिनं मिहिलाए, अराओ एकूणवीसमरिहंतं ।
जाणाहि समुपण्णं, कोटिसहस्सेण वासाणं । ५१७।
(मल्लिजिनं मिथिलायां, अरात् एकोनविंशमर्हतम् ।
जानीहि समुत्पन्नं, कोटिसहस्रेण वर्षाणाम् ।)

अरनाथ से एक हजार करोड़ वर्ष व्यतीत हो जाने पर
मिथिला नगरी में उन्नीसवें तीर्थंकर मल्लिनाथ का जन्म हुआ
समझना चाहिए । ५१७

मल्लिजिणा उप्पण्णं, चउपण्णवासाणसय सहस्सेहिं ।
मुणिसुव्वयं मुणिवरं, हरिवंसकुलम्मि रावगिहे । ५१८।
(मल्लिजिनात् उत्पन्नं चतुर्पञ्चाशत् वर्षाणां शतसहस्रैः ।
मुनि सुव्रतं मुनिवरं. हरिवंश कुले राजगृहे ।)

मल्लि जिनवर से ५४ लाख वर्ष पश्चात् राजगृह नगर में
वीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रत का जन्म हरिवंश में हुआ । ५१८।

मिहिलाए नमि जिणिदं. नवनवणीय सुकुमाल सव्वंगं ।
अव्वासमयसहस्सेहिं [मुणि] सुव्वयाउ समुपण्णं । ५१९।

(विश्विन्वर्षा नमि जिनेन्द्रः, नवनवनीत सुकुमान्त-मार्गिः ।
पदेषु नवनवनीतः, सुनिगुप्तवात्, समुत्पन्नः ।)

श्रीशंकर मुद्रय (सुनिगुप्तव) के लः भाष्य वर्य परवात् अमिन्वत्
नवनवीत के समान नवीत सुकुमान्त इकवीमर्ते श्रीशंकर नमिन्वत् वा
विश्विन्वत् से उत्पन्न हुआ । १६३।

प्रायतप्रमदहस्ताणां, पंचपटपुत्रवर्षेण कृतकैर्दं ।
मौगिय अरिष्टनेमिं, दग्गाकृच्छनेदणं जाले ॥१२०॥
(पंचपतप्रमदहस्ताणां, पंचपतिर् पूर्वपंच कृतकैस्तुम् ।
मौगिं अरिष्टनेमिं, दग्गाह-कृत्-नन्दने जालीतः ।)

श्रीशंकर विश्वकोश से प्राप्त प्रथम वर्य परवात् नवनवनीत इत् १२०
श्रीशंकर के लः भाष्य परवात् नवनवनीत इत् १२० दग्गाह-कृत्
के समान नवनवीत के लः भाष्य परवात् नवनवनीत इत् १२०।

मेवीः मरुत्पत्ने, मरुदि मरुदनेदि पतिता ।
मेवीयो मरुत्पत्ने, मरुतविर्मरुतं वारं ॥१२१॥
(मरुतवि-मरुतः, मरुतः मरुतविर्मरुतः ।
मेवीः मरुत्पत्ने, मरुतविर्मरुतं वारंम् ।)

मरुतविर्मरुतः से वा १२० वर्य परवात् मरुतविर्मरुतः
मरुतः इत् १२० के लः भाष्य परवात् मरुतः इत् १२०।

मरुतविर्मरुतः, मरुतविर्मरुतं मरुतविर्मरुतं ।
मरुतविर्मरुतः, मरुतविर्मरुतं मरुतविर्मरुतं ॥१२२॥
(मरुतविर्मरुतः, मरुतः मरुतविर्मरुतः ।
मरुतविर्मरुतः, मरुतविर्मरुतं मरुतविर्मरुतं ।)

मरुतविर्मरुतः से वा १२० वर्य परवात् मरुतविर्मरुतः
मरुतः इत् १२० के लः भाष्य परवात् मरुतः इत् १२०।

जाव य उमभ जिणिंदो, जावेव य वद्धमाण जिणचंदो ।
 अह सागरोवमाणं, कोडा कोडी भवे कालो ।५२३।
 (यावच्च वृषभजिनेन्द्र. यावदेव च वर्द्धमान जिनचन्द्रः ।
 अथ सागरोपमानां कोट्याकोटिः भवेत् कालः ।)

बायालीस सहस्सेहिं, ऊणि या वच्छराणा जाणाहि ।
 एकं कोडा कोडि, उदहिसमाणमाणं [जुयलं] ।५२४।
 (द्विचत्वारिंशत्सहस्रैः ऊनिनाः वत्सराणां जानीहि ।
 एकं कोट्याकोटिं उदधिसमानानां मानानाम् ।)

जिस समय तक प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव विद्यमान थे उस समय से लेकर जब तक अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर विद्यमान थे उस समय तक अर्थात् भगवान् ऋषभदेव के निर्वाण से भगवान् महावीर के निर्वाण तक (लगभग) एक कोटा कोटि सागरोपम काल होता है (उस काल को) ।५२३।

४२,००० वर्ष कम एक कोटा कोटि सागरोपम जानिये ।५२४।

पुरिम चरिमेसु अट्टसु, अविच्छिण्णं जिणेषु तित्थंति ।
 मज्झिमए सु य सत्तसु, वुच्छेओ एत्थियं कालं ।५२५।
 (प्रथमचरमेपु अट्टसु, अविच्छिन्नं जिनेषु तीर्थम् ।
 मध्यमेपु च सप्तसु व्युच्छेदः एतावद् कालम् ।)

प्रथम आठ और अन्तिम आठ—इन सोलह अन्तरालों में तीर्थंकरों के घर्म तीर्थ का कहीं विच्छेद नहीं हुआ, वह अवाध गति से निरन्तर चलता रहा । किन्तु मध्यमवर्ती आठ तीर्थंकरों—(सुविधिनाथ से शान्तिनाथ) के बीच के सात अन्तरालों में इतने (निम्नलिखित) काल तक तीर्थ की व्युच्छिन्ति हुई :—।५२५।

१ ग्रन्थाः गाथायाः द्वितीय चरणे--' अविच्छिण्णं जिणंतेसु तित्थंति'—
 इति पाठेन भाव्यम् ।

(भरते च संभवजिनः, ऐरवते अग्निपेण जिनचन्द्रः ।
मृगशीर्षि योगे दशाऽपि, सिद्धिं गता अपरसूर्ये)

भरत क्षेत्र में संभवनाथ तथा ऐरवत क्षेत्र में अग्निसेन—इन दशों तीर्थंकरों ने अपराह्ल की वेला में चन्द्र का मृगशिरा नक्षत्र के साथ योग होने पर सिद्ध गति प्राप्त की । ५३६।

*पउमप्पभो य भरहे, वयधारि जिणो य एरवयवासे ।
दसवि मघा जोएणं, सिद्धि गया अवरसूरंमि । ५३७।
(पद्मप्रभश्च भरते, वयधारीजिनश्चैरवतवर्षे ।
दशाऽपि मघा योगेन, सिद्धिं गता अपरसूर्ये ।)

भरत क्षेत्र में पद्मप्रभ और ऐरवत क्षेत्र में वयधारी (वयरधारी-रवयधारी-खयधारी) इन दशों तीर्थंकरों ने चन्द्र का मघा नक्षत्र के साथ योग होने पर अपराह्ल की वेला में मुक्ति गमन किया । ५३७।

*सुविही य भरहवासे, एरवयंमि य सयाउ जिणचंदो ।
दसवि जिणा मूलेणं, सिद्धि गया अवरसूरंमि । ५३७।
(सुविधिश्च भरतवर्षे, ऐरवते च शतायुः जिनचन्द्रः ।
दशाऽपि जिनाः मूलेन, सिद्धिं गता अपरसूर्ये ।)

भरत क्षेत्र में सुविधिनाथ और ऐरवत क्षेत्र में शतायु—ये दशों तीर्थंकर मूल नक्षत्र के योग में अपराह्ल की वेला में सिद्ध गति को प्राप्त हुए । ५३७।

भरहे य वासुपुज्जो, सेज्जंसि जिणो य एरवयवासे ।
दसवि जिणा समणेणं सिद्धिं गया अवरसूरंमि । ५३८।
(भरते च वासुपूज्यः श्रेयांस जिनश्च ऐरवतवर्षे ।
दशाऽपि जिनाः श्रवणेन, सिद्धिं गता अपरसूर्ये ।)

भरत में वासुपूज्य तथा ऐरवत क्षेत्र में श्रेयांस—ये दशों

भरत क्षेत्र में धर्मनाथ और ऐरवत क्षेत्र में उपशान्त--ये दश तीर्थकर चन्द्र का पुष्य नक्षत्र के साथ योग होने पर पश्चिम रात्रि में सिद्ध गति में गये ५४६।

अर जिणवरो य भरहे, अइपाल जिणो य एरवयवासे ।

रेवइ जोगे दसमी, सिद्धि गया अवररत्तंमि । ५५० ।

(अर जिनवरश्च भरते, अतिपार्श्व जिनश्चैरवतवर्षे ।

रेवतीयोगे दशमी, सिद्धि गता अपररात्रौ ।)

भरत क्षेत्र में अरनाथ और ऐरवत क्षेत्र में अतिपार्श्व--ये दश तीर्थकर चन्द्र के साथ रेवती नक्षत्र का योग होने पर अपर रात्रि के परार्द्ध में मोक्ष पधारे । ५५०।

नमि जिणचन्दो भरहे, एरवए सामकोडु जिणचंदो ।

अस्सिणिजोगे दसवि, सिद्धि गया अवररत्तंमि । ५५१ ।

(नमिजिनचन्द्रः भरते, ऐरवते श्यामकोष्ठजिनचन्द्रः ।

अश्विनीयोगे दशाऽपि, सिद्धि गता अपर रात्रौ ।)

भरत क्षेत्र में नमिनाथ और ऐरवत क्षेत्र में श्यामकोष्ठ--ये दश तीर्थकर चन्द्र और अश्विनी नक्षत्र का योग होने पर रात्रि के परार्द्ध में सिद्ध हुए । ५५१।

भरहे य वद्धमाणो, एरवए वारिसेण जिणचंदो ।

दसवि य साती जोगे, सिद्धि गया अवररत्तंमि । ५५२ ।

(भरते च वद्धमान, ऐरवते वारिसेणजिनचन्द्रः ।

दशाऽपि च स्वातियोगे, सिद्धि गता अपररात्रौ ।)

भरत क्षेत्र में वद्धमान और ऐरवत में वारिसेण--ये दश तीर्थकर अपर रात्रि के समय चन्द्र का स्वाति नक्षत्र के साथ योग होने पर सिद्धि में गये । ५५२।

एते चत्तालीसं दमसु विवासेसु स्त्रीणसंसारा ।

सन्वे ते केवलिणो, सिद्धि गया अवररत्तंमि । ५५३ ।

[स्पष्टीकरण :—दशों क्षेत्रों के इस चौबीसी के २४० तीर्थकरों में से इस प्रकार उपरि चर्चित ३० तीर्थकर निपिद्या---पर्याकासत्र से सिद्ध हुए ।]

दोष्णि सया उ दहुत्तर, जिणवर चंदाण केवलीणं तु ।

दससु वि वासेसु सेसा, वाघारियपाणिणो सिद्धा ॥५५७॥

(द्वे शते तु दशोत्तर, जिनवरचन्द्राणां केवलानां तु ।

दशस्वपि वर्षेषु ज्ञेयाः व्याघारितपाणयः सिद्धाः ।)

दशों क्षेत्रों के अवशिष्ट २१० केवलज्ञाती जिनेश्वर व्याघारित-पाणि (प्रलम्बभुज) अर्थात् कायोत्सर्ग मुद्रा में सिद्ध हुए ॥५५७॥

चंदाणण उसभजिणो, आइगरा चोद्दसेण भत्तेण ।

एते य दसवि सिद्धा, दससु वि वासेसु जिणचंदा ॥५५८॥

(चन्द्राननः ऋषभजिनः आदिकराश्चतुर्दशेन भक्तेन ।

एते च दशाऽपि सिद्धा, दशस्वपि वर्षेषु जिनचन्द्राः ।)

चन्द्रानन और ऋषभ देव क्रमशः पांच ऐरवत और पांच भरत इन दशों क्षेत्रों में धर्म को आदि करने वाले ये १० तीर्थकर दशों क्षेत्रों में चतुर्दश भवत अर्थात् छः उपवासों की तपस्या से सिद्ध हुए ॥५५८॥ (५५९ वीं गाथा मूल प्रति में नहीं है ।)

भरहे य वद्धमाणो, एरवए वारिसेण जिणचन्द्रो ।

बद्धेण दसविसिद्धा, दससु विवासेसु जिणचंदा ॥५६०॥

(भरते च वद्धमानः, ऐरवते वारिषेणजिनचन्द्रः ।

पठेन दशाऽपि सिद्धाः, दशस्वपि वर्षेषु जिनचन्द्राः ।)

भरत क्षेत्र में वद्धमान और ऐरवत क्षेत्र में वारिषेण ये दशों तीर्थकर दशों क्षेत्रों में पठ भवत अर्थात् दो उपवासों की तपस्या से सिद्ध गति को प्राप्त हुए ॥५६०॥

(स्पष्टीकरण :—इस प्रकार ढाई द्वीप के ५ भरत और ५ ऐरवत इन दश क्षेत्रों में प्रवर्तमान अवसर्पिणी काल के २४० तीर्थकरों में से ऋषभादि दश प्रथम तीर्थकर ६ उपवासों की तपस्या से सिद्ध हुए ।)

[स्पष्टीकरण :—दशों क्षेत्रों के इस चौबीसी के २४० तीर्थकरों में से इस प्रकार उपरि चर्चित ३० तीर्थकर निपिद्या---पर्याकासत्र से सिद्ध हुए ।]

दोष्णि सया उ दहुत्तर, जिणवर चंदाण केवलीणं तु ।

दससु त्रि वासेसु सेसा, वाघारियपाणिणो सिद्धा ५५७।

(द्वे शते तु दशोत्तर, जिनवरचन्द्राणां केवलानां तु ।

दशस्वपि वर्षेषु शेषाः व्याघारितपाणयः सिद्धाः ।)

दशों क्षेत्रों के अवशिष्ट २१० केवलज्ञानी जिनेश्वर व्याघारितपाणि (प्रलम्बभुज) अर्थात् कायोत्सर्ग मुद्रा में सिद्ध हुए । ५५७।

चंदाणण उसमजिणो, आहगरा चोद्सेण भत्तेण ।

एते य दसवि सिद्धा, दससु त्रि वासेसु जिणचंदा । ५५८।

(चन्दाननः ऋपभजिनः आदिकराश्चतुर्दशेन भक्तेन ।

एते च दशाऽपि सिद्धा, दशस्वपि वर्षेषु जिनचन्द्राः ।)

चन्दानन और ऋपभ देव क्रमशः पांच ऐरवत और पांच भरत इन दशों क्षेत्रों में धर्म की आदि करने वाले ये १० तीर्थकर दशों क्षेत्रों में चतुर्दश भवत अर्थात् छः उपवासों की तपस्या से सिद्ध हुए । ५५८। (५५६ वीं गाथा मूल प्रति में नहीं है ।)

भरहे य वद्धमाणो, एरवए वारिसेण जिणचन्दो ।

छट्ठेण दसविसिद्धा, दससु विवासेसु जिणचंदा । ५६०।

(भरते च वद्धमानः, ऐरवते वारिपेणजिनचन्द्रः ।

पठ्ठेन दशाऽपि सिद्धाः, दशस्वपि वर्षेषु जिनचन्द्राः ।)

भरत क्षेत्र में वद्धमान और ऐरवत क्षेत्र में वारिपेण ये दशों तीर्थकर दशों क्षेत्रों में पठ्ठ भवत अर्थात् दो उपवासों की तपस्या से सिद्ध गति को प्राप्त हुए । ५६०।

(स्पष्टीकरण :—इस प्रकार ढाई द्वीप के ५ भरत और ५ ऐरवत इन दश क्षेत्रों में प्रवर्तमान अवसर्पिणी काल के २४० तीर्थकरों में से ऋपभादि दश प्रथम तीर्थकर ६ उपवासों की तपस्या से सिद्ध हुए ।)

अमरे हि परिगृह्याहं, नमसि न्यपाहं कठविद्रुष्टस्य ।

अमरेणु भृगवेणु च, एषाहं अक्षिणं पुन्याहं ॥२८७॥

(अमरेः परिगृह्याहं, नमसि न्यपाहं अथ विद्रुष्टस्य ।

अमरेणु भृगवेणु च, एषाहं अक्षिणं पुन्याहं ।)

माला य वैजयन्ती. विचित्ररयणावसोहिया रम्मा ।
 सारिकस्त्री जा तडियं, घणसमए इंदरायस्स ।५८४।
 (माला च वैजयन्ती, विचित्ररत्नावशोभिता रम्या ।
 सदृशी सा तडितया, घनसमये इन्द्रराज्ञः ।)

त्रिपृष्ठ के पास अद्भूत-अलभ्य रत्नों से मण्डित एवं सुशोभित
 अतीव सुन्दर वैजयन्ती माला थी जो कि वर्षाकालीन सघन घनघटा
 में चमकती हुई विजली के समान देदीप्यमान थी ।५८४।

सत्तुजण भयकरं चावं दरि यारि^१ जीवउच्चावं [टं] ।
 जीया^२ निर्घोसेणं, सयसाहस्सी पडइ जस्स ।५८५।
 (शत्रुजन भयंकरं चापं दृप्तारिजीवोच्चाटम् ।
 ज्या निर्घोषेण, शतसाहस्री पतति यस्य ।)

उस वासुदेव त्रिपृष्ठ के पास दर्पोन्मत्ता वैरियों के मन का
 उच्चाटन कर देने वाला शत्रुओं के लिये काल के समान भयंकर
 (साङ्ग) धनुष था, जिसकी प्रत्यंचा (ज्या) की टंकार मात्र से लाखों
 शत्रु मूर्च्छित हो गिर पड़ते थे ।५८५।

कोत्थुभ-मणी य दिव्यो, वक्षस्थल विभूषणो त्रिपृष्ठस्स ।
 लच्छी ए परिगृहीउ, रयणुत्तमसार संगहिओ ।५८६।
 (कौ स्तुभमणिरच दिव्यो, वक्षस्थल विभूषणः त्रिपृष्ठस्य ।
 लक्ष्म्याः परिगृहीतः, रत्नोत्तमसार-संगृहीतः ।)

त्रिपृष्ठ के पास लक्ष्मी द्वारा सेवित, उत्तमोत्तम रत्नों के सार
 से उत्पन्न दिव्य कौस्तुभ मणि था जो उसके वक्षस्थल का विभूषण
 था ।५८६।

१ दरियारि-दृप्तारिः । दृप्तिय-दृप्त "दरियनागदृप्त महणा" —दृप्तनाग
 दर्पमयना (प्रभन, ४ आश्र० द्वार)
 २ जीया—ज्या । धनुषो गुणो । वाच० ।

शिवोपासी रहस्य ।

अमरे हि परिगृह्याहं, सखि त्वपाध्म
अमरेषु भूषणेषु य. एषाहं अत्रिय पुत्राहं ॥ ११ ॥
(अमरेः परिगृहीतानि, मत्पापि स्नानानि कथं किय
अमरेषु भूषणेषु च. एतान्प्रजित् पुत्राणि ॥)

विशुद्ध बामुदय के ये माग रत्न दर्श
के । दिव्य भूषणों में ये महा मर्मदाः अनेक कहे जाते हैं
(शिवोपासी) - मावाली के पुत्राणि

येना है कि इनमें १ रत्नो का ही नामो
या है । बामुदय के मातंग १११ - श्रीमते
या सुभवत माहर्षीय प्राय ही पा सुभव
बदह हली वि हलं. डों पण य जिज्जर्न य ई
पत्तंशु ममामहा. मटविदित किर्त्तण श्रीम
(पदति हली भवि हलं. यन् पत्तय व हिहं क
पर-श्रे-मप महा-मट विन्नुन कीर्त्तनां हली

हली अथवा बमदय की एके हल की
विशुद्धों एवं वय की तीली पत्रकी (वर्तमान
का अथवा भाग) बाता हीन स्नानादि में
पुनरी के प्राणी का हलका करने का
मार्गई बापिदिय, स्ना
सुनर्त्त मोममहात्मा, मी
(मुकन्द) का नीदित, स्ना
सुनर्त्त सीव - महात्मा

सुनन्द अथवा नन्दित नामक मूसल की अचल बलदेव धारण करते हैं। अचल का वह मूसल टिड्डीदल के समान अपार एवं विशाल सेनाओं को भयभीत कर किकत्तव्यविमूढ बना देने वाला, सीम अर्थात् लोहमय गगन विहारी नगराकार विमानों वड़े-बड़े अभय नगरों को विचूर्णित करने में सिद्धहस्त और वज्र सार का बना हुआ था ॥५८६॥

सञ्चोड पंच मालं, कुसुमासव लोल छप्प (य) विडलं ।

मणिकुण्डलं च वामं, कुवेरघरसारं आरामं । ५९० ।

(सर्वतुं पंचमालं, कुसुमासव लोल पट्पद विपुलम् ।

मणि कुण्डलं च वामं, कुवेर गृहसार आरामम् ।)

अचल के वक्षस्थल पर सभी ऋतुओं के पांच वर्ण के फूलों की माला थी, जिस पर फूलों के रस को चूसने के लोभी चपल भ्रमर मंडराते रहते थे। अचल के कानों में धन कुवेर के धनागार के सभी आभूषणों में सारभूत मनोहर मणिकुण्डलों की जोड़ी थी । ५९० ।

अचलस्स वि अमर परिग्गहाइं, एयाइं पवररयणाइं ।

सत्तूण अजियाइं, समरगुण पहाणगेयाइं । ५९१ ।

(अचलस्यापि अमर परिग्रहाणि, एतानि प्रवररत्नानि ।

शत्रूणामजितानि, समरगुण प्रधान गेयानि ।)

अचल बलदेव के पास भी शत्रुओं द्वारा अजेय, समर के सभी प्रधान गुणों से गेय अर्थात् युक्त थे (उपरि लिखित) उत्कृष्ट रत्न थे ॥५९१॥

बद्धमउडाण निच्चं, रज्जधुरुव्वहणधीरवसभाणां ।

भोइण नरिंदाभाणं, सोलसराती सहस्साइं । ५९२ ।

(बद्धमुकुटानां नित्यं, राज्यधुरोद्धहनधीरवृषभाणां ।

भोगिन् नरेन्द्राभानां, पोडश राजसहस्ताणि ।)

वामुदेय विदुषः श्रीरः दत्तो पद्यम् का सेवा मे पुपभी हे
ममान राजपुत्री को मदन करते मे श्रीरः मुकुटपद पर नागनाक के
ममान प्रकर १६,००० (सौपद हजार) गाता निरत करने मे १४६२०

बाबायीने लक्ष्मी, हेयाया रहमपवगण पट्टिपुण्या ।
मदृप देवमदम्मा, अभिउग्गा मन्त्रकम्मेषु १४९३ ।
(जायव्यादिभक्त्याः हेयानां नम-गजयगणां प्रविपुषाः ।
कौटी न देर महत्ता, आभियोग्गाः नर्वकवेषु १)

उपके पाग सभी सावन्त्र मन्त्राली मे मने हुए कयायीन
पाग कोटे, उवने ही रूप तथा उवने ही पदका मन्त्राल मे । उवने
पमीरित सभी बायी को मन्त्राल कम्म हेतु १४९० (आठ हजार)
देर मना उवकी आता को पावन करने मे पावन करने मे १४६२०

मन्त्रायता कौटीउ पाठकनगण म्पनमग्ग्याणं ।
मोन्न पाहन्नीउ, मन्त्रायणं पुपयणं १४९१ ।
मद चयवर्गिणु कौट्यम्मु पदाग्निगणां म्पनमग्ग्याणाम् ।
उन्न साहय्येम्मु, मन्त्रमदनां पुपयणाम् १)

विदुषः पदा पद्यम् का सेवा मे श्रीरः मुकुटपद पर नागनाक के
ममान प्रकर १६,००० (सौपद हजार) गाता निरत करने मे १४६२०

पुपयणी विज्जाल, ममान मन्त्रायण मंनानी ।
पुपयणवानी, नागाव कटुमारा मन्त्रा १४९२ ।
विज्जालु विज्जालमग्ग्यां मन्त्रमदानी म्पनमग्ग्याम् ।
पुपयणवानीमिः नागाव कटुमारापुपयणाम् १)

विदुषः पदा पद्यम् का सेवा मे श्रीरः मुकुटपद पर नागनाक के
ममान प्रकर १६,००० (सौपद हजार) गाता निरत करने मे १४६२०

नेगाईं सहस्साईं, गामागरणगर पट्टणादीणं ।
 विण्डट्टदाहिणेणउ, पुव्वाघर अंतरट्टिया । ५९६।
 (अनेकानि सहस्राणि, ग्रामागारनगरपत्तनादीनाम् ।
 वैताड्य दक्षिणेन तु; पूर्वापरान्तरस्थिताः ।)

इनके अतिरिक्त वैताड्य पर्वत के दक्षिणी भाग में पूर्व तथा पश्चिम की तलहट्टियों में वसी दो विद्याधर श्रेणियों के अनेक सहस्र ग्राम-आगार-नगर तथा पत्तन त्रिपृष्ठ वामुदेव एवं अचल बलदेव के आधिपत्य में थे ॥५९६॥

दरियरिउमाणमहणा, अवसेवसमाणइत्तु नरवइणो ।
 दाहिण भरहं सकलं, भुंजंतिविलीण पडिवक्खा । ५९७।
 (दृप्त ऋपुमान मथनाः अवशान् वशमानयित्वा नरपतयः ।
 दक्षिण भरतं सकलं, भुञ्जन्ति विलीन प्रतिपक्षाः ।)

दपेन्मित्त (दृप्त) शत्रुओं के मान का मथन (मर्दन) करने वाले त्रिपृष्ठ और अचल स्वतन्त्र राजा-महाराजाओं को अपने आज्ञानुवर्ती एवं अधीन बना कर शत्रुविहीन हो सम्पूर्ण दक्षिण भरत के निष्कण्टक राज्य का उपभोग करने लगे ॥५९७॥

सोलस साहस्सी तो, नरवइतणयाण रूवकलियाणं ।
 तावइओविय जणवय, कल्लाणीतो तिविट्टस्स । ५९८।
 (पीडशसाहस्रीस्तु. नरपतितनयानां रूपकलितानाम् ।
 तावत्योऽपि च जनपद-कल्याण्यस्तु त्रिपृष्ठस्य ।)

राजाओं की अनुपम रूप-लावण्यवती १६,००० कन्याएं और उतनी ही अर्थात् १६ हजार, विभिन्न जनपदों की रूप-गुण-यौवन संपन्ना सुन्दरियां ॥५९८॥

इय वत्तीस सहस्सा, चारुपत्तीण ता तिविट्टस्स ।
 धारिणि पायोक्खाणय, अट्टसहस्सा य अयलस्स । ५९९।

(मथुरा च कनकवस्तु, श्रावस्ती पोतनं च राजगृहम् ।
कोगंदी [काकन्दी] कौशाम्बीः, मिथिलापुरी हस्तिनापुरञ्च ।)

मथुरा. कनकवस्तु श्रावस्ती :पोतनपुर, राजगृह, काकन्दी,
कौशाम्बी, मिथिलापुरी और हस्तिनापुर । ६०६।

आसग्गीवे तारय, मेरय मधुकैटवे निसुं भे य ।
बलिय हिराए^१ (हिरण्ये) तह, रावणे य नवमे जरासिंधू । ६१०।
(अश्वग्रीवः तारक-मेरक-मधुकैटभाः निशुम्भश्च ।
बलिश्च हिरण्य [क्षिपुः] तथा, रावणश्च नवमः जरासिंधु [सन्धः] ।)

अश्वग्रीव, तारक, मेरक, मधुकैटभ, निशुम्भ, बली, हिरण्य-
कशिपु, रावण और जरासन्ध । ६१०।

एते खलु पडिसचू, किञ्चिपुरिसाण वासुदेवाणं ।
सव्वे य चक्रक जोहा, सव्वे वि हया सचक्केहिं । ६११।
(एते खलु प्रतिशत्रवः. कीर्तिपुरुषाणां वासुदेवानाम् ।
सर्वे च चक्रयोद्धारः, सर्वेऽपि हताः स्वचक्रैः)

ये कीर्तिशाली वासुदेवों के प्रतिशत्रु अर्थात् प्रतिवासुदेव थे ।
ये सब चक्रघोषो थे और सभी अपने ही चक्रों द्वारा मारे गये । ६११।

पंच अरहंते वंदंति, केशवा पंच आणु पुञ्चीए ।
सेज्जंस-तिविट्ठादि, धम्म-पुरिससीह पेरन्ता । ६१२।
(पंच अर्हतान् वन्दन्ति. केशवा पञ्च आनुपूर्व्या ।
श्रेयांस-त्रिपृष्ठादि, धर्म-पुरुषसिंह पर्यन्ताः ।)

१ श्वेताम्बर परम्परा ग्रन्थेषु सप्तमो प्रतिवासुदेवः प्रह्लाद नाम्ना दिगम्बर
परम्परायाः तिलोत्पण्णत्ती-ग्रन्थे च प्रहरण नाम्ना समुल्लिखिताऽस्ति
प्रह्लादस्तु परम भागवतोऽभिमतः सनातन परम्पराया पुराण ग्रन्थेषु ।
अनया गायया हिरण्यक्षिपुरेव नवमो प्रतिवासुदेव प्राप्तीदित्यनुमीयते ।
विदूषां विमर्षणीयं विषयमेतत् प्रतिभाति ।

बलमित्र-भानुमित्र का साठ, नभसेन का ४०, गर्दभिल्ल का १०० वर्ष तक क्रमशः राज्य चलने के पश्चात् शक राजा का शासन हुआ । ६२२।

पंच य मासा पंच य वासा, छञ्चेव होंति वाससया ।
परिनिव्युयस्य अरिहा, तो उप्पन्नो सगो राया । ६२३।
(पंच च मासा पंच च वर्षा, पट् चैव भवन्ति वर्षशता ।
परिनिवृत्तस्यार्हतः, तत उत्पन्नः शको राजा ।)

भगवान् महावीर के निर्वाण से ६०५ वर्ष और ५ मास व्यतीत हो जाने पर शक राजा हुआ । ६२३।

सगवंसस्सय तेरस सयाइं, तेवीसइं च होंति वासाइं ।
होही जम्मं तस्सउ कुसुमपुरे दुट्टबुद्धिस्स । ६२४।
(शकवंशस्य त्रयोदश शतानि, त्रयोविंशतिश्च भवन्ति वर्षाणि ।
भविष्यति जन्म तस्य तु (ततस्तु). कुसुमपुरे दुष्टबुद्धेः ।)

शक वंश के १३२३ वर्ष होते हैं तब दुष्टबुद्धि का कुसुमपुर में जन्म होगा । ६२४।

पत्तो प (च) त्त कुलंमि य, चेत्ते सुद्धड्ढमीय दिवसंमि ।
रौद्रोवगए चंदे विट्ठिकरणे रविस्सुदए । ६२५।
(प्राप्तस्त्यक्तकुले च, चैत्रे शुद्धाष्टम्याश्च दिवसे ।
रौद्रोपगते चन्द्रे, वृष्टिकरणे रवेरुदये ।)

चैत्र शुक्ला अष्टमी के दिन चन्द्र के रौद्र योग में आने पर वृष्टि करण में सूर्य के उदय के समय उस (दृष्ट बुद्धि) का त्यक्त (नीच) कुल जन्म हुआ । ६२५।

जम्मोवगए सूरै, सणिच्छरे विण्हु [१] देवयागए य ।
सुकके भोमेण हंते, चंदेण हए सुरगुरुंमि । ६२६।
(जन्मोपगते सूर्ये, शनिश्चरे विष्णुदेव गते च ।
शुक्रे भौमेन हते, चन्द्रेण हते सुरगुरौ ।)

उन स्तूपों के सम्बन्ध में उसके द्वारा पूछताछ की जाने पर लोग उसे बतायेंगे कि बल, धन, रूप एवं यश--सभी दृष्टियों से समृद्ध नन्द नामक राजा यहां बहुत समय तक शासनाह्व रह रहा । ६३७।

तेणउ इहं हिरण्णं, निक्खित्तंसि बहुवलपमत्तेणं ।

न य णं तरंति अण्णे, रायाणी दाणिं धितुं जे । ६३८।

(तेन त्विह हिरण्यं, निक्षिप्तं (अस्ति) बहुवलप्रमत्तेन ।

न च नु तरन्ति अन्ये, राजान इदानीं ग्रहीतुं ये ।)

बलाधिक्य से प्रमत्त उस नन्द राजा ने इन स्तूपों में बहुत सा स्वर्ण गाड़ा था । अब इस स्वर्ण को लेने में कोई दूसरे राजा समर्थ नहीं हैं । ६३८।

तं वयणं सोऊणं, खण्णेहीति समंतओ तओ धूमे ।

नंदस्स संतियं तं, पडिवज्जइ मो अहं हिरण्णं ६३९।

(तद्वचनं श्रुत्वा, खनत इति समन्तात् ततः स्तूपान् ।

नन्दस्य संचितं तत्, प्रतिपद्यते सोऽथ हिरण्यम् ।)

लोगों के उस वचन को सुन कर वह उन पांचों स्तूपों को सब और से खुदवायेगा और नन्द राजा द्वारा संचित उस सम्पूर्ण स्वर्ण को ग्रहण कर लेगा । ६३९।

सो अत्थपडिथद्धो, अण्ण नरिंदे तणे वि अगणितो ।

अह सव्वतो महंतं खणाविही पुरवरं सव्वं । ६४०।

(स अर्थप्रतिस्तब्ध अन्य नरेन्द्रान् तृणान्यप्यगणयन् ।

अथ सर्वतो महान्तम् खनापयिष्यति पुरवरं सर्वम् ।)

वह उस अपार अर्थ राशि को पा कर प्रतिस्तब्ध अर्थोन्मत होगा । उसकी अर्थ लोलुपता और बढ़ेगी । अब तो वह अन्य सभी राजाओं को तृणतुल्य भी न गिनता अर्थात् मानता हुआ (इस) समस्त महान् नगर को सब और से खुदवायेगा । ६४०।

नामेण लीण देवी, गावी रूवेण नाम अइवुच्छा ।

धरणियलाउच्छ्रया, दीसिही सिलामई गावी । ६४१।

(नाम्ना द्योतयेवी, गीर्वाणानान भन्वृत्था ।
धरणीन्यान् उद्भूता, द्रुधवने विद्यामयी भारी ।)

इस मंत्र की मीमांसे का मत दृग्-वचन के अर्थों का अर्थ है
विद्यामयी धरत के अर्थ में जोना नामक देवी का उद्दिष्ट है इति गोप
देवी (१५४)।

या किं वदया भारी, द्योतयं गद्यमगमोनिष्ठा ।
साद्भवं द्विदं, विन्दही सुसुखावर्ती । १६७२।
(या किं वदया भारी, भूना गद्यमार्गवर्ती ।।
साद्भवं द्विदं, प्रोक्षयिष्यति सुसुखावर्ती)

इस मंत्र का अर्थ है कि जो साक्षात् इन्द्र-वचन आने वाले साद्भवं
की देवी ही वदया की सुसुखावर्ती (सुखदा करेगी) १६७२।

ये निष्ठाभिरुप भाषण, विद्योत्तम निष्ठाभिरुपिता ।।
द्विदं वि दृ गमयामया न वर्तते इ द्विदं नयने । १६७३।
(ये निष्ठाभिरुपान् विद्योत्तम निष्ठाभिरुपिताः।
विद्यामयि भूनामया, न नयसुवनि द्विदं नयने)

इस मंत्र का अर्थ है कि जो साक्षात् इन्द्र-वचन आने वाले
वदया के अर्थ में विद्या उपाय विद्यामयी करके अर्थात् धरत-वचन
अर्थ में ही वदया की देवी ही वदया की सुसुखावर्ती (सुखदा करेगी) १६७३।
इस मंत्र के अर्थ में ही वदया नाम की देवी का उद्दिष्ट है इति गोप
देवी (१५४)।

विद्योत्तमो वचनो, भाषयिष्यं वदयावर्ती नयने ।
इयं वदयावर्ती, विद्योत्तमो वदयावर्ती । १६७४।
(वदयावर्ती व वदयावर्ती अर्थात् विद्योत्तमो वदयावर्ती ।
इयं वदयावर्ती वदयावर्ती वदयावर्ती ।)

नामक राजा समस्त साधु-संन्यासियों को एकत्र कर कहेगा---
 "तुम सब लोग मुझे कर दो" । ६५१।

रुद्रोय समणसंघो, अच्छिहीति सेसया य पासंडा ।
 सव्वे दाहिंति करं, सहिरण्णसुवण्णिया जत्था । ६५२।
 (रुद्रश्च श्रमणसंघः, स्थास्यति शेषकाश्च पाषण्डा ।
 सर्वे दास्यन्ति करं, सहिरण्य सुवर्णिकाः यत्र ।)

कर देना स्वीकार न करने की दशा में श्रमण संघ उस राजा द्वारा अवरुद्ध हो वहीं रुका रहेगा । अन्य धर्मों के साधु संन्यासी तथा अन्य सभी पाखण्डी उस राजा को अपने-अपने पास के स्वर्ण में से कर के रूप में स्वर्ण देंगे । ६५२।

सव्वे य कुंपासंडे, मोयावेहि वला सलिंगाई ।
 अइ तिव्वलोहघत्थो, समणे वि अभिद्वेसीय । ६५३।
 (सर्वाश्च कुपासण्डान्, मोचापयिष्यति वलात् स्वर्लिंगानि ।
 अतितीव्रलोभग्रस्तः श्रमणानपि अभिद्रविष्यति च ।)

वह अन्य सब पाखण्डियों से बलपूर्वक उनका वेष उतरवा लेगा और अतीव तीव्र लोभ से अभिभूत हो वह श्रमणों को भी संताप देगा । ६५३।

वोच्चंति य मयहरगा, अम्हं दायद्वं म किंचित्थ ।
 जं नाम तुमहलुब्भा, करेहि तं दायसी राय । ६५४।
 (वक्ष्यन्ति च महत्तरका, अस्माकं दातव्यं द्रव्यं न किंचिदत्र ।
 यत्-नाम त्वं लोभात् करं आदायसि राजन् ।)

इस पर महत्तर संघ-स्थविर उसे कहेंगे --- "हमारे पास देने के लिये ऐसी कोई वस्तु या द्रव्य नहीं है जिसे तुम लोभ के वशीभूत हो कर द्वारा लेना चाहते हो" । ६५४।

रोसेण ससयंतो, सो कइ वि दिणा तहेव अच्छिही ।
 अह नगर देवया तं, अप्पणिया भणिही राय । ६५५।

(रोपेण सुमुक्तायन्, स कल्पपि दिनानि तथैव श्यास्यति ।
अथ नगर देवता सं. भारतीय भणिस्यति राजन् ।)

बहु कतिपय दिनों तक सोच से समझना हुआ प्रथम मंत्र की प्रकृत्य पर उनके साथ इसी प्रकार का व्यवहार करना रहेगा । अन्ततोगाथा उनके मंत्र का अविच्छेदात् देय उद्यते कहेंगा—(६२४)

किं त्वसि मरौते, जे निर्गतं किं बाहसे समणमंथ ।
सर्वं ते पञ्जरां, ननु चर दीहं पटिच्छादि ।६२६।
(किं त्वसि मरुं यन्, नृशंस किं बाहसे धमणमंथम् ।
सर्वं ते पशोर्ष, ननु कति दिवसानि प्रवीच्छति ।)

जना सुम शीघ्र ही मीम के मुँह में जागा बाहसे हा जो समण रूप को इस प्रकार पीटा पहुँचा रहे हो ? मुन्हागे दृष्ट्या मीमा का अविच्छेदात् कर चुकी है, अब सुम अतिक दिनों तक कामा नहीं पाही । (६२६)

उत्सारात्सामो लो, पटिजो पाणु समणमंथस्य ।
कोशो दिहो मयं हुणह पलायं पमाप्सि ।६२७।
(भारं पटकाटकां स, पतितः पादेषु धमणमंथस्य ।
कोशः स्यात्स गगन् । कुठव प्रसाहं प्रमादयामि ।)

मंत्र देवता के से समण मुन्हा ही राजा मरुहं स समणमंथ ही समण मंत्र के कारणों से निर पड़ेगा । उनके सब समण काट-काट हो जायेंगे । यह निकमिहा कर कहेंगा—'सामन् । किने सामके देवा सब मृत कर देया कीजिये । मैं लाचरी उगम्यता कर पायी हूँ ।' (६२७)

किं त्वस्य पशोर्ष, तद वि स बहुया, अहिं स ह(क)च्छति ।
सोम मिंका सर्व, अहं दिवा राहं शान्तिदिहो ।६२८।
(दिवायस्यं प्रसादेन, उद्यति स बहुकाः ह्य न ह्यच्छति (मिच्छति) ।
सोम विमया वरी, अथ दिवायस्यं अविष्यति ।)

सामिय सणंकुमारा, सरणं ता होहि समणसंघस्स ।
 इणमो वेयावच्चं, भणमाणाणं न वट्टिहिति ६६६।
 (स्वामिक सनत्कुमार, शरणं तावत् भव श्रमणसंघस्य ।
 इदं वैयावृत्यं, भणमानानां न वर्तिष्यते ।)

“श्री सनत्कुमार देवलोक के स्वामी ! तुम श्रमण संघ के शरण्य बनो, यह श्रमण संघ की सेवा का अवसर है’ —इस प्रकार कहते हुए श्रमण बाढ़ में नहीं वहेंगे । ६६६।

अलोइयं नीसल्ला, पच्चक्खाणेषु धणियमुज्जंता ।
 उत्थप्पिहिंति समणी, गंगाए अग्रवेगेणं । ६६७।
 (आलोचित निश्शल्या प्रत्याख्यानेषु धणिय (अतिशय) मुद्यच्छन्तः ।
 उत्थाप्स्यन्ते श्रमण्यः, गंगाया अग्रवेगेन ।)

आलोचना कर निश्शलय बनी हुई तथा प्रत्याख्यान करने में पूर्णतः उद्यत श्रमणियां गंगा के तीव्र वेग द्वारा पानी से बाहर पहुँचा दी जायेंगी । ६६७।

काओवि साहुणीओ, उवगरण धणिय राग पडिबद्धा ।
 कलुण पलोयणि यातो, वसहि सहियातो बुज्झंति । ६६८।
 (काचिदपि साध्व्य, उपकरणघनितरागप्रतिबद्धाः ।
 करुण प्रलोकनिकास्ता, वसति सहितास्ततः बाह्यन्ते ।)

अपने उपकरणों के प्रति प्रगाढ़ अनुराग में बंधी हुई कतिप्रय श्रमणियां करुण दृष्टि से अपने उपकरणों को देखती हुई वसतियों सहित उस बाढ़ में डूब जायेंगी । ६६८।

सामिय सणंकुमारा, सरणं ता होहि समणसंघस्स ।
 इणमो वेयावच्चं, भणमाणीणं न वट्टिहिति । ६६९।
 (स्वामिन् सनत्कुमार, शरणं तावत् भव श्रमणसंघस्य ।
 इदं वैयावृत्यं, भणमानीनां न वर्तिष्यति ।)

"यो मन्त्रहृमादिभ्यः । तुम भ्रमणस्यैव के शरत्त वती । यह
वैशाख्य (भ्रमण भ्रमणो की सेवा) का मुख्यमन्त्र है" — इस प्रकार
श्रीमन्मो हई प्राथिणी वाद से सुरक्षित रहेंगे । ६६६।

शालोद्घ निमन्ता, ममणीभो पन्चक्यादुत्तण टन्मुगा ।
उत्थिषिहिति धणियं, गंगाण बन्गवेगेणं ६७०।

शालोचित्तविश्रान्त्याः भ्रमण्यः प्रत्यान्व्यान्वा टपु न्नाः ।
उत्थाप्यन्ते धणियं [सूर्ण], गंगाया अप्रवेगेन ।)

श्रीमन्मो प्रकार के मन्त्रों को शालोचना की हई वादाह्वान कर
परिहृतमन्त्र के लिये उत्तम प्राथिणी गंगा के तीर वेव द्वारा शीघ्र
ही शालो से बाहर पहुँचा दो शायंसी ६७०।

कई कलमविलासा, वन्धेदि मरण ममणीण संघाया ।
कापरियादीय महा, उत्थिषा शीय कूर्तेमि ६७१।

(केचिन् कलहविश्रान्त्याः प्रहरेण भ्रमण ममणीनां संघायाः ।
आपायादियस्यथा, उत्थिणीः शिगीय कूर्ते ।)

भ्रमणो एव ममणीयो के कतिपय मन्त्र हका आशुतो कर्ते
लकड़ों और लकड़ी के प्राथिणी पर बंद कर पर पर कर्ते के कर
हउते ६७१।

ममणीभो वि प हृदो, केव लक्ष् व ममण मूर्तेमि ।
ममणीषा शीयवर्त, केव पुनक्य निहण ममा ६७२।
(ममणीभोऽपि व हृदितः, केचिन् लक्ष्णा ममणीभोऽपि ।
ममणीभोः शिगीय कूर्ते, केचिन्ममणीभोऽपि ममणीभोः ।
मम ६७२।)

उस समय भी कल्प और व्यवहार का धारक पच महाव्रत रूपी संयम से संयत तपस्वी, सूत्रार्थों का मर्मज्ञ और परशान्त आज्ञादृष्टि नामक श्रमण । ६८०।

वीरेण समाइद्धो, तित्थोगालीए जुगप्पहाणोत्ति ।

सासण उण्णति जणणो, आयरित्तो होहिति धीरो । ६८१।

(वीरेण समादिष्टः, तीर्थोद्गाल्यां युगप्रधान इति ।

शासनोन्नतिजनकः, आचार्या भविष्यति धीरः ।)

जिसे "तीर्थोद्गारी" में श्रमण भगवान् महावीर ने युगप्रधान बताया है, जिन-शासन की उन्नति करने वाला अति धीर आचार्य होगा । ६८१।

पाडिवतो नामेण, अणगारो तह य सुविहिया समणा ।

दुःखपरिमोयणट्ठा, छट्ठम तवे काहिति । ६८२।

(प्रातीपव्रतः नाम्ना, अणगारस्तथा च सुविहिताः श्रमणाः ।

दुःखपरि मोचनार्थं . षष्ठाष्टम तपांसि करिष्यन्ति ।)

प्रातिपद नामक एक अनगर तथा सुविहित परम्परा के श्रमण होंगे । वे जन्म-मरण के दुःख से मुक्त होने के लिये षष्ठम (तेला) और अष्टम (तेला) आदि तप करेंगे । ६८२।

रोसेण मिसिमिसंतो, सो कइ दीहं तहेव अच्छीय ।

अह नगरदेवयाउ, अप्पणिया वेत्ति वेसीया । ६८३।

(रोपेण मिसमिसायन् स कति [चित्] दिवसान् तथैव आस्थितः ।

अथ नगरदेवता तु, आत्मीया ब्रुवति आवेशिता ।)

क्रोधातिरेक से दांतों को किटकिटाता हुआ वह कतिपय दिनों तक उसी प्रकार श्रमण संघ को संताप देता रहेगा । इस पर नगर की अधिष्ठात्री देवी आवेश भरे स्वर में कहेगी—। ६८३।

किं त्तरमि मरिउं, जे निस्संसं किं वाहसे समणसंघं ।

सव्वं तं पज्जत्तां, नणु कइ दीहं पडिच्छाहि । ६८४।

(किं स्वस्ति मर्तुं, ते नृशंसं किं बाधसे श्रमणनंशम् ।
ननु ननु पर्याप्तं, ननु कति दिवसान् प्रतीच्छामि)

“श्रमणं तेषु कीं पौष्टां पद्विषा कर तू वषो लीछ ही मरना
चाहता हूँ. क्या, तू पर्याप्त हुण्डना का पूरा वीन अब तू दिवसे
दिन जीमा चाहता है ? 1527

नामिनि यं अनुगन्तो, लट्टं भिक्षुत्सन् मन्वय भागं ।
कान्तनर्गं विद्विष, मन्वक्यागदणदृष्टाण 1528।
(नामानपि यं [द्वयने] कान्तनरं पष्टं मिभायाः सुन्यते भागम् ।
कान्तनर्गं स्थिताः. यन्वपाराधनापार्थ 1)

द्विजवाणी की अनुगुनी करते हुए वह श्रमणों के निधन का
दृष्टा भाव मानने लगा. श्रमण नरों तक की आराधनायें कावांशुते
का निश्चय करा हो गया 1527.

गोशर्तवि निरुद्धा, समन्ता रोक्षेण विद्यामिनाशंका ।
शंका द्रवक्षो यं मयति, तय कृद्वि मण्यं [वर्] मि
[शय ना शर्षेद संघमि] 1529।

(गोशर्तके निरुद्धा समन्ता रोक्षेण विद्यामिनाशंकाः ।
काहा शर्षेद संघमः. गहम ना शर्षेद संघ मिति ।)

कामण्डलु शय कथा विद्या का लट्ट काय कर के लट्ट से देना
स्वीकार न किये जाने की कथा में जीवाहितेह में शंका की लीजते
हूँ क्योंकि ये श्रमण संघ की शायी की मन्वक से क्या कर दिना,
वह देना काय कीर लट्ट वषो कहते हैं—“गहम ! तय क्या करी,
श्रमणों की लट्ट काय है मुझे ही ?” 1528।

कान्तनरवदित्तुं, यन्वक्यागद्विषं कथो शृणुं ।
आदीन्यं शोदित्, विषं विद्वद्विरो वर 1530।
(कान्तनरवदित्तुं, यन्वक्यागद्विषं कथो शृणुं ।
आदीन्यं शोदित्, विषं विद्वद्विरो वरि ।)

(देव इव श्रमणसंघः, पूजिष्यते सर्वनगरग्रामेषु ।

उनाः विंशति सहस्राः अनुपमः भविष्यति सत्कारः ।)

सभी नगरों एवं ग्रामों में देवोपम श्रमणसंघ की पूजा होगी । कुल ही न्यून बीस हजार वर्षों तक श्रमण संघ का अपूर्व सत्कार होगा । ६६३।

एवं चिय वासेसुं, नवसुवि होहीति सक्काउ राया ।

एगसमएण दसवि सक्कीसाणाओ काहिति । ६९४।

(एवं चैव वर्षेषु. नवस्वपि भविष्यन्ति शकाः राजानः ।

एक समयेन दशाऽपि शकेशा आज्ञां करिष्यन्ति ।)

इसी प्रकार ढाई द्वीप के शेष चार भरत और पांच ऐरवत-इन नौ ही क्षत्रों में शक राजा होंगे । ये दशों ही शक राजा एक ही समय में अपनी राजाजा चलायेंगे अर्थात् शासन करेंगे । ६६४।

दत्तो वि महाराया, जिनाययण मंडियं वसुमतिं तु ।

कारेहि सौ मियं, दिवसे दिवसे य सक्कारं ६९५।

(दत्तोऽपि महाराजा, जिनायतन-मंडितं वसुमतीं तु ।

कारयिष्यति स शीघ्रं, दिवसे दिवसे च सत्कारम् ।)

महाराजा दत्त भी शीघ्र ही पृथ्वी को जिनायतनों (जिनालयों) से मण्डित कर श्रमण संघ का दिन प्रतिदिन सत्कार करेगा । ६६५।

तस्स सुओ जिय सत्तू, तस्सविय सुतो उ मेघघोसोचि ।

अन्नोन्नरायवंसा, जाव विमलवाहणो शया । ६९६।

(तस्य सुतः जितशत्रुः, तस्यापि च सुतस्तु मेघघोप इति ।

अन्योऽन्यराजवंशाः, यावत्-विमलवाहनः राजा ।)

राजा दत्त का पुत्र होगा राजा जितशत्रु और जिनशत्रु का पुत्र राजा मेघघोप । इस प्रकार राजा विमलवाहन तक अन्यान्य राजवंश होंगे । ६६६।

(नवस्त्रपि वर्षेस्त्रेत्रं, मनः परमावधि पुलकादीनाम् ।

समकाले व्युच्छेदः, तीर्थोद्गाल्यां निर्दिष्टः ।)

इस प्रकार शेष ६ क्षेत्रों में भी मनःपर्यवसान, परमावधि, पुलकलब्धि आदि १० विशिष्ट आध्यात्मिक जक्तियों का एक साथ एक ही समय में विच्छेद होना "तीर्थोद्गाली" (तीर्थ--ओगाली--तीर्थ प्रवाह) में बताया गया है । ७००।

चोदस पुव्वच्छेदो, वरिससतेसत्तरे विणिदिट्ठो ।

साहुम्मि थूल भद्दे, अन्ने य इमे भवे भावा । ७०१।

(चतुर्दशपूर्वच्छेदः वर्षं शते [च] सप्ततौ विनिर्दिष्टः ।

साधौ स्थूल-भद्रे, अन्ये च इमे भवेयुः भावाः ।)

(ध्रुतकेवली भद्रवाहु के स्वर्गगमन के पश्चात्) वीर निर्वाण वर्ष १७० में साधु स्थूलभद्र में चतुर्दश पूर्वी का छेद अर्थात् हास बताया गया है । अन्य भी ये (निम्नलिखित) घटनाएँ घटित होने का निर्देश किया गया है । ७०१।

कोवीकय सज्जातो, समणो समण गुण निउण चित्तइ उं ।

पुच्छइ मणि सुविहियं, अइसयनाणि महासत्तां । ७०२।

(कोऽपि कृतस्वाध्यायः, श्रमणः श्रमणगुणनिपुणचिन्तकः ।

पृच्छति गणिनं सुविहितं, अतिशय ज्ञानिनं महासत्त्वम् ।)

श्रमण के गुणों में निपुण एवं चिन्तक एक साधु स्वाध्याय करने के पश्चात् सुविहित परम्परा के अतिशय ज्ञानी एवं महासत्त्व-शाली गणाचार्य से पूछता है । ७०२।

भगवं कह पुव्वाओ, नड्ढाओ उवरियाइं चत्तारि ।

एयं जहा विदिट्ठं, इच्छह सवभावतो कहिउं । ७०३।

(भगवन् कथं पूर्वाणि नष्टानि उपरिमानि चत्वारि ।

एतद् यथा विदष्टं, इच्छथ सद्भावतः कथितुं ।)

१ पूर्वतर चतुर्पूर्वाणां विच्छेदात् चतुर्दशपूर्वहासं-हानिरित्यर्थः । छेदशब्दोऽत्र हास द्योतक एव न तु विलुप्ति द्योतकः ।

“मगदम । अर के पार पूर्व (प्राग्पूर्व पूर्व से पीरहर्षे तक) किम प्रकार नष्ट हो गये ? बहु जायने किम प्रकार येना (जानाविद्यम) से देना, जाना समदा गुना) है उगी प्रकार कहने की हुना कीरिणे ।” १७०३।

अद पादलस्य गुणपापदस्यापि परंपरागमो गंधो ।
संप्रगो संकतो अहियपरं पावलो होइ ॥७०४॥

(पया पादलस्य गुण प्रकटस्यापि परम्परागतः गंधः ।
संप्रगो संकान्त अभिकतरं प्रकटीभवति ।)

यापामे मे भयना के सत्य का उत्तर देते हुए कहा - 'किम प्रकार सर्वविधित पूर्णों वाले पादल यमों गुणान के गुण की परंपरागत गुणान अथवे गंधों के सतम से पीर जविक विरहित हा प्रकट होयी है ॥७०४॥

एवं सुवधा पविष्टुत्तरो, नरो परम मंदमेदाधी ।
पौरवि पुष्टुत्तरो पुन, जन पाप दुर्गंधो होई ॥७०५॥

(एवं भू सुधा पविष्टुत्तरोः नरो परममंद मेधाधी ।
पौरिषा पुष्टुत्तरोः पुनः, पया प्राप दुर्गन्धितः भवति ।

करी प्रकार परम मन्द मनुष्य की धूलमय से सुवधा-पौरी
नर दुर्ग-पुन कर हीमारी बन लाया है । उगी पादल पुन की पाठी
की पुष्टुत्तरो अथवे पर बहु दुर्गन्धित ही लाया है ॥७०५॥

दरदीपकस्य - यथा लीलाधिकरण जगदिस पादल गुणान
पुनारी बहुपुनार सतारके लोके पुष्टुत्तरो पविष्ठा मकामाद् पविष्टुत्तरो
सुवधा-पुनार । हीमारी पाया पुनारि पुनारी पुष्टुत्तरो
दरदीपकस्य । किमू लवेन पविष्टुत्तरो मंदमे
कीरिणिके जगदिस पुष्टुत्तरोपुनारि क पविष्ठा लदु दरवाका
पुनार पादल पादल पुनः पादल पुन हीमारी लीलाद् पुष्टुत्तरो पविष्ठा ।

दिव्याय दिव्यवर्ण, कन्यादि न वि दिव्याद् अथकात् ।
पुन्याय दिव्याय पुनो, मदेनापस्य मदीर्ष ॥७०६॥

(विज्ञानं जिन वचनं, कदापि नापि दीयते अधन्यस्य ।
धन्यस्य दीयते पुनः, श्रद्धधानस्य भावेन ।)

जिन वाणी एवं विशिष्ट ज्ञान कभी किसी अधन्य अर्थात् हीन अथवा अधम पुरुष को नहीं देना चाहिये । वह केवल ग्रान्तरिक श्रद्धाशील उत्तम पुरुष को ही देना चाहिए ७०६।

अम्हं आयरियाणं, सुतीए कण्णाहडं वा सोउं ।
जे तित्थोगालीएयं, एगमणा से निसामेह ७०७।
(अस्माकं आचार्याणां श्रुत्या कर्णाहितं वा श्रुत्वा ।
यत् तीर्थोद्गालिकायां, एकमनसा तत् निशामयतः ।

मैंने अपने आचार्यों के मुख से अथवा परम्परागत श्रुति के आधार से तीर्थोगाली अर्थात् तीर्थों के प्रवाह के सम्बन्ध में सुन कर जो जाना है, उसे तुम एकाग्रचित्त हो सुनो ७०७।

तिण्णि य वासा मासद्ध अट्ट वावत्तरियं सेसाइं ।
सेसाए चउत्थीए, तो जातो वदमाण रिसी ७०८।
(त्रयश्च वर्षाः मासाद्धाष्टि द्वासप्ततिश्च शेषाणि ।
शेषायां चतुर्थ्या, ततः जातो वर्द्धमानर्षिः ।)

चतुर्थ आरक की समाप्ति में जब पचहत्तर (७५) वर्ष और साढा आठ मास शेष रहे तब महर्षि भगवान् महावीर का जन्म हुआ ७०८।

अद्ध य सट्ठामासा, निन्नेव हवन्ति तह य वासाइं ।
सेसाए चउत्थीए, तो कालगतो महावीरो ७०९।
(वर्द्धश्च साष्टामासाः त्रय एव भवन्ति तथा च वर्षाः ।
शेषायां चतुर्थ्या, ततः कालगतो महावीरः ।)

जब चतुर्थ आरक की समाप्ति में तीन वर्ष और साढा आठ मास अवशिष्ट थे, तब भगवान् महावीर मोक्ष पधारे ७०९।

मृत्यु से बचे हुए शेष साधु सुदीर्घ काल के पश्चात् उस समय एक दूसरे को देख कर यह अनुभव करने लगे मानो वे परलोक में जा कर पुनः जीवित हो लींटे हैं । ७२०।

ते विंति एकमेकं, सज्ज्ञाउ कस्स किताउ धरति ।
 हंदि हु दुक्कालेणं; अमहं नट्ठो हु सज्ज्ञातो । ७२१।
 (ते त्रुवन्ति एकमेकं, स्वाध्यायः कस्य कियान् धरति ।
 हंत ! इह तु दुष्कालेन, अस्माकं नट्टो हि स्वाध्यायः ।)

वे परस्पर एक दूसरे से पूछते हैं कि किस किस को कितना-कितना आगम पाठ कण्ठस्थ है । हा ! दुष्काल के कारण हमें तो स्वाध्याय-अर्थात् आगम-पाठ विस्मृत हो गया है । ७२१।

जं जस्स धरइ कंठे, तं तं परि यट्ठिऊण सव्वेसिं ।
 तीणेहिं पिंडिताइं, तहियं एक्कार संग्गाइं । ७२२।
 (यद् यस्य धरति कण्ठे, तत्तत् परावर्तयित्वा सर्वेषाम् ।
 तैः पिण्डितानि, तत्र एकादशांगानि ।)

जिस जिस साधु को जितना-जितना पाठ कण्ठस्थ था, उस उस पाठ को सुन कर सब के आगम पाठों का परावर्तन किया गया और इस प्रकार उन्होंने (ज्ञान स्थविरों ने) वहाँ ग्यारह अंगों का पाठ यथावत् क्रमबद्ध, सुनिश्चित, सुव्यवस्थित कर प्रत्येक अंग को पूर्णतः एकत्रित किया । ७२२।

ते विंति सव्व सारस्स, दिट्ठिवायस्स नत्थि पडिसारे ।
 कह पुव्वगएण विणा य, पवयणं सारं धरेहामो । ७२३।
 (ते त्रुवन्ति सर्वसारस्य, दृष्टिवादस्य नास्ति प्रतिसार [प्रतिस्मारः]
 कथं पूर्वगतेन विना च, प्रवचनसारं धरिष्यामः ।)

एकादशांगी को सुव्यवस्थित करने के पश्चात् वे श्रमण कहते हैं—“सम्पूर्ण ज्ञान का सारभूत दृष्टिवाद तो किसी को स्मरण नहीं है । पूर्वगत ज्ञान के विना हम सब प्रवचन के सार को किस प्रकार धारण कर सकेंगे ? । ७२३।

“पूर्वश्रुतक्रमधर ! भगवान् महावीर का वर्तमानकालिक समस्त संघ आपसे प्रार्थना करता है—याचना करता है कि आप पूर्वो की वाचना दें” ७२७।

सो भणति एव भणिए, अतिड्ढ किलिड्ढएण वायणाणं ।

न हु ता अहं समत्थो, इण्हिं से वायणं दाउं ७२८।

(स भणति एवं भणिते, अतिऋद्ध-किल्पटत्वात् वाचनानाम् ।

न खलु तावदहं समर्थः, एतापां भो वाचनां दातुम् ।

संघाटक के इस कथन को सुन कर भद्रवाहु ने कहा—“पूर्वो की वाचनाएं गहन-गम्भीर, गूढार्थपूर्ण और नितान्त क्लिष्ट हैं अतः मैं इनकी वाचनाएं देने में समर्थ नहीं हूँ ७२८।

अप्पड्ढे आउत्तस्स, मज्झ किं वायणाए कायव्वं ।

एवं च भणियमेत्ता, रोसस्सवसं गया साहु ७२९।

(आत्मार्थे आयुक्तस्य, मम किं वाचनया कर्तव्यम् (करणीयम्) ।

एवं च भणितमात्रा, रोपस्यवशं गताः साधवः ।)

आत्मकल्याण में संलग्न मुझे वाचनाओं से क्या करना है। भद्रवाहु इतना ही कह पाये थे कि संघाटक के साधु रोप के वशीभूत हो गये ७२९।

(अह विण्णविंति साहु, हंतैवं पसिणपुच्छणं अम्हं ।

एवं भणंतस्स तुहं, को दंडो होइ तं भणसु ७३०।)

(अथ विज्ञपयन्ति साधवः, हंत ! एवं प्रश्न पृच्छनमस्माकम् ।

एवं भणतस्य तव, को दंडः भवति तद् भण ।)

तदनन्तर वे साधु भद्रवाहु को विज्ञप्त करते हुए कहते हैं—
“हमें दुःख के साथ आप से एक प्रश्न पूछना पड़ रहा है कि इस प्रकार की बात कहते हुए आप किस दण्ड के भागी होते हैं ? आप हमें यह बता दीजिये ७३०।

सो भणति एव भणिए, अविस्सन्नो वीरवयणे नियमेण ।

वज्जेयव्वो सुयनिण्हवोत्ति, अह सव्व साहूहिं ७३१।)

श्रमण संघाटक के इस कथन पर अपयशभीरु, यशस्वी एवं धैर्यशाली भद्रब्राह्म ने कहा--“मैं एक स्थिति में अर्थात् एक शर्त पर वाचना देना चाहता हूँ--।७३४।

अप्पड्ढे आउत्तो, परमड्ढे सुड्ढु दाणि उज्जुत्तो ।
न विं हं वाहरियव्वो, अहं पि न विवाहरिस्सामि ।७३५।
(आत्मार्थे आयुक्तः, परमार्थे सुष्टु इदानीं उद्युक्तः ।
नाप्यहं व्याहर्त्तव्यः अहमपि न विव्याहरिष्यामि ।)

आत्मकल्याण में संलग्न तथा परमार्थ में इस समय अच्छी तरह उद्यत मुझे न तो कोई अन्य कुछ कहे और न मैं ही किसी को कुछ कहूँगा ।७३५।

पारिय काउसग्गो, भत्तद्धितो व अहव सज्झाए' ।
नित्तो व आइंतो वा, एवं भे वायणं दाहं ।७३६।
(पारित कायोत्सर्गः, भक्तास्थितो वाथवा स्वाध्याये (शय्यायाम्) ।
गच्छन् वा आगच्छन् वा एवं भवतां वाचनां दास्यामि ।)

कायोत्सर्ग के पारण के पश्चात् भोजनार्थ बैठे हुआ, अथवा स्वाध्याय में निरत, कहीं जाता हुआ अथवा कहीं आता हुआ-- मैं वाचनाएं दूँगा ।७३६।

वाढं त्ति समणसंघो, अम्हे अणुमत्तिमो तुहं छंदं ।
देहि य धम्मो वाहं, तुम्हं छंदेण हिच्चामो ।७३७।
(वाढं ! इति श्रमणसंघः, वयमनुमन्यामहे तव छंदम् ।
देहि य धर्मे वाहं त्वां छन्देन जहिमः ।)

श्रमण संघ के प्रतिनिधि संघाटक ने कहा-- 'विल्कुल ठीक है, हम आपके इस छंद (शर्त) को स्वीकार करते हैं। आप धर्म को प्रवाह दीजिये अर्थात् वाचनाएं दीजिये। हम आपको सब प्रकार के छंद (शर्त) से मुक्त करते हैं।७३७।

जे भासी मेहावी, उन्नुला महण धारण समया ।
 नामं पंचसयाहं, विक्रमगताहूण गदियाहं ।७३८।
 (ये भागन् मेधाविनः उन्नुकाः, प्रहणधारणतमर्थाः ।
 मेधां पन्चउग्रानि, नैसक साधूनां गृहीतानि ।

श्री पूर्ववत् भाग की पहल एव धारण करने में समर्थ तथा
 पूर्वो का प्रत्याग करने के विने मानाधिक से ऐसे ५०० मेधावी
 शिवलीवासी अमर्षी को पूर्वी के भाग की प्राप्ति प्रहण करने के विने
 पुनः गया १७३८।

वेदावध्याया से एककेतकमुवद्विषया दो दो ।
 भिषयानि रूपविबदा, दिया न रति न विक्रमति ॥७३९॥
 ईयाहूणकगानेप। एकैकस्य उपग्यापिना द्वी द्वी ।
 धिमायाम प्रतिबदाः दिया न गये न शिभन्ते ।)

उस १०० अमर्षी से नि शायक की वेदाग्रण समर्पित सेवा के
 विने दो-दो अमर्षी को विदुक्त दिया गया । शिवायन प्रादि कर्षी
 के विदुक्त से ५०० शिवलीवासी साधु मात्र जोट दिन पूर्वी का भाग
 भी नहीं गये १७३९-

वे एव, संध साहू, वाचन परिदुम्भनाए परिभला ।
 वाहां भवईका, तया न अं किचि अनुमान्ता ॥७४०॥
 वे एवमर्षाः साधराः, वाचन परिदुम्भनाया परिभन्ताः ।
 वाहां भवममानाः, तया न परिभवित्र अनुमान्ताः ।)

एक कुटुम्बक एक ही रूप के शिवलीवासी साधु वाचन तथा
 परिदुम्भना समर्पित कर-कार की प्रस्ताव से इतमभ ही एक महूर-
 मर्षी प्रकृत भाग की समर्पित शिवदुक्त अमान्ता वाचन हीके की
 कर्षण के श्री साहू को न कर्षण वाले वाचन १०००००
 कर्षण नैराशी, शिव उ वाचन अमान्ता ।
 कर्षण नैराशी, कर्षण अमान्ता विभितारिया ॥७४१॥

(उद्युक्ताः मेधाविनः, अवशिष्टास्तु वाचनां अलभमानाः ।
अथ ते स्तोकाः स्तोकाः, सर्वे श्रमणाः विनिस्सुताः ।)

शिक्षा ग्रहण करने के लिये समुद्यत श्रेय मेधावी शिक्षार्थी साधु यथेप्सित वाचनाओं के न मिलने के कारण वहां से थोड़ी संख्या में निकलने लगे । इस प्रकार सभी शिक्षार्थी श्रमण नेपाल छोड़ कर निकल आये । ७४१।

एको नवरि न मुंचति, सकडाल कुलस्स जसकरो धीरो ।
नामेण थूलभदो, अविहिंसा-धम्मभदो त्ति । ७४२।
(एको नवरं न मुंचति, सकडाल कुलस्य यशकरः धीरो ।
नाम्ना स्थूलभद्र, अविहिंसा-धर्मभद्रः इति ।)

केवल एक--शकडाल कुल का यश बढ़ाने वाले धीर अहिंसा रूपी आत्म धर्म में जागरूक स्थूलभद्र नामक साधु श्रुतकेवली भद्रवाहु के सान्निध्य को नहीं छोड़ता है अर्थात् पूर्वगत की वाचनाएं ग्रहण करता रहता है । ७४२।

सो नवरि अपरितंतो, पयमद्धपयं च तत्थ सिक्खंतो ।
अन्तेइ भद्रवाहुं, स्थिरवाहुं अट्टवरिसाइं । ७४३।
स नवरं अपरित्रान्तः, पदमद्धपदं च तत्र शैक्ष्यन् ।
अन्ते एति [अन्तेवसति] भद्रवाहुं, स्थिरवाहुं अष्ट-वर्षाणि)

बिना किसी प्रकार की निराशा एवं संताप के वह बड़े धैर्य के साथ प्रतिदिन एक पद अथवा आधा पद सीखता हुआ दृढ़ वाहुओं वाले भद्रवाहु को सेवा में आठ (८) वर्षों तक रहता है । ७४३।

सुन्दर अट्टपयाइं, अट्टहिं वासेहिं अट्टमं पुच्चं ।
भिंदति अभिण्णहियतो, आमेल्ले उं अह पवत्तो । ७४४।
(सुन्दरार्थपदानि, अष्टभिर्वर्षैरष्टमं पूर्वम् ।
भिनत्ति अभिन्नहृदये, आमेलयितुमथप्रवृत्तः ।)

सुखमय एकाग्रचित्त ही पूर्वगत के सुखर मूलाय भवे एहम-
गमनीर अर्थ यथा एव आठ वर्षों में आठवें पूर्व का जन्माहुन करमा
हुमा यह हृदयगत करने में प्रयुक्त रहा । ७४४।

तस्य वि दारं तपसो, तपनिपमो एव मद्वाहुस्म ।
सो पारित तपनिपमो, वाहरितं जे भव तपसो । ७४५।
(तप्यापि श्दानी समाप्तः, तपनिपम एव मद्वाहोः ।
स पारित-तपनिपमः क्याहत्तुं यत् अथ प्रवृत्तः ।)०

उपर मय मद्वाह का भी तप-निपम समझ हुआ । तप-
निपम को पारित कर मद्वाह, अपने शिवाधी शिष्य सुखमय को
पूर्व की अपिहायिक वाक्यात् देखे में प्रयुक्त हुए । ७४५।
(७४५ की लक्ष्णा विरिक्त के छोड़ दी है।)

अह भगव मद्वाह, पदमं ता अहमस्मा वासस्य ।
अनगात् न ह किञ्चिन्नापि, भिरगं सन्नाय-जोगे य । ७४६।
(अथ भगवति मद्वाह, प्रथमं तावत् अहमस्य वर्षस्य ।
अनगात् । न सखु किञ्चिन्नापि, निगायां शशायाय-योगे य ।)

आचार्य मद्वाह आठवें वर्ष के प्रारम्भ में शिष्य में प्रवेश
हो-अनगात् । कुतः शिष्या एव शशायाय के योग में किन्ती अनगात्
का अर्थ तो नहीं हो रहा है ? ७४६

यो अहमस्य वासस्य, तेन पदमित्युपं समाप्स्यो ।
कौतु य परिर्त सीहं, अम्नावाए अरिर्जतो । ७४७।
(न अहमस्य वर्षस्य, तेन पदमित्युपं समाप्स्यः ।
कौतुयं य परिर्तं पदं, अम्नावाए अरिर्जतस्य ।)

आचार्य वर्ष के प्रारम्भ में मद्वाह द्वारा पूछे लक्ष्णा प्रत्येक के
अन्य में सुखमय के अर्थ-अनगात् ? मद्वाह का अहमस्य करती
शिवोपासी वचन शिवाधी शिष्य ।

समय मुझे किसी भी प्रकार का कष्ट कैसे हो सकता है, अर्थात् मुझे किसी प्रकार का कष्ट नहीं है । ७४८।

एकं तो भे पुच्छं, केचित्प्रमेत्तं मि सिक्खतो होज्जा ।

कत्तियमेत्तं च गयं, अट्टहिं वासेहिं ता किं लद्धं । ७४९।

(एकं तु भवन्तं पृच्छामि, कियन्मात्रं मया शिक्षितं भवेत् ।

कियन्मात्रं च गतं, अष्टभिर्वपैस्तावत् किं लब्धम् ।)

हाँ, मैं एक बात आपसे जानना चाहता हूँ कि मुझे कुल कितना सीखना था, उसमें से कितना मोख चुका हूँ---इन (विगत) आठ वर्षों में मैंने क्या (कितना) प्राप्त कर लिया है ? ७४९।

मंदर गिरिस्स पासंमि, सरिसव्वं निक्खिव्वैज्ज जो पुरिसो ।

सरिसव्व मेत्तं ति गयं, मंदरमेत्तं च ते सेसं । ७५०।

(मन्दरगिरेः पार्श्वे, सर्पणं निक्षिपेत यः पुरुषः ।

सर्पणमात्रं ते गतं, मंदरमितं च ते शेषम् ।)

गिरिराज मन्दराचल के पार्श्व में कोई पुरुष सरसों का एक दाना रख दे और फिर तुम्हारे द्वारा सीखे हुए ज्ञान और अब सीखने के लिये अवशिष्ट रहे ज्ञान की तुलना की जाय तो वस्तुतः मन्दराचल के पार्श्व में पड़े सरसों के एक दाने जितना ज्ञान तुमने सीखा है तथा मंदराचल जितना ज्ञान सीखने के लिये अवशिष्ट रहा है । ७५०।

सो भणइ एवं भणिए, भीतो व वि तावदहं समत्थोमि ।

अल्पं च मइं आउ, बहुसुय मन्दरो सेसो । ७५१।

(स भणति एवं भणिते, भीतो नापि तावदहं समर्थोऽस्मि ।

अल्पं च मम आवुः, बहुश्रुतमन्दरः शेषः ।)

भद्रबाहु के इस कथन को सुन कर श्रमण स्थूलभद्र ने भय विह्वल स्वर में कहा---“तो मैं तो इसे सीखने में समर्थ नहीं हूँ क्योंकि आयु तो मेरी थोड़ी है और श्रुत शास्त्र का इतना सुविपाल मन्दराचल तुल्य भाग सीखना शेष है” । ७५१।

मा मादि निष्ठविहिनि, कल्पतरुण वीर कालेन ।
 ननु नियमो समाप्तो, पुण्यादि दिवा य रत्नं च । ७५२ ॥
 (मा मैत्रिः निष्ठापयिष्यसि, कल्पतरुण वीर ! कालेन ।
 ननु नियमः समाप्तः, पुण्यं दिवा च तत्रिं च ।)

इस मंत्र को ध्याकरना करते हुए अत्रवाह ने कहा—'वीर !
 यही नहीं । तुम थोड़े से ही समय में इसे समाप्त कर लोगे । मेरा
 नियम समाप्त हो गया है । अतः अब तुम रात दिन पूजाएँ करने
 हुए वृत्तों का ध्यान करना' ॥७५२॥

गो विविस्वतं पयसो, दद्वत्सो मुष्टं दिष्टिवापमि ।
 पुनश्चतुर्वेदं तदित्यं, पुनश्चतुर्वेदं पुनर्निदिष्टं । ७५३ ॥
 (गो विविस्वतं पयसः, दद्वत्सः मुष्टं दिष्टिवादे ।
 पुनश्चतुर्वेदमित्यं, पुनश्चतुर्वेदं पुनर्निदिष्टम् ।)

इस में प्रोत्साहित ही दिष्टिवाद में तमोर्धोमठना गार देल कर
 मुनि इतुममर पूर्व शतोंदलन के यत्नाकरक पुनर्निदिष्ट पुनश्च
 को लीखने से और त्रिक प्रत्ययगीत हुए ॥७५३॥

इति एवकारमं पुनर्निदिष्टं वचनमो मेर ।
 अति तमो मासिर्गो, मुष्टुपना शंदा निदिष्टं ७५४ ॥
 (अति एवकारमं पुनर्निदिष्टं, अतिरदति वनननरपैर ।
 तन्नि कतः मासिर्गो, मुष्टुपननाः कन्दननिमियम् ।)

इस इतुममर पुनश्चतुर्वेदं कत से ईद कर एवकारमं वचन का पाठ पाठ
 करने लगे । अतः कतव्य वननो अतिर्गो पूर्व के वचन का ही पाठ करने
 लगे ॥७५४॥

ननु यो वचनानि, भूमा तद दशति भुपरिवाप ।
 मुष्टुपना देना, कतिर्गो पुनश्चतुर्वेदं ७५५ ॥

(नास्त्यत्र कोऽपि सिंहः, स चैव चैपः भ्रातृकः युष्माकम् ।
ऋद्धिपात्रो जातः, श्रुतस्य ऋद्धिं प्रदर्शयति ।)

भद्रबाहु ने कहा--- 'यहां कोई सिंह नहीं है, वह तुम्हारा भाई ही है । वह ऋद्धियों का पात्र अर्थात् ऋद्धि घर बन गया है और श्रुत-ऋद्धि का प्रदर्शन कर रहा है । ७६२।

तं वयणं सोऽणं, तातो अंचियतगुरुहसरीरा ।
संपत्तिया उ तत्तो, जत्तो सो थूलभदरिसी । ७६३।
(तद् वचनं श्रुत्वा, तास्तु अंचिततनुसुहशरीराः ।
सम्प्राप्तास्ततः यत्र स स्थूलभद्र ऋषिः ।)

भद्रबाहु के वचन सुनते ही हर्षवशात् रोमांचित हुई वे सातों साधवियां उस स्थान पर पहुँची जहाँ स्थूलभद्र ऋषि थे । ७६३।

जह सागरोव्व उव्वल मतिगतो पडिगतो सयं ठाणं ।
स पलियं क निसन्नो, धम्मज्ञाणं पुणो झाइ ७६४।
(यथा सागरो वा उद्वेल मतिगतः प्रतिगतः स्वकं स्थानम् ।
स पर्यकनिषण्णः, धर्मध्यानं पुनः ध्याति ।)

उद्वेलित समुद्र जिस प्रकार उद्वेलन के पश्चात् पुनः अपने स्थान पर चला जाता है ठीक उसी प्रकार स्थूलभद्र भी सिंह के रूप से पुनः निज स्वरूप में आकर पर्यकासन से बैठ कर पुनः धर्म ध्यान में संलग्न हुए । ७६४।

दुपुड्डमहुकंठं, सो परियड्डेइ ताव पाठमयं ।
भणियं च ताहिं भाउम, सीहं दट्टूण ते भीया । ७६५।
(द्रुत पुष्ट मधुरकण्ठेन स परावर्तयति तावत्पाठमयम् ।
भणितं च तामिभ्रात्रक ! सिंहं दृष्ट्वा तव भीताः)

वे मधुर स्वर में द्रुत गति से अपने पाठ का परावर्तन करने लगे । बहिनों ने कहा--- 'भय्या ! हम तो आपके सिंह को देख कर डर गई थीं । ७६५।

श्री वि य वागहर्तुं, दक्षिण्य मियकमल सपहं हतिउं ।
 मण्ड्य गारवयाण, सुय इह्ठी शरिनीया य मय ॥७६६॥
 (श्रीऽपि न प्रकटदन्तं, द्रव्य विवकमल सप्रमं हमित्या ।
 मणानि न गारवया, धु तद्धिः दर्मिता न मया ।)

इसूलमड में हल कर इकेत कयल के लगान प्रभा वाले धयने
 दागों की दिगातों हुए गर्ह के लाग रहा -- यह तो निने प्रुत कालि
 परहित की को ॥७६६॥

श्री वतर्ण सोऊर्ण, तात्रो अंधिय तणूकहमरीरा ।
 दुम्बंति वंजलिय उहा, वागणत्ये सुनिऊणत्ये ॥७६७॥
 (मदयनं भूत्या तास्तु अंधियतनुऊहमरीरा ।
 दुम्बन्ति प्राञ्जलिक पुटाः स्पाकरणाथानं सुनिपूणार्थानि ।)

यपके भाई के वधनों को सुन कर इतिहासिक से उनके शरीर
 के मोनटे लहे ही गए । तदनुगत में गातों काचिया हाय जोह कर
 इसूलमड में स्पाकरण (मय्य स्पाकरण सुन) के पनि सुन्दर पुजाये
 पूजने लगी ॥७६७॥

इयरोरिय मणिनीमो, विनजिउलण सुलेमर रिनी ।
 उविपंनि देसकरले, मन्दापसुवट्टिमो काउं ॥७६८॥
 (श्रीऽपि न मणिमयः, विनजंयिता सुवट्टमर कापिः ।
 उविपं देसकरले, मन्दापसुवट्टिमयः वतु म् ।)

तदनुगत इयुलमड काचि कयली कहिली को विरा कर अनुचित
 गदय पर काचला इहात कयले काउहू की सेवा में काचित
 हुए ॥७६८॥

मड मय्य मारवाहू, अणमार अणदि लधिर्षं तुम्बं ।
 दविहूँको अण्णायु, सुविचनेर्ण विपारं मे ॥७६९॥
 (मड मणानि मारवाहू, अणमार । अर्ण वि इयु सुम्बम् ।
 दविहूँवम् मय्य, इयु मय्य अण्णं को ।)

स्थूलभद्र को वाचना लेने हेतु उपस्थित देख भद्रवाहु ने कहा-
“अणगार ! तुम्हारे लिये इतना पूर्वज्ञान ही पर्याप्त है । अब इन्हीं
का परावर्तन करते हुए श्रीर स्पष्टतः इन्हें हृदयंगम करते
रहो” ॥७६६॥

अह भणइ थूलभदो, पच्छायावेण ताविय सरीरो ।

इड्ढीगारवयाए, सुयविसयं जेण अवरद्धं ॥७७०॥

(अथ भणति स्थूलभद्रः, पश्चात्तापेन तापित शरीरः ।

ऋद्धिगारवतया, श्रुतविषयं येन अपराद्धं ।)

ऋद्धि के गर्व के वशीभूत हो जिन्होंने श्रुत विषयक अपराध
किया था, उन स्थूल भद्र का शरीर (तन-मन) पश्चात्ताप की अग्नि
में जलने लगा । उन्होंने भद्रवाहु की सेवा में निवेदन किया--॥७७०॥

न वि ताव मज्झ मणुं, जह मे ण समाणियाइं पुच्चाइं ।

अप्पा हु मए अवराहितो त्ति, पलियं खु मे मणुं ॥७७१॥

(नापि तावत् मद्धं मन्युः, यथा मया न समानितानि पूर्वाणि ।

आत्मा खलु मया अपराद्ध इति, पलितं खलु मे मन्युः ।)

मुझे इस बात का उतना दुःख नहीं है कि मैंने सम्पूर्ण पूर्वा
का ज्ञान प्राप्त नहीं कि किन्तु मुझे इस बात का घोर दुःख है कि मैंने
अपनी आत्मा के साथ अपराध किया है ॥७७१॥

एतेहिं नासियव्वं, मए विणा वि जह सासणे भणियं ।

जं पुण मे अवरद्धं, एयं पुण डहति सव्वंगं ॥७७२॥

(एतैः नाशितव्यं, मया विनापि, यथा शासने भणितम् ।

यत् पुनः मया अपराद्धं एतत् पुनर्दहति सर्वाङ्गम् ।)

जैसा कि जिनशासन में कहा गया है, मेरे विना भी इनका
नाश अवश्यभावी है । पर जो मैंने अपराध किया है, वह मेरे अंग
प्रत्यंग को जला रहा है ॥७७२॥

वोच्छंति य मयहरगा, अणागया जे य संपतिकाले ।

गारविय थूलभदम्मि, नाम नट्टाइं पुच्चाइं ॥७७३॥

(वस्यन्ति च महाराजा, अनागताः ये न सम्प्रति काले :
गारुडिक स्पृशमहे, नाम नम्यानि पूर्वाणि ।)

महाराज काग और वर्तमान काल के महाराज (याचार्य आदि)
यही कहेंगे, वहीं स्पृशमहे में (आर) पूर्व स्पृश हूय । १०३३।
अथ विष्णुविति साह, तमज्जया करिव भंडलि सीये ।
मदस्य ता पर्यायद, दमस्य एस्कायराहस्य । ७७४।

(अथ विष्णुवन्ति साधवः, स्वगज्जयाः कृत्वा भंडलि सीये ।
मदस्य तापत् प्रसीद, अम्य एषज्जयाधस्य ।)

अथ गंध के साथ गजजयि सीस मुका कर महाराज के
गर्भना करती है— 'स्पृशमहे के एक साथ इस अथगम को धामा कर
ज पर धाय उगम ही १०३४।

शोण व दोषेण च, लै च परमाणु विधि अयदह ।
यं मे त उच्यगुण, अदुनकार्य मनापेति । ७७५।

(शोण वा दोषेण वा, यदस्य प्रमादेन विधिदयगदम् ।
अथ भवयां त उच्यगुण, अदुनःकार्यं तानापयति ।)

राजका, शोणवत अथवा प्रमादकम ही अदुनकार्य के भी थी
अथगम विधि है अथगम के अथगुण के उग अथगम ही— अथ
व भी इस प्रकार का अथगम नहीं करेगा— इस विधि के अथ अथग
साधना है । १०३५।

अथ सुकरीक्य उच्यगुणस्युना अदुनकार्युना अमिधं ।
ता अथदर निन्देर्, अथगमेर् निन्देर् । ७७६।

अथ सुकरी-अथगुण-अदुना अदुनकार्युना अमिधम् ।
ता अथदर निन्देर्, अथगमेर् निन्देर् ।)

अथ गंध के साथ ही, अथगम ही अथगम की अथ
अथगम ही अथगम ही अथगम ही अथगम ही अथगम ही अथगम ही
अथगम ही अथगम ही अथगम ही अथगम ही अथगम ही अथगम ही
अथगम ही अथगम ही अथगम ही अथगम ही अथगम ही अथगम ही

रायकुल सरिसभूते, सगडाल कुळम्पि एस संभूतो ।
 गेह गभो चैव पुणो, निष्हातो सव्व सत्थेसु ।७७७।
 (राजकुल सदृश भूते, शकटालकुले एषः सम्भूतः ।
 गेह गतश्चैव पुनः, निष्णातः सर्वशास्त्रेषु ।)

राजकुल के समान महान् शकडाल कुल में इसका (स्थूलभद्र का) जन्म हुआ है । गृहस्थावस्था में ही यह सब शास्त्रों में निष्णात हो गया था ।७७७।

कोसा नामं गणिया, समिद्धकोसा य विउल कोसा य ।
 जीए घरे उवइट्ठो, (उवरिट्ठो) रति संविसेसम्मि वेसम्मि ।७७८।
 (कोशा नामा गणिका, समृद्धकोशा च विपुलकोशा च ।
 यस्या गृहे उपदिष्टः [उपरिष्ठः] रति-सविशेषे वेश्मनि ।)

यह अति समृद्ध एवं विपुल कोश की स्वामिनी कोशा नामक गणिका के---रति के प्रासाद से भी विशिष्ट भवन में यह रहा है ७७८।

वारस वासाइं उत्थो [उसिबो] कोसए घरम्मि सरिघर समम्मि ।
 सोऊण य पिउ मरणं, रण्णो वयणं नि गिज्झीय ।७७९।
 (द्वादशवर्षान् च उक्षितः, कोशायाः गृहे श्रीगृह-समे ।
 श्रुत्वा च पितुः मरणं, राज्ञः वचनं च निगृह्य ।)

लक्ष्मी के प्रासाद के समान कोशा के घर में यह बारह वर्षों तक रहा । पिता के मरण की बात सुन कर तथा नंदराज के बुलाने के आदेश को प्राप्त कर—।७७९।

तिगिच्छि सरिस वण्णं [?] कोसं आपुच्छए तयं धणियं ।
 खिप्पं खु एह सामिय, अहयं न हु चाय-ए सहं ।७८०।
 तडित् [?] सदृशवर्णा, कोशामापृच्छति तदा त्वरितम् ।
 क्षिप्रं खलु एहि स्वामिन्. अहं न खलु शक्नोमि सोढुम् ।)

(क्लेशान् परिचिन्तयन् राजकुलाच्च ये परिक्लेशाः ।

नरकेषु च ये क्लेशाः, तावत् लुञ्चति आत्मनः केशान्)

संसार के अनेक प्रकार के असह्य कष्टों राजकुल से प्राप्त होने वाले विविध क्लेशों और नारकीय भीषण क्लेशों का चिन्तन करते-करते स्थूलभद्र ने अपने केशों का स्वयं ही लुञ्चन कर लिया । ७६१।

तं विय परिहिय वत्थं छेत्तू णं कुणइ अगगतो आरं ।

कम्बलरयणो गुंठि काउं, रण्णो ठियं पुरतो । ७९२।

(तमपि च परिहितवस्त्रं, छित्वा करोति अग्रहारम् ।

कम्बलरत्ने ग्रन्थि कृत्वा, राज्ञः स्थितः पुरतः)

अपने पहने हुए वस्त्र को उतार तथा फाड़ कर उसका अग्रहार (कटि प्रदेश पर रखने का वस्त्र खण्ड) बना लिया । रत्न कम्बल में गांठें लगा (उसका ओघा बना) स्थूलभद्र (साधुवेष) में राजा नन्द के सम्मुख आ खड़ा हुआ । ७६२।

एयं मे सामत्थं, भणइ अवणेहि मत्थतो गुट्ठिं ।

तो णं केसविहूणं, केसेहिं विणा पलोएति । ७९३।

एतत् मे सामर्थ्यम्, भणति अपनय मस्तकात् ग्रन्थिम् ।

ततः ननु केशविहीनं, क्लेशैर्विना प्रलोकयति ।)

राजा नन्द को सम्बोधित कर स्थूलभद्र ने कहा— "मेरा यह सामर्थ्य है । मेरे सिर के भार को दूर कीजिये ।" केश-विहीन (मुण्डित) स्थूलभद्र को सब प्रकार के क्लेशों से रहित अर्थात् प्रसन्न देख कर राजा नन्द विस्मित हो उनकी ओर देखता ही रह गया । ७६३।

अह भणइ नंद राया, लाभेति धीर नत्थि रोहियणं [रोहणयं] ।

वाढं त्ति भणिऊणं, अह सो संपत्थितो तत्तो ७९४।

(अथ भणति नन्दराजा, 'लाम' इति धीर नास्ति रोधनकम् ।

वाढम् ! इति भणित्वा, अथ स संप्रस्थितस्ततः ।)

मन्दराज ने कहा - 'धीर । हावशी क्षयने समीपित्त वा मास
हो । अब आप के मांस में कोई चक्कोप नहीं है ।' मन्दराज ने खुलकर
'शाहम' - कह कर राजभवन में प्रस्थान कर गया । ७६४।

(यह गाथा साहोदर मन्दराज महेश्वरपुरि उष्य जगद्वार' के
उत्तर प्राचीन प्रति में उल्लिखित नहीं है ।)

१ अण्ड नंदराजा, कल्पद् गणियाहं जद कहंति ।
... में अण्डनवादी, तीसरे पुरतो विवाणमि ७९४।

(अण्ड भणवि नन्दराजा, प्रहति गणिका गृहं यदि कथंकिव ।
महः में अण्डनवादी मण्याः पुणः ज्ञापादणामि)

अण्डन के पक्ष में जाने के पश्चात् अण्ड मण्ड मण्ड ने
कहा-- यदि यह कदाचि-गति का के पक्ष की ओर जाता है तो मैं
इस अण्डनवादी को तब गणिका के नाम से ही मार दूंगा । ७९४।

मौ कृतपास्त मिद्धि गणिवपार मनिर्वं प माविद्धि ।
कल्प दणोण्डे, जालिगगा अण्डनकतो । ७९६।

(मौ कृतपास्त मिद्धि, गणिवपार मनिर्वं प मण्डिम्
मनेन प्राचीन प्रति नगान् मणपंठः ।)

अण्डनवादी मणिकी कृतपास्तपास्त मिद्धि और कीका गणिव
के पक्ष में गणिक अण्डि की ओर से दृष्टा का निगूह-निर्देश का
के अण्डन के पक्ष में जाता है । ७९६।

मौ सर्व कण्डो, सर्व मण्डप अण्डनकतो ।
मण्डनकतो दिवो, मण्डनकतो मण्डोरेणो । ७९७।

(मौ सर्व कण्डि, सर्व मण्डनकतो मण्डोरेणो ।
मण्डनकतो दिवः, मण्डनकतो मण्डोरेणः ।)

मौ सर्व कण्डो, मण्डनकतो मण्डोरेणो ।
मण्डनकतो दिवः, मण्डनकतो मण्डोरेणः ।
मण्डनकतो मण्डोरेणः, मण्डनकतो मण्डोरेणः ।
मण्डनकतो मण्डोरेणः, मण्डनकतो मण्डोरेणः ।

में नष्ट हो गये । क्यों कि ये दोनों तप केवल चतुर्दश पूर्वधर ही कर सकते हैं । शेष तप चतुर्विध तीर्थ की विद्यमानता तक विद्यमान रहेंगे । ८०४।

तं एवमंगवंसो य, नन्दवंसो मरुयवंसो य ।

सवगहेण पण्ड्या, समयं सज्झायवंसेण । ८०५।

(तद् एवं अंगवंशश्च, नन्दवंशः मरुतवंशश्च ।

स्वापराधेन प्रणष्टाः, समं स्वाध्यायवंशेन)

तो इस प्रकार सज्जाय वंश के साथ-साथ अंग वंश, नन्द वंश और मरुत (मीर्य ?) वंश अपने अपराध में नष्ट हुए । ८०५।

पठमो दस पुव्वीणं, सयडालकुलस्स जसकरो धीरो ।

नामेण थूलभदो, अविहिंसाधम्म-भदो त्ति । ८०६।

(प्रथमः दश पूर्वाणां, शकटालकुलस्य यशस्करः धीरः ।

नाम्ना स्थूलभद्रः, अविहिंसा धर्मभद्र इति ।)

दशपूर्वधारियों में प्रथम शकटार कुल का यशोवर्द्धक स्वधर्म-भद्र धैर्यशाली स्थूलभद्र होगा । ८०६।

नामेण सच्चमित्तो, समणो समणगुण निउण चिवतीउ ।

हो ही अपच्छिमो किर, दस पुव्वी धारओ वीरो । ८०७।

(नाम्ना सत्यमित्रः, श्रमणः श्रमणगुणानिपुणचिन्तकस्तु ।

भविष्यति अपरिचमः किल, दशपूर्वी धारकः वीरः ।)

श्रमणगुणों में निपुण और श्रमणगुणों का चिन्तक सत्य-मित्र नामक वीर श्रमण अन्तिम दश पूर्वधर होगा । ८०७।

एयस्स पुव्वसु प्रसायरस्स, उदहिंस्व अपरिमेयस्स ।

सुणसु जह अथकाले, परिहाणी दीसते पच्छा । ८०८।

(एतस्य पूर्वश्रुतसागरस्य, उदधिरिव अपरिमेयस्य ।

श्रुणुस्व यथा अथकाले, परिहानिः दृश्यते पश्चात् ।)

वीर निर्वाण सं० उन्नीस सां (१६००) में भारद्वाज गोत्रीय महाश्रमण नाम से विख्यात श्रमण के निघन पर सूत्रकृताङ्ग का विच्छेद (ह्रास) होगा । ८१६।

वरिस सहस्सेहि इहं दोहि, विसाहे मुणिम्मि वोच्छेदो ।

वीर जिण धम्मत्तिथे, दोहि तिन्नि सहस्स निदिद्धो । ८२०।

वर्ष सहस्रैरिह द्वाभिः विशाखे मुनौ व्यवच्छेदः ।

वीरजिन धर्मतीर्थे, द्वि त्रि सहस्रै निर्दिष्टः ।)

वीर निर्वाण सं० दो हजार (२०००) में तथा वीर निर्वाण पश्चात् दो हजार से तीन हजार वर्षों के बीच भी भगवान् महावीर के धर्म तीर्थ में कतिपय सूत्रों के व्यवच्छेद (ह्रास) का निर्देश किया गया है । ८२०।

विष्णु मुणिम्मि मरंते, हारित गोत्तम्मि होति वीसाए ।

वरिसाण सहस्सेहिं, आयारंगस्म वोच्छेदो । ८२१।

(विष्णु मुनौ मृते. हारित गोत्रे भवति विंशतिभिः ।

वर्षाणां सहस्रैः, आचाराङ्गस्य विच्छेदः ।)

वीर निर्वाण सं० २०,००० (बीस हजार) में हारित गोत्रीय विष्णु नामक मुनि का निघन होते ही आचारांग का व्यवच्छेद (ह्रास) हो जायगा । ८२१।

अह दुसमाए सेसे, होही नासेण दुप्पसह समणो ।

अणगारो गुणगारो, खमागारो तपागारो । ८२२।

(अथ दुःपमायां शेषे. भविष्यति नाम्ना दुःप्रसहः श्रमणः ।

अनगारः गुणागारः, क्षमागार तपागारः)

तदनन्तर दुपमा नामक पंचम आरक का थोड़ा सा समय अवशिष्ट रहने पर क्षमा, तप तथा गुणों के भण्डार दुःप्रसह नामक अणगार होंगे । ८२२।

१ अस्यां गाथायां विच्छिन्नमानस्य न कस्यचिदप्यंगस्य नामोल्लेखः कृतः ।
अतोऽनुमीयते यत् समुच्चयरूपेण व त्रिपयाङ्गानां ह्रासस्यैवात्रोल्लेखः
कृतोऽस्ति ।

आठ वर्ष की अवस्था में वह दुःप्रसह, आचार्य नाइल से देव-
लोकों के सुखों के सम्बन्ध में सुन कर, उन पर चिन्तन करता हुआ
आचार्य नाइल के पास श्रमण धर्म में प्रव्रजित हो जायगा । ८३३।

सो पञ्चइतो संतो, महया जोगेण सुंदरुज्जोगो ।

कम्मक्खतोवसमियं, सिक्खिही सुतं दसवेतालं ८३४।

(स प्रव्रजितः सन् महता योगेन सुन्दरोद्योगः ।

कर्मक्षयोपशमिकं, शिक्षिष्यति सूत्रं [श्रुतं] दशवैकालिकम् ।)

श्रमण धर्म में दीक्षित होने के पश्चात् श्रमण दुःप्रसह वही
तन्मयता के साथ अर्हनिश परिश्रम कर ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोप-
शम के फलस्वरूप दशवैकालिक सूत्र का अध्ययन करेगा उसे
कण्ठस्थ करेगा । ८३४।

दसवेतालियधारी, पुज्जिही जणेण जहव दसपुञ्ची ।

सो पुण सुट्ठतरागं, पुज्जिही समण संघेणं ८३५।

(दशवैकालिकधारीः पूजयिष्यते जनेन यथैव दशपूर्वी ।

स पुनः सुट्ठतया, पूजयिष्यते श्रमणसंघेन ।)

उस समय दशवैकालिक सूत्र को कण्ठस्थ करने वाला श्रमण
लोगों द्वारा दश-पूर्वधर के समान पूजित—सम्मानित होगा । श्रमण-
संघ भी दश वैकालिकधारी मुनि का भलीभांति पूजा—सम्मान
करेगा । ८३५।

अउणा वीससहस्सो, सामाणिओ होहिति सक्कयालोए ।

दुस्सह दूसमकाले, खीणे अण्पावसेसजुगे । ८३६।

(अऊन [अन्यून] विंशतिसहस्रः, सामानिकः भविष्यति शक्रस्य लोके ।

दुस्सहे दुःपमाकाले, क्षीणे अण्पावशेष युगे ।)

दुःसह्य कण्ठ पूर्ण दुःपम नामक पांचवें आरक की समाप्ति में
जब कुछ ही घड़ियां शेष रह जायेंगी, उस समय दुःप्रसह आचार्य
शक्रलोक अर्थात् सौधर्म कल्प नामक प्रथम देवलोक में अन्यून बीस
हजार देव परिवार वाले सामानिक देव के रूप में उत्पन्न
होगा । ८३६।

(दुःप्रसभोऽणगारः, नाम्ना अपश्चिमः प्रवचनस्य ।
फल्गुश्रीः श्रमणीनां, सापि च श्रमणी अपश्चिमा ।)

प्रवचन अर्थात् जिन शासन का अन्तिम अणगार दुःप्रसभ नामक श्रमण और जिन शासन की अन्तिम श्रमणी फल्गुश्री नाम की श्रमणी होगी । ८४०।

विग्रहवती वियदया, कमल विहूणा सिरिच्च पच्चक्खा ।
होहीति तथा समणी, फल्गुसिरी नाम नामेण ८४१।
(विग्रहवती अपि च दया, कमलविहीना श्रीव प्रत्यक्षा ।
भविष्यति तदा श्रमणी. फल्गुश्री नाम नाम्ना ।)

उस समय (दुःषम नामक आरक के अन्त में), माक्षात् सदेहा दया और प्रत्यक्ष कमल विहीना लक्ष्मी तुल्या वह फल्गुश्री नाम की श्रमणी होगी । ८४१।

तस्मिं य नगरे सेट्ठी, होही नामेण नाइलो नाम ।
सो सव्वसावगाणं, होही तइया अपच्छिमिओ । ८४२।
(तस्मिन् च नगरे श्रेष्ठीः, भविष्यति नाम्ना नाइलो नाम ।
स सर्वं श्रावकाणां, भविष्यति तदा अपश्चिमकः ।)

उसो नगर में नाइल नामक एक श्रेष्ठी होगा जो भगवान् महावीर के शासन के श्रावकों में सब से अन्तिम श्रावक होगा । ८४२।

सेट्ठी य नाइलो नाम, गिहवई सावगाणंपच्छिमो ।
सव्वसिरी सावियाणं, सा विय तथा अपच्छिमिया । ८४३।
(श्रेष्ठी च नाइलः नामा; गृहपतिः श्रावकाणां अपश्चिमः ।
सर्वश्री श्राविकानां, सापि च तदा अपश्चिमका ।)

१ सशरीरा दया-इत्यर्थः ।

“विग्रहवती वावहूया” (विग्रहवती वावहूका)---इति पाठे सति सशरीरा सरस्वतीत्वर्थः ।

राज्यों के प्रथम यादक साधारण क्षेत्री नाइल और
राज्यपालों के प्रथम व्यक्ति संघों होगी (1972)

अभिमत हीराहीरा, या या फिर साविया अर्थात्प्रमिया ।

परमैमि निरिखलमनी, मरुमिरी नाम नामेणं (1982)

अभिमत हीरा-अहीरा, या या फिर आरिखा अर्थात्प्रमिया ।

परे निरिखलमनी, मरुमिरी नाम नामेणं ।)

उस समय में चतुर्थ भक्त (उवास) और पष्ठ भक्त (वेला) ये उत्कृष्ट तप होंगे । आचार्य दुःप्रसह अष्टम भक्त (तेला) का तप करेंगे । ८४७।

सो दाहिण लोगवती, इंदो धम्माणुराग रत्तो य ।

आगंतूणं तइया, पुणो पुणो वंदते संघं । ८४८।

(स दक्षिणलोकपतिः, इन्द्रः धर्मानुरागरतश्च ।

आगत्वा तदा, पुनःपुनः वन्दते संघं)

दक्षिण लोक का स्वामी सौधर्मेन्द्र धर्मानुराग में अनुरक्त हो वहाँ आकर वारम्बार संघ को वन्दन करता है---। ८४८।

गुणभवन गहन सुयरयणभरिय, दंसणविसुद्धरच्छागा ।

संघ नगर ! भद्रं ते, अखंडं चारित्तपागारा । ८४९।

(गुणभवनगहन ! श्रुतरत्नभृत ! दर्शन विशुद्ध रथ्याकः ! ।

संघनगर ! भद्रं ते, अखंड चारित्र प्राकार !)

पिण्ड विशुद्धि आदि अमित उत्तरगुणरूपी भवनों की विद्यमानता के कारण अति गहन ! आचाराङ्गादि अनेक सुखदाई श्रुतरत्नों से परिपूर्ण ! मिथ्यात्वादि कूड़ेककट से रहित विशुद्ध दर्शन रूपी रथ्याओं वाले ! और अखण्ड चारित्र के प्राकार (परकोटे) से सदा सुरक्षित ! ओ संघ-नगर ! तुम्हारा कल्याण हो । ८४९।

भद्रं सील पढागूसियस्स, तव नियम-तुरय जुत्तस्स ।

संघरहस्स भगवतो, सज्झाय सुनंदि घोसस्स ।

(भद्रं शीलौच्छ्रित पताकस्य, तपोनियम तुरगयुक्तस्य ।

संघ-रथस्य भगवतः, स्वाध्याय सुनन्दि घोषस्य ।)

शील रूपी उत्तुंग पताका वाले, तप और संयम रूपी आशुगामी अश्वों से युक्त अर्थात् जुते हुए और स्वाध्याय के सुमधुर स्वर रूपी सुन्दर नन्दी घोष वाले हे भगवत्स्वरूप संघ-रथ ! तुम्हारा कल्याण हो । ८५०।

संस्कृतस्य तु 'संस्कृतस्य, नमो' मन्त्रस्य-वर्णितस्यम् ।

अथर्ववेदस्य नामो, तौत्तमस्य संस्कृतस्यम् । १००१ ।

(संस्कृतस्य अथर्ववेदस्य, नमो, मन्त्रस्य-वर्णितस्यम् ।)

अथर्ववेदस्य नामो, मन्त्रस्य संस्कृतस्यम् ।)

अथर्व वेदस्य संस्कृतस्य नामो, मन्त्रस्य-वर्णितस्यम् । (अथर्व वेदस्य संस्कृतस्य नामो, मन्त्रस्य-वर्णितस्यम्) अथर्व वेदस्य संस्कृतस्य नामो, मन्त्रस्य-वर्णितस्यम् । अथर्व वेदस्य संस्कृतस्य नामो, मन्त्रस्य-वर्णितस्यम् । अथर्व वेदस्य संस्कृतस्य नामो, मन्त्रस्य-वर्णितस्यम् ।

(नवस्त्रापि वर्षेष्वेवं, इन्द्रः स्तुत्वा श्रमण संघं तु ।
ईशानोऽपि तथैव च, क्षणेन अमरालयं प्राप्तः ।)

शेष ६ क्षेत्रों में भी सौधर्मेन्द्र तथा ईशानेन्द्र इसी प्रकार श्रमण संघ की स्तुति कर अपने-अपने सुरलोक को लौट गये । ८५४।

दशवेतालिय अत्थस्स, धारतो संजउ तवाउत्तो ।

समणेहिं विप्पहीणो, विहरिही एककगो धीरो । ८५५।

(दशवैकालिक अर्थस्य, धारकः संयतः तपायुक्तः ।

श्रमणैर्विप्रहीणः, विहरिष्यति-एकको धीरः ।)

दश-वैकालिक सूत्र के अर्थ को धारण करने वाला संयम और तप में उद्यत वह धीर दुःप्रसह आचार्य श्रमणों से विहीन एकाकी ही विचरण करेगा । ८५५।

अट्ठेव य गिहवासो, वारसवरिसाइं तस्स परियातो ।

एवं वीसति वासा, दुप्पसहो होहिंही वीरो । ८५६।

(अष्टावेव च गृहवासः, द्वादशवर्षाणि तस्य [श्रमण] पर्यायः ।

एवं विंशतिवर्ष्यः, दुःप्रसभः भविष्यति वीरः ।)

दुःप्रसह आचार्य आठ वर्ष तक गृहवास में और १२ वर्ष तक श्रमण पर्याय में रहेगा । इस प्रकार वह २० वर्ष को आयु वाला होगा । ८५६।

छज्जीवकाय हियतो, सो समणो संजमे तवाउत्तो ।

भत्तो पच्चक्खाते, गच्छिही अमरालयं वीरो । ८५७।

(पट्टजीवकाय हितकः स श्रमणः संयमे तपसि आयुक्तः ।

भक्त प्रत्याख्याते, गमिष्यति अमरालयं वीरः ।)

पट्टजीव निकाय का हितैषी वह वीर आचार्य दुःप्रसह संयम तथा तप में निरत रहता हुआ अन्त में अनशन कर सुरलोक को प्रयाण करेगा । ८५७।

अष्टमिभिर्वागो, वागमयन्तिहं होमं परिपाठ ।
 फलं कर्तुं न तदा, अष्टमं भवेण दुःस्वप्नहो ॥८४८॥
 (अष्टमं भूतसामः उच्यते तदापि भवति [संयम] पर्यायः ।
 फलं कर्तुं न तदा, अष्टमं भवेण दुःस्वप्नहो ॥)

धमतीर्थ के अन्तिम सदस्य होंगे । दुःपम आरक के अस्तंगत होते ही चतुर्विध तीर्थ का भी अस्तमन हो जायेगा । ८७४।

तेसु य काल गतेसु, तद्विसं चैव होही अधम्मो ।

इय दूसमाए काले, वच्चंते पाव भूइहे । ८७५।

(तेषु च काल गतेषु, तद्विसे चैव भविष्यति अधर्मः ।

अस्या दुष्पमायाः काले, व्यतीते पापभूयिष्ठो ।)

इसपाप प्रधान अथवा पापाधिक दुःपम नामक पंचम आरक के जाते (समाप्त होते) समय साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका-उन चारों के दिवंगत होते ही, उसी दिन से भरत क्षेत्र में अधर्म का आधिपत्य हो जायेगा । ८७५।

सामाइय समणाणं, महानुभावाण चेइयायारो ।

सव्वाय गंधजुत्ती दोसुवि, सज्जाएसु [दससुवि खेतोसु] नासिहिति

। ८७६।

(सामायिकं श्रमणानां, महानुभावानां चैत्याचारः ।

सर्वा च गंधयुक्तिः दशस्वपि क्षेत्रेषु नश्ययिष्यति ।)

श्रमणों की सामायिक, महानुभावों (श्रद्धालुओं) क चैत्याचार, और सब प्रकार की गन्ध युक्ति दशों ही क्षेत्रों में नष्ट हो जायेगी । ८७६।

चंक्रमिउं वरतरयं नरतिरियं, तिमिसगुहाए तमंधयाराए ।

न य तइया मणुयाणं, जिणवरतित्थे पणडम्मि । ८७७। [युग्मम्]

(चंक्रमितु नरतिर्यं चं तमिलगुहायां तमोऽन्धकारायाम् ।

न च तदा मनुष्याणां, जिनवर तीर्थे प्रणष्टे ।)

मानव और तिर्यंच अन्धकार पूर्ण तमिल गुफा में रहने लगेंगे उस समय जिनेन्द्र भगवान् के तीर्थ का व्युच्छेद हो जाने के कारण मनुष्यों में उपयुक्त लिखित सामायिक आदि धर्माचार नहीं होंगे । ८७७।

१ तेषु—दुःप्रसहाद्विपुत्रनुषु—इत्यर्थः ।

२ सामायिकादि इति शेषः ।

तीर्थकर काल में भारत वर्ष ऋद्धि से भरपूर—समृद्ध, अनेक
अतिशयों से सम्पन्न, देवलोक के समान और गुणों से भरा पूरा
था । ५८१।

गामानगरवभूया, नगराणि य देवलोय सरिसाणि ।
रायसमा य कुटुंबी, वेसमण समा य रायाणो । ८८२।

(ग्रामाः नगरभूताः, नगराणि च देवलोकसदृशानि ।

राजसमाश्च कुटुम्बिनः, वैश्रवणसमाश्च राजानः ।)

उस समय भारत के ग्राम नगरों के तुल्य, नगर देवलोक के
समान, गृहस्थ राजा के समान और राजागण वैश्रवण के समान
सर्वतः सम्पन्न थे । ५८२।

चंद समा आयरिया, अम्मापियरो य देवत समाणा ।
मायसमाविय साहू, ससुराविय पितिसमा आभी । ८८३।

(चन्द्रसमा आचार्या, अम्मापितरौ च देवतसमानाः ।

मातासमापि च श्वश्रूः, श्वशुरा अपि च पितृसमा आसन् ।)

आचार्य गण चन्द्रमा के समान सौम्य-शीतल एवं ज्ञान क
प्रकाश करने वाले, माता-पिता देव-दम्पती तुल्य, सासैं माताओं के
समान और श्वसुर पिता के समान थे । ५८३।

धम्मा धम्मविहिन्नु, विणयण्णू सव्वसोय संपण्णो ।

गुरुसाहूप्यणरतो, सदारनिरतो जणो तइया । ८८४।

(धर्माधर्मविधिज्ञः, विनयज्ञः सत्यशौचसंपन्नः ।

गुरुसाधुपूजनरतः, स्वदारनिरतः जनस्तदा ।)

उस समय के मनुष्य धर्म तथा अधर्म की विधि के ज्ञाता,
विनोत, सत्य-शौच सम्पन्न, गुरु एवं साधु की पूजा सत्कार में सदा
तत्पर और स्वदार-संतोषी होते थे । ५८४।

अच्छइय सविण्णाणो, धम्मे य जणस्स आयरो तइया ।

विज्जा पुरिसा पुज्जा, धरिज्जइ कुलं च सीलं च । ८८५।

उपसर्ग गन्महरणं, इत्थित्थं अभाविया-परिसा ।

कणहस्त अवरकंका, उत्तरणं चंद्र-सूराणं । ८८९।

(उपसर्ग-गर्भहरणं, स्त्रीतीर्थ अभावितापरिपद् ।

कृष्णस्य अपरकंका, उत्तरणं चन्द्रसूर्ययोः ।)

उपसर्ग (१), गर्भापहार (२), स्त्री तीर्थं कर (३), अभाविता परिपद (४), कृष्ण का अपर कंका गमन (५), चन्द्र-सूर्य का उतरना (६) — १८८९।

हरिवंसकुलुप्पत्ती, चमरुप्पाओ य अट्टमयसिद्धा ।

असंजयाण पूया, दसवि अणंतेण कालेणं । ८९०।

(हरिवंश कुलोत्पत्तिः, चमरोत्पातश्च अष्टशतसिद्धाः ।

असंयतानां पूजा, दश अपि अनन्तेन कालेन ।)

हरिवंशकुलोत्पत्ति (७), चमरेन्द्र का उत्पात (८), उत्कृष्ट अवगाहना के १०८ सिद्ध (९) श्रीर असंयत-पूजा (१०) -- ये दश आश्चर्य अनन्त काल पश्चात् होते हैं । १८९०।

लोकोत्तम पुरिसेहिं, चउप्पणाए इहं अतीएहिं ।

सुवहुहिं केवलिहि य, मणपज्जव उहिनाणेहिं । ८९१।

(लोकोत्तमपुरुषैः, चतुष्पंचाशता इह अतीतैः ।

सुवहुभिः केवलिभिश्च, मनःपर्यवावधिज्ञानिभिः ।)

यहां जीवन लोकोत्तम (महान्) पुरुषों के हो चुकने के पश्चात् । वहुत से केवलियों, मनःपर्यवज्ञानियों एवं अवधिज्ञानियों । १८९१।

बहुरिद्धी पतेहि य, मह सुयनाणेहि बुहिय सारेहिं ।

काल गतेहिं बुहेहिं मोक्षविष्णाणरासीहिं । ८९२।

बहुद्विपात्रैश्च मतिश्रुतज्ञानीभिः व्यूढसारैः ।

कालगतं बुधैः मोक्षविज्ञानराशीभिः ।)

(भविष्यन्ति च पाखण्डा, मंत्राक्षरकुहकसंप्रयुक्ताश्च ।

मण्डलं मुद्रायोगाः, वशीच्चाटनपराश्च दृढम् ।)

मन्त्र, यन्त्र, इन्द्रजाल आदि कौतुक विद्या एवं मण्डल मुद्रायोग आदि के द्वारा वशीकरण, उच्चाटन आदि हीन क्रियाओं में अर्हतिश तत्पर रहने वाले पाखण्डियों का उम काल में बाहुल्य होगा । ८६६।

तेहिं सुसिज्जमाणो, लोगो सच्छन्द रइय कव्वेहिं ।

अवमन्निय सवभावो, जातो अलितो य पलितो य । ८९७।

(ते सुप्यमानः लोकःस्वच्छन्दरचितकाव्यैः ।

अवमान्य सद्भावं', जातोऽलितश्च पलितश्च ।)

उन पाखण्डियों के द्वारा ठगे और लुटे जाते हुए उस समय के लोग स्वच्छन्दतापूर्वक रचित मनमाने काव्यों द्वारा वीतराग द्वारा उपदिष्ट आगमों की अवमानना करते हुए अलित-पलित हो जायेंगे । ८६७।

होहिंति साहुणो वि य, सप्पक्खानिरवेक्खानिदया धणियं ।

समणगुण मुक्क जोगा, केइ संसारछेत्तारो । ८९८।

(भविष्यन्ति साधवोऽपि च, स्वपक्षनिर्पेक्षनिन्दका आधिक्येन ।

श्रमणगुणमुक्तयोगा, केचित् संसार-छेत्तारः ।)

साधु भी अधिकांशतः स्वपक्ष की अवहेलना करने वाले, बड़े निर्दय और श्रमण गुणों एवं योग से हीन होंगे । कोई विरले ही साधु संसार के बंधनों को काटने वाले होंगे । ८६८।

होहीति गुरुकुलवासे, मंदा य मंदमतीय समण धम्मंमि ।

एयं तं संपत्तां, बहुमुंहे अप्पसमाणे य । ८९९।

(भविष्यन्ति गुरुकुलवासे, मन्दाश्च मन्दमतयश्च श्रमणधर्मे ।

एतत् तत् सम्प्राप्तं, बहुमुण्डा अन्यश्रमणाश्च ।)

गामा मसाण भूया, नयराणि य पेयलोय-सरिसाणि ।
 दास समाय कुडुंवी, जमदंडसमा य रायाणो ।९०३।
 (ग्रामाः श्मशानभृताः, नगराणि च प्रेतलोक सदृशानि ।
 दास समाश्च कुटुम्बिनः, यमदण्डसमाश्च राजानः ।)

उस समय के ग्राम श्मशान के समान और नगर प्रेतलोक के समान भयावह, गृहस्थ दास के समान दीन और राजा लोग साक्षात् यमदण्ड के समान उत्पीड़क होंगे । १६०३।

रायामच्चे भिजाया, भिच्चा जणवएसु य रायाणो ।
 खायंति एकमेकं, मच्छा इव दुव्वले वलिया ।९०४।
 (राजामात्याभिजाताः, भृत्याः जनपदेसु च राजानः ।
 खादन्ति एकमेकं, मत्स्या इव दुर्वलान् वलिनः ।)

उस समय जनपदों में राजामात्य, अभिजार कुल के लोग राजभृत्य और राजा परस्पर एक दूसरे को इस प्रकार खायेंगे जिस प्रकार कि वलवान् मच्छ अपने से दुबल मत्स्यों को खाते हैं । १६०४।

जे अंता ते मज्झा, मज्झा य कमेण होत्ति णं चत्ता ।
 अपढागा इव नावा, डोल्लंति समंततो देसा ।९०५।
 (ये अन्त्याः [अन्त्यजाः] ते मध्याः, मध्याश्च क्रमेण भवन्ति ननु त्यक्ताः ।
 अपताका इव नौः, दौलयन्ति समन्ततः देशे ।)

जो लोग अन्त्य अर्थात् सब से हीन हैं वे मध्यम वर्ग के होंगे और जो मध्यम वर्ग के हैं वे क्रमशः परित्यक्त होंगे । समुद्र में पड़ी विना पाल की नाव के समान लोग देश में इधर से उधर भटकते रहेंगे । १६०५।

पगलित गो महिसाणं, उत्तच्छाणं पलायमाणाणं ।
 अजहन्निया पवित्री, उक्कक्खाणं जणवयाणं ।९०६।
 प्रगलित गौ महिषाणां, उत्त्रस्तानां पलायमानानाम् ।
 अजघन्या प्रवृत्तिः, उत्कक्षानां जनपदानाम् ।

(शिष्या अपि न पूजयन्ति, आचार्यान् दुःपमानुभावेन ।
आचार्या सुमनसा, न ददति उपदेशरत्नानि ।)

दुःषम काल के प्रभाववशात् शिष्य अपने आचार्यों की सत्कार-सम्मान आदि से पूजा नहीं करेंगे और आचार्य भी अन्तर्मन से उन्हें उपदेश नहीं देंगे । ११०।

समणाणं गोयर तो, नासिहिति दुःसमप्पभावेणं ।
सावगधम्मो वि तहा, अज्जाणं पण्णवी सावि [?] । १११।

(श्रमणानां गोचरं ततः, नाशयिष्यति दुःपमाप्रभावेन ।

श्रावक धर्मोऽपि तथा, आर्यिकाणां प्रज्ञप्ति सापि ।)

दुःषम आरक के प्रभाव से आगे चल कर श्रमणों की मधुकरी, श्रावक धर्म और साध्वियों का आचार भी धीरे-धीरे नाश को प्राप्त होगा । १११।

देवा न देति दरिसणं, धम्मे य मती जणस्स पम्हुट्ठा ।

सत्ताकुला य पुह्वी, बहुअं किण्णा य पासंडा । ११२।

(देवा न ददति दर्शनं, धर्मे च मतिः जनस्य प्रमुष्टा ।

सत्त्वाकुला च पृथ्वी, बहुकं कीर्णाश्च पापण्डाः ।)

देवता मनुष्यों को दर्शन नहीं देंगे । मानव समाज की धर्म बुद्धि नष्ट हो जायेगी । अपना-अपना प्रभुत्व जमाने की मानव-मानव में होड के कारण पृथ्वी सत्ताकुल हो जायेगी और अधिकांशतः सर्वत्र पाखण्डियों का प्रसार होगा । ११२।

सयणे निच्च विरुद्धो, निसोहिय साहिवासमित्तेहिं ।

चण्डो दुराणुयत्तो, लज्जारहितो जणो जातो । ११३।

(स्वजनेनित्यविरुद्धः, निशोधित साधिवास मित्रैः ।

चण्डः दुरानुवृत्तो, लज्जारहितः जनो जातः ।)

उस समय में लोग सदा साथ रहने वाले मित्रों एवं स्वजनों के साथ विरोध रखने वाले, बड़े क्रोधी दुष्टतापूर्ण कार्यों में प्रवृत्त और लज्जारहित होंगे । ११३।

एवं परिहीयमाणे, लोके चंदोच्चकाल पदग्राम्मि ।
 जे धम्मिया मणुस्सा, सुजीवियं जीवियं तेसिं ।९२५।
 (एवं परिहीयमाने, लोके चन्द्र इव कृष्णपक्षे ।
 ये धार्मिकाः मनुष्याः, सुजीवितं जीवितं तेषाम् ।)

इस प्रकार कृष्ण पक्ष के चन्द्र की तरह निरन्तर क्षीण होते हुए लोक (काल) में जो मनुष्य धर्माचरण करने वाले होंगे उन्हीं का जोवन वस्तुतः अच्छा जीवन कहा जायेगा ।९२५।

दुस्सम सुस्समकालो, महाविदेहेण आसि परितुल्लो ।
 सोउ चउत्थोकालो, वीरे परिनिव्वुते छिन्नो ।९२६।
 (दुःषम सुषमकालः, महाविदेहेन आसीत् परितुल्यः ।
 स तु चतुर्थः कालः, वीरे परिनिवृत्ते छिन्नः ।)

दुःषम सुषम काल (जो भरत ऐरवत आदि दक्ष क्षेत्रों में था, वह), महाविदेह क्षेत्र में सदा एक ही समान रूप में प्रवर्तमान काल के तुल्य था । वह इस अवसर्पिणी काल का चतुर्थ आरक भगवान् के निर्वाण के (निम्नलिखित काल के) पश्चात् समाप्त हुआ ।९२६।

तिहिं वासेहिं गतेहिं, गएहिं मासेहिं अद्धनवमेहिं ।
 एवं परिहायंते, दुस्समकालो इमो जातो ।९२७।
 (त्रिभिर्वपैर्गतैः, गतैः मासैरद्धं नवमैः ।
 एवं परिहीयमाने, दुःषम काल इमो जातः ।)

भगवान् महावीर के निर्वाण के पश्चात् तीन वर्ष और साढ़े आठ मास व्यतीत होने पर यह दुष्पम नामक पंचम आरक प्रारम्भ हुआ ।९२७।

एयम्मि अद्धकंते, वाससहस्सेहि एक्कवीसाए ।
 फिट्ठिहिति लोग धम्मो, अग्गिमग्गो जिणक्खातो ।९२८।
 (एतस्मिन्नति क्रान्ते, वर्ष सहस्रैः एकविंशत्या ।
 स्फोटिष्यति लोकधर्मः, अग्निमार्गः जिनाख्यातः ।)

(अथ दुःपमायां तस्यां, व्यतिक्रान्तायां चरम समये ।
वर्षिष्यति सप्त रात्रिषु, महत् निरन्तरं वर्षम् ।)

उस दुष्पम आरक की समाप्ति की अन्तिम बेला में सात रात
(रात दिन) निरन्तर घोर वर्षा बरसेगी । ६३२।

तेण हरिया य रुक्खा, तण गुम्मलया वणप्फतीओ य ।
अग्गिस्स य किर जोणी, तमहोरत्तं पडिस्सिहिति । १३३।
(तेन हरिताश्च वृक्षाः, तृणगुल्मलता वनस्पतयश्च ।
अग्नेश्च किल योनिः, तस्मिन् अहोरात्रे प्रतिसेत्स्यति ।)

उस घोर वर्षा से हरे वृक्ष, तृण, गुल्म, लता, वनस्पति और
अग्नि की योनि उसी अहोरात्र (एक दिन तथा एक रात) में नष्ट हो
जायेगी । ६३३।

एते सणियं सणियं, सव्वे विय पव्वेया न होहिंति ।
वेयड्ढो रयणड्ढो, नवरं किच्च्छाए दीसिहिति । १३४।
(एते शनैः शनैः, सर्वेऽपि च पर्वता न भविष्यन्ति ।
वैताड्यः रत्नाड्यः नवरं कृच्छ्रया द्रक्ष्यन्ति ।)

ये सब पर्वत भी धीरे-धीरे नहीं रहेंगे । रत्नभण्डार वैताड्य
पर्वत भी बड़ा छोटा दिखाई देगा । ६३४।

चंदा मुच्चिहिंति हिमं, अहियं य सूरिया तविहिंति ।
जेण इहं नर तिरिया, सीउण्हहया किलिस्संति । १३५।
(चन्द्राः सुंचिष्यन्ति हिमं, अधिकं च सूर्याः तपस्यन्ति ।
येन इह नरतिर्यञ्चा, शीतोष्णहताः किलशिष्यन्ति ।)

चन्द्र हिमवर्षा करेंगे और सूर्य बड़ी तीव्रता से तपेंगे जिससे
कि इन दश क्षत्रों के मनुष्य एवं तिर्यञ्च शीत और घाम के मारे
असह्य कष्ट पायेंगे । ६३५।

१ निवृत्तिमवाप्स्यति-नुत्ता भविष्यतीत्यर्थः ।

भसुं डिय रूवगणा, विवण्णदेह-द्धवि-निरभिरामा ।
 नग्गा वि गया भरणा, वीभच्छा दीह रोमनहा । १४०।
 (भूसुण्डित रूपगणाः, विवर्णदेहद्धवि निरभिरामाः ।
 नग्नाः विगताभरणाः, वीभत्साः दीर्घरोमनखाः ।)

उस समय लोग ग्रामशूकरों के समान विवर्ण एवं घृणास्पद देह वाले, नग्न, वस्त्र रहित, लम्बे-लम्बे केशों एवं नखों वाले तथा बड़े ही वीभत्स होंगे । १४०।

कुणिम सिरीसिव कदम, मुच पुरीसासिणो मढहदेहा ।
 हणमिंदब्धिं पवरा, दोगतिगामी य होहिंति । १४१।
 (कुणिमा सरीसृपकदम, मूत्रपुरीपासिनः मृतकदेहाः ।
 हन भेदय छेदयप्रवराः दुर्गतिगामिनश्च भविष्यन्ति ।)

वे लोग कुचड़े, सर्प, कीचड़, मूत्र और पुरीष (विष्टा) खाने वाले, मुर्दे के समान देह वाले, मारो, काटा, छेद डालो—इस प्रकार के दुष्ट वचन बोलने वाले एवं मृत्यु के पश्चात् दुर्गतिगामी होंगे । १४१।

पुनरपि अभिक्खभिक्खं, अरसं विरसं य खार खट्टं च ।
 अग्गिविस असणि सहियं, मुंचहिंति मेहा जलमणिट्टं । १४२।
 (पुनरपि अभिक्षभिक्षां, अरसं विरसं च क्षारमम्लं च ।
 अग्नि-विष-अशनिसहितं, मुंचिष्यन्ति मेवा जलमनिष्टम् ।)

बार-बार भीषण दुष्काल पड़ेंगे । उस समय वादल अरस, विरस, कड़वा, खट्टा, अग्नि, विष एवं वज्र सहित अनिष्ट करें जल वरसायेंगे । १४२।

जेण इहं मणुयाणं, कासो सासो भगंदरं कोट्ठो ।
 होहिंती एवमाई, रोगा अण्णे अणेग विहा । १४३।
 (येन इह मनुष्यानां, कासः श्वासो भगंदरं कुण्ठः ।
 भविष्यन्ति एवमादयः रोगा अन्ये अनेक विधाः ।)

उस समय के मनुष्य बड़े तीक्ष्ण एवं कठोर नखों वाले अनघड़ घड़े के समान मुख तथा बोलने में अति विकट अटपटे नामों वाले होंगे वे सब के सब वर्ण आदि मत्र गुणों से अति कर्कश और निष्ठुरातिनिष्ठुर स्वभाव वाले होंगे । १६५४।

रयणी पमाणमेत्ता, उक्कोसेणं तू वीस सोलाउ ।

बहुपुत्र न तु महिया, निज्जज्जा विणय परिहीणा ।

(रत्निप्रमाणमात्रा, उत्कृष्टतस्तु विंशतिः पौडशायुष्काः । १६५५।

बहुपुत्र नप्तृसहिता, निर्लज्जाः विनय परिहीनाः ।)

उन मनुष्यों के शरीर की ऊंचाई एक मुण्ड हाथ की, उनकी उत्कृष्ट आयु २० अथवा १६ वर्ष की होगी । वे बहुत से पुत्रों पौत्रों और दोहियों के परिवार वाले, नितान्त निर्लज्ज एवं अविनीत होंगे । १६५५।

नडुगिहा मक्कर, भोङ्गो, सूरपक्कमंसासी ।

अणु गंगा सिंधु, पन्वय विलवासी कूरकम्माय । १६५६।

(नष्ट गृहा मकर भोजिनः, सूर्यपक्व मांसाशिनः ।

अनु गंगा सिंधु, पर्वतविलवासिनः क्रूर कर्माणश्च ।)

वे गृहविहीन नरनारी मत्स्य मकरभोजी सूर्य की गरमी से पके मांस को खाने वाले गंगा एवं सिन्धु नदियों के तटों के पास की वैताद्वय पर्वत की गुफाओं में रहने वाले और बड़े ही क्रूरकर्मा होंगे । १६५६।

होहिति य विलवासी, वावचरि ते विलाउ वेयड्डे ।

उभतो तडे णदीणं, नव नव एककेक्के कूले । १६५७।

(भविष्यन्ति च विलवासिनः, द्वासप्तति ते विलास्तु वैताद्वये ।

उभयतो तटे नदीनां, नव नव एककेक्के कूले ।)

वे लोग विलवामी (गुहावसी) होंगे । वे बहत्तर (७२) विल वैताद्वय पर्वत में नदियों के दोनों तटों पर होंगे । प्रत्येक तट पर नौ-नौ विल होंगे । १६५७।

भरत क्षेत्र में गंगा एवं सिन्धु-नदियां और वैताढ्य पर्वत, के-
ये तीन ही बचे रहेंगे. शेष कुछ भी अवशिष्ट नहीं रहेगा । १६६१।

इगवीस [वास] सहस्साइं, भणियां अति दुःसमा उवीरेणं ।

रायगिहे गुण सिलए, गोयममादीणं सिस्साणं । १६६२।

(एकविंशति (वर्ष) सहस्राणि, भणिता अति दुःपमाः तु वीरेण ।

राजगृहे गुणशीलके, गौतमादीनां शिष्याणाम् ।)

राजगृह नगर के गुणशील चैत्य में भगवान् महावीर ने गौतम
आदि गणधरों को दुष्पम-दुष्पम नामक आरक की स्थिति २१०००
(इकवीस हजार) वर्ष बताई है । १६६२।

ओसपिणी उ एसा, कोडा कोडी उ होइ दस चैव ।

अवरोह अरगाण निययं, अरगा छ्चैव विख्याया । १६६३।

(अवसर्पिणीतु एपा कोट्याकोट्यस्तु भवन्ति दश चैव ।

अवरोहो आरकाणां नियतः, आरकाः षड् चैव विख्याताः ।)

यह अवसर्पिणी काल दश कोट्या कोटि सागर प्रमाण स्थिति
वाला होता है । इसमें छह आरक विख्यात हैं । उन छहों आरकों का
अवरोह (क्रमशः हीयमान उतार) अर्थात् अपसर्पण नियत है । १६६३।

एतो परं तु वोच्छं, उत्सपिणीए किचि उद्देशं ।

इगवीस सहस्साणं, अई दुसम होइ वासाणं । १६६४।

(इतः परं तु वक्ष्ये, उत्सर्पिण्याः किचिदुद्देशम् ।

एक विंशतिः सहस्राणां, अति दुःपमः भवति वर्षाणाम् ।)

अब मैं उत्सर्पिणी काल के सम्बन्ध में थोड़ा कथन करूँगा
इसका दुष्पम दुष्पम नामक प्रथम आरक २१००० (इकवीस हजार)
वर्ष का होता है । १६६४।

दससु वि वासेसैसा, काहिति दुक्खाइं मणुय तिरियाणं ।

होही सुस्सिरा भूमी, मम्मय दंसाणं पणुय तिरियाणं ।

10
11
12
13

वे नर-नारी दुष्पम-दुष्पमा के प्रारम्भ में दोस-वर्ष की आयु और शरीर को दो हाथ ऊँचाई वाले होंगे । इस आरक के अन्त में उनकी आयु १६ वर्ष और शरीर की ऊँचाई एक मुण्ड हाथ होगी । १६६८।

जिय पक्षिवर्ग सीह, चउपया पंच इंदिया जे य
गय गो महिष खरोड्ड पञ्चय विविहा य पाणिगणो । १६९।
(यावन्तः पक्षिवर्ग सिहचतुष्पदाः पंचेन्द्रियाः ये च ।
गज गो महिष खरोष्ट्रपशवश्च विविधश्च प्राणिगणः ।)

जितने पक्षिवर्ग के सभी जाति के पक्षी, सिंह, हाथी, गौ, महिष, गधे, ऊंट आदि पंचेन्द्रिय चतुष्पद पशुवर्ग और अन्य विविध प्राणिवर्ग हैं, वे सब -- १६६९।

आगमियाए उत्सर्पिणीए, होहिंति वीय मेचाइं ।
बावत्तरि जुयलाइं, नराणतत्तोय सवण्णाउ । १७०।
(आगामिन्यां उत्सर्पिण्यां, भविष्यन्ति वीजमात्राणि ।
द्रासप्ततिः युगलानि, नराणां ततश्च सवर्णानि ।)

आगामी उत्सर्पिणी काल (के प्रथम आरक) में वीज मात्र होंगे । इस समय में मानव वर्ग के बहत्तर (७२) सवर्ण अर्थात् सहोदर नर-नारी-युगल होंगे । १७०।

होहिंति विलावासी, बावत्तरि ते विलाउ वेयड्डे ।
उभतो तडे नईणं, नव नव एकके ककए कूले । १७१।
(भविष्यन्ति विला आवासिनः, द्रासप्ततिः ते विलास्तु वैताढ्ये ।
उभयतोः तटयोः नदीनां, नव नव एकैकके कूले ।)

वैताढ्य पर्वत में वे ७२ विल होंगे । नदियों के दोनों तटों पर प्रत्येक तट पर-नी, नी विलों के हिसाब से होंगे । १७१।

सेसं तु वीजमेत्तं, होहिं सञ्चेसिं-जीवजातीणं ।
कुणिमाहारा सञ्चे, निसाए संज्झ कालस्स । १७२।



इस प्रकार धवल पक्ष के चन्द्रमा की तरह वृद्धि की ओर अग्रसर लोक एवं काल में उस समय के मनुष्यों की सहसा ही मनःशुद्धि होती है । १६६६।

विज्जाण य परिवुड्ढी, पुप्फ फलाणं च ओहीणं च ।

आउय सुह रिद्धीणं, संटाणुश्चत्त धम्माणं । १९७।

(विद्यानां च परिवृद्धिः, पुष्पफलानां चौपधीनां च ।

आयुश्च सुखऋद्धीणं, संस्थान-उच्चत्व-धर्माणाम् ।)

विद्याओं, पुष्प-फलों, औपधियों: आयु, सुख, समृद्धि, संस्थान, उत्सेध (ऊंचाई) और धर्म—इन सब की उत्तरोत्तर अभिवृद्धि होगी । १६६७।

दूसमकालो होही, एवं एयं जिणो परिकहेइ ।

दूसमसुस्सुमकाले, पवड्ढमाणं अनो वेति । १९८।

दुःपमकालेः भविष्यति, एवं एतत् जिनः परिकथयति ।

दुःपम सुष्पम कालं प्रवद्धं मानं अतः ब्रुवन्ति ।)

इस प्रकार का दुष्पम काल होगा—ऐसा जिनेश्वर कहते हैं । दुष्पमसुष्पम काल को इसी लिये प्रवद्धमान काल कहा जाता है । १६६८।

पव्वयनदीण बुड्ढी, बुड्ढी विन्नाण नाण सोक्खाणं ।

छण्ह वि रिउण बुड्ढी, दससु वि वासेसु बोधव्वा । १९९।

(पर्वतनदीनां वृद्धिः, वृद्धिर्विज्ञानज्ञानसौख्यानाम् ।

पण्णामपि ऋतूनां वृद्धिः, दशस्वपि वर्षेषु बोद्धव्या ।)

उत्सर्पिणी काल के उस दुःपम-सुष्पम आरक में दशों ही क्षेत्रों में पर्वतों तथा नदियों की वृद्धि होगी । विज्ञान, ज्ञान एवं सौख्य की वृद्धि होगी । उहाँ ऋतुओं के प्रभाव गुण आदि में भी अभिवृद्धि होगी । १६६९।

धण सत्तरसंवण्णं, फलाइं मूलाइं सव्वरुक्खाणं ।

सज्जूर दक्ख दाडिम, फणसा तउसा य वड्ढंति । १०००।

पुनः यथा समय अमृत के समान सरस जल की अच्छी वर्षाएं होंगी जिससे कि मानव वर्ग में किसी प्रकार के रोग संघात उत्पन्न नहीं होंगे । १००३।

अह दुसमाए तीसे, सत्तण्हं कुलगराण उप्पत्ती ।

कायव्वा आणुपुञ्जी, जह परिवाडीए सव्वेसिं । १००४।

(अय दुःपमायां तस्यां सप्तानां कुलकराणां उत्पत्तिः ।

कर्त्तव्या आनुपूर्वीः, यथा परिपाट्या सर्वेणाम् ।)

उत्सर्पिणी काल के उस दुःपम नामक द्वितीय आरक में सात कुलकर उत्पन्न होंगे । उन सब का परिपाटी के अनुसार आनुपूर्वी कर लेनी चाहिए । १००४।

पढमेत्थ विमलवाहण, सुदाम संगम सुपास नामे य ।

दत्ते सुनहे तसु मं, इय सत्तेव निदिद्धा । १००५।

(प्रथमोऽत्र विमलवाहनः, सुदाम संगम सुपार्श्व नामा च ।

दत्तः सुनखः तसुमं, इति सप्तैव निर्दिष्टाः ।)

प्रथम कुलकर का नाव विमलवाहन, द्वितीय सुदाम, तीसरे संगम, चौथे सुपार्श्व नामक, पांचवें दत्त, छठे सुनख और सातवें तसुमं होगा । इस प्रकार ये सात कुलकर बताये गये हैं । १००५।

उत्सर्पिणी इमीसे, विनियाए समाए य गंग सिधूणं ।

एत्थ बहुमज्झ देसे, उप्पण्णा कुलगरा सत्त । १००६।

उत्सर्पिण्याः इमायाः, द्वितीयायां समायां च गंगासिन्धोः ।

अत्र बहुमध्य देशे, उत्पन्ना कुलकराः सप्तः ।)

उस आगामी उत्सर्पिणी की दूसरी समा अर्थात् द्वितीय आरक में गंगा और सिन्धु के मध्यवर्ती प्रदेश में सात कुलकर उत्पन्न होंगे । १००६।

[स्पष्टीकरणः—समवायांग सूत्र में आगामी उत्सर्पिणीकाल के द्वितीय आरक में भरत क्षत्र के भावी सात कुलकरों के नाम इस प्रकार उल्लिखित हैंः—

चउ सुं वि एरवए सुं, एवं चउसुवि य भरहवासे सु ।
 एककैकम्मि उ, होहिंति कुलगरा सत्त ।१०१०।
 (चतसृष्वपि ऐरवतेषु, एवं चतुष्वपि च भरतवर्षेषु ।
 एकैकैके तु, भविष्यन्ति कुलकराः सप्तः ।)

इसी प्रकार शेष चारों ही ऐरवत क्षेत्रों तथा चारों भरत क्षेत्रों में, प्रत्येक में सात-सात कुलकर होंगे ।१०१०।

गाम नगरागराणं, गोउल संवाह सन्निवेशाणं ।
 कुलनीति रायनीतीण, कारगा कुलगरा तइया ।१०११।
 (ग्रामनगराकराणं, गोकुल संवाह सन्निवेशाणाम् ।
 कुल नीतिः राजनीत्योः, कारका कुलकराः तदा ।)

उस समय के वे कुलकर ग्राम, नगर, आकर, गोकुल, संवाह एवं सन्निवेशों तथा कुल नीति एवं राजनीति के निर्माता होंगे ।१०११।

आसा हत्थी गावो, गहियाइं रज्ज संगह निमित्तं ।
 व्यवहारो लेहवणं, होही सामाइ एसिं तु ।१०१२।
 (अश्वाः हस्तिनः गावः गृहीतानि राज्यसंग्रहनिमित्तम् ।
 व्यवहारः लेखापनं, भविष्यति सामादि एषां तु ।)

उन कुलकरों द्वारा घोड़ों, हाथियों, गायों आदि को राज्य संग्रह के लिये पकड़ा जायेगा । व्यवहार अर्थात् आदान-प्रदान, लेखन और साम आदि दण्ड नीतियों का भी इन्हीं के समय में प्रचलन होगा ।१०१२।

उग्गा भोगा राइण्ण, खंचिया संगहो भवे च उहाँ ।
 उप्पण्णे अगणिमिय, रंधणमातीणी काहिंति ।१०१३।
 (उग्गाः भोगा (जाः) राजन्याः, क्षत्रियाः संग्रहः भवेत् चतुर्धा ।
 उत्पन्ने अग्नौ च, रन्धनादीनि करिष्यन्ति ।)

दूसम सुस्सम कालो, उदही समाणाण कोडी कोडीओ ।

जिण चक्कि दसाराणं(वासुदेवाणं), किंवि समासं पवक्खामि ।१०२४।

(दुःपमसुपमाकाल, उदधि समानानां (सागरोपम) कोट्या कोटिकः ।

जिनचक्रि वासुदेवानां, किमपि समासेन प्रवक्ष्यामि ।)

उत्सर्पिणी का दुःपम सुष्पमं काल एक कोटा कोटि सागरोपम-
(४२,००० वर्षं कम-इस प्रकार का उल्लेख होना चाहिए पर इस
गाथा में ऐसा उल्लेख नहीं है)—का होगा । अव मैं जिन (तीर्थकर),
चक्रवर्ती और दशार्हों के सम्बन्ध में संक्षेपतः कुछ कहूँगा ।१०२४।

नगरम्मि सत दुवारे, सुमइ रायस्स भारिया भद्दा ।

सयणिज्जे सुह सुत्ता, चौदस सुमिणे उ पेच्छिहिति ।१०२५।

(नगरे शतद्वारे, सुमति राज्ञः भार्या भद्रा ।

शयनीये सुखसुप्ता, चतुर्दश स्वप्नानि तु प्रेक्षयिष्यति ।)

शतद्वार नामक नगर में राजा सुमति की रानी भद्रा शय्या
पर सुख पूर्वक सोती हुई (निम्नलिखित) चौदह स्वप्न देखेगी ।१०२५।

गय-उसभ-सीह-अभिसेय-दाम-ससि-दिणयरं झयं कुं भं ।

पउमसर-सागर-विमाण भवण* रयणुच्चय-सिहिं च ।१०२६।

(गज-वृषभ-सिंह-अभिषेक-दाम-शशि-दिनकरं-झसं-कुम्भम् ।

पद्मसर-सागर-विमान भवन-रत्नोच्चय-शिखिं च ।)

गज, वृषभ, सिंह, अभिषेक, दाम शशि, सूर्य, मत्स्य, कुम्भ-
कलश, पद्मसर, सागर, भवन (विमान नहीं), रत्नराशि और
निर्धूमानि ।१०२६।

एते चउदस सुमिणे, पासइ भद्दा सुहेण पस्सुत्ता ।

जं रयणि उववण्णो, कुच्छिसि महायसो पउमो ।१०२७।

* यदा तीर्थकरजीवः देवलोकात् गर्भे च्यवति तदा तीर्थकरमाता द्वादशमे
स्वप्ने विमानं पश्यति । तीर्थकर जीवस्य नरकात् गर्भे च्यवनावस्थायां तु
माता भवनं पश्यति ।

इसी प्रकार शेष चारों ऐरवत और चारों भरत क्षेत्रों में, चन्द्र का हस्तोत्तरा नक्षत्र के साथ योग होने पर आठ तीर्थंकर अपनी अपनी माता की कुक्षि में उत्पन्न होंगे । १०३०।

जो सो सेणियराया, कालं काऊण काल मासम्मि ।

रयणप्पमाए तीसे, उव्वहिच्चा य इहयम्मि । १०३१।

(यः स श्रेणिकराजा, कालं कृत्वा कालमासे ।

रत्न प्रभायां तस्यां, उव्वर्त्य च इहके ।)

सीमंत नरगाओ उ, आउं परिपालिऊण तो भगवं ।

चउरासीति सहस्साणं, वासाणं सो महापउमो । १०३२।

(सीमंत नरकात्तु. आयुः परिपाल्य ततः भगवान् ।

चतुरसीति सहस्राणां, वर्षाणां स महापद्मः ।)

भगवान् महावीर का परम भक्त राजा श्रेणिक था, वह अपनी आयु पूर्ण होने पर काल घर्म को प्राप्त हो रत्नप्रभा नाम की में उत्पन्न हो वहां सीमन्त नरक की अपनी ८४,००० वर्ष की आयु पूर्णकर वह भगवान् महापद्म के रूप में रानी भद्रा की कुक्षि में गर्भ रूप से उत्पन्न होंगे । १०३१-१०३२।

चेचस्स सुद्ध तेरसि, चंदे हत्थुत्तरेण जोगेणं ।

सिद्धत्थ महा पउमा, जाया दस एकसमएणं । १०३३।

(चैत्रस्य शुक्ल त्रयोदश्यां, चन्द्रस्य हस्तोत्तरेण योगेन ।

सिद्धार्थ महापद्माः, जाता दश एक समयेन ।)

चैत्र शुक्ला चतुर्दशी को चन्द्र का हस्तोत्तरा के साथ योग होने पर सिद्धार्थ और महापद्म १० तीर्थंकर (दश क्षेत्रों में) एक ही समय में उत्पन्न होंगे । १०३३।

नाणा रयणा विचिच्चा, वसुधारा निवडिया कलकलन्ती ।

गंभीर मडुर सद्दो य, दुंदुभिताडियो गयणे । १०३४।

(नाना रत्न विचित्रा, वसुधारा निपतिता कल कलन्ती ।

गम्भीरमथुर शब्दश्च दुंदुभिताडितः गगने ।)

अद्ध नवमा य मासा, वासा तिन्नेव होंति वोक्कंता ।

इममसुप्सम काले, तो उप्पण्णो महा पउमो । १०३८।

(अद्ध नवमा च मासा, वर्षाणि त्रीण्येव भवन्ति व्युत्क्रान्ता ।

दुःपम सुपमा काले, तत उत्पन्नो महा पद्मः ।)

आगामी उत्सर्पिणी काल के दुष्पम सुपम नामक तृतीय आरक के तीन वर्ष और साढ़े आठ मास व्यतीत होने पर महापद्म तीर्थंकर का जन्म होगा । १०३८।

चुलसीति सहस्साइं, वासा सत्तेव पंच मासा य ।

वीर महा पउमाणं, अंतरमेयं तु विन्नेयं । १०३९।

(चतुरसीति सहस्राणि वर्षाणि सप्तैव पंच मासाश्च ।

वीर महापद्मयोरंतरमेत तु विज्ञेयम् ।)

भगवान् महावीर और महापद्म इन दोनों के बीच के काल का अन्तर ८४,००७ वर्ष और पांच मास समझना चाहिए । १०३९।

तुट्ठा उ देवीओ, देवा आणंदिया सपरिसग्गा ।

भयवंमि महापउमे, तइलोकक सुहावहे जाते । १०४०।

(तुट्ठास्तु देव्यः, देवा आनन्दिताः सपरि पतकाः ।

भगवति महापद्मे, त्रैलोक्यसुखावहे जाते ।)

त्रैलोक्य को सुख प्रदान करने वाले तीर्थंकर भगवान् महापद्म के उत्पन्न होने पर देवियां बड़ी प्रसन्न होंगी और अपनी परिपटी सहित देव-देवेन्द्र आनन्द का अनुभव करेंगे । १०४०।

जायंमि महापउमे, पउम मणि कणगवर वासां ।

मुं चंति देवसंघा, हरिसवसुण्ल सियरोमंचा । १०४१।

(जाते महापद्मे, पद्ममणि-रत्न-कनकवरवर्षम् ।

मुं चन्ति देवसंघाः, हर्षवशोऽल्लसित रोमाञ्चाः।)

भगवान् महापद्म का जन्म होने पर हर्षातिरेक से पुलकित हो देवों के समूह पद्ममणियों, रत्नों और स्वर्णमुद्राओं की बड़ी सुन्दर वर्षा करेंगे । १०४१।

उस समय लोग पारस्परिक द्वेष तथा त्रास से रहित, विप्लव, उथल-पुथल, भय, दण्ड, आतताई के आक्रमण, ईति-भीति (महामारी), और चोर लुटेरों के भय से विहीन तथा कर भार से उन्मुक्त होंगे । १०४५।

अह वड्ढति सो भगवं, सुमतिरायस्स संगतो धीरो ।

दासीदास परिवुडो, परिकिण्णो पीठमद्देहिं । १०४६।

अथ वड्ढते स भगवान्, सुमतिराज्ञः संगतः धीरः ।

दासीदासपरिवृतः, परिकीर्णः पीठमद्दैः ।)

सुमति नृपति के आनन्दवद्धक वे धैर्यशाली प्रभु महापद्म दास-दासियों से घिरे हुए एवं सुखासनों पीठमद् आदि पर सुशोभित हो बढ़ने लगेंगे । १०४६।

असित सिरतो सुनयणो, विम्बोड्डो धवलदन्ती पंतीवो ।

वरपउमगन्भगोरो, फुल्लुप्पल गंधनीसासो । १०४७।

(असित शिरजः सुनयनः, विम्बोष्ठः धवलदन्तपंक्तीकः ।

वरपद्मगर्भगौरः, फुल्लोत्पलगन्धनिःश्वासः ।)

भगवान् महापद्म भ्रमर सन्निभ काली केश राशि, अति सुन्दर विशाल लोचनं युगल विम्ब फल तुल्य लाल-लाल श्रेष्ठ-पुद, स्वच्छ धवल दन्त-पंक्तिग्रीं वाले, श्रेष्ठ पद्म के गर्भ के समान गौर वर्ण और प्रफुल्लित नीलकमल के फूल की गन्ध के समान सुगन्धित श्वास निःश्वास वाले होंगे । १०४७।

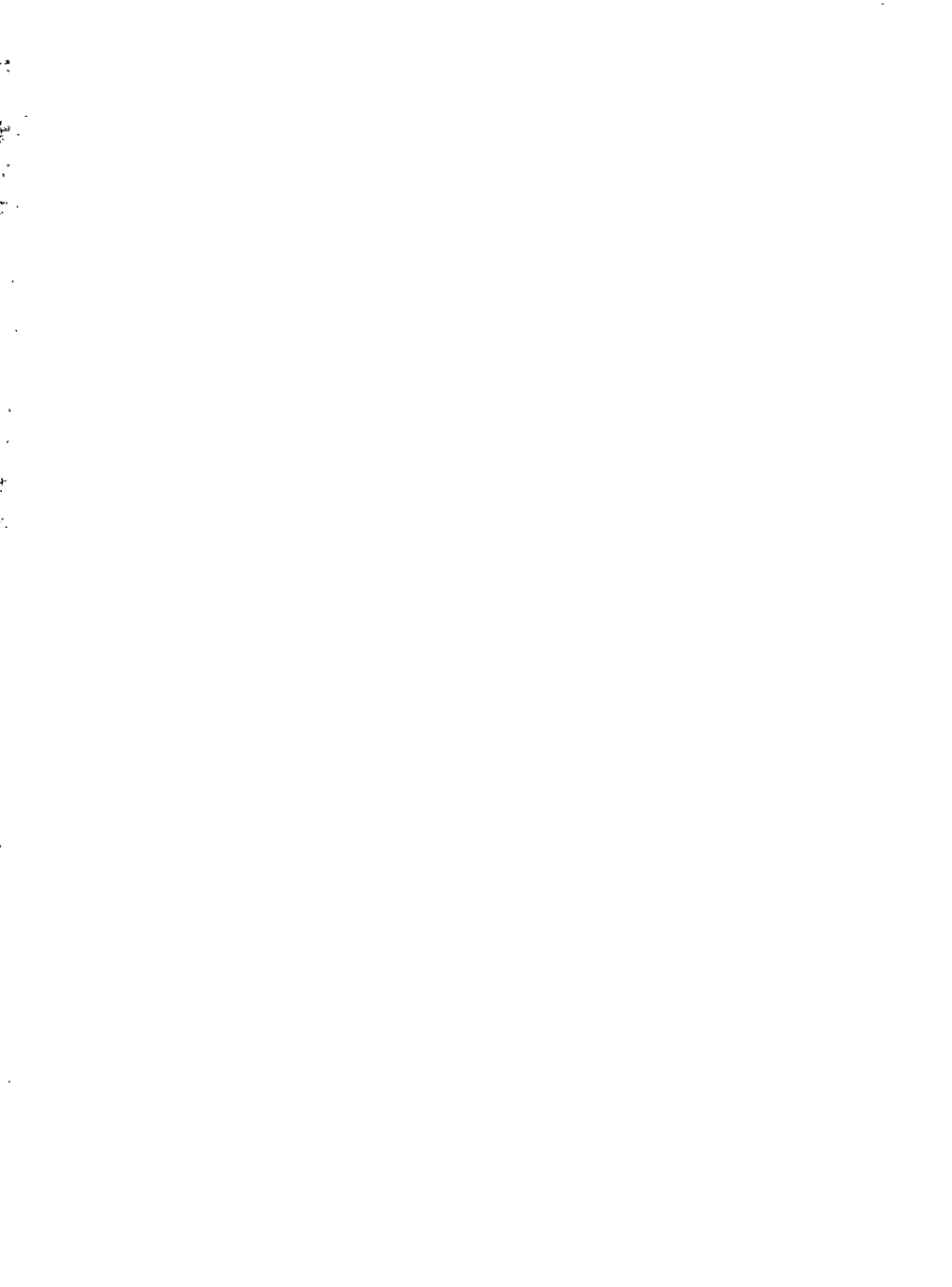
जातीसरो उ भयवं, अप्परिवड्ढिएहिं तिहि उ नाणेहिं ।

कंतीहि य पुट्ठीहि यः अब्भहितो तेहिं मणुएहिं । १०४८।

(जातिस्मरस्तु भगवान्, अप्रतिपतितैस्त्रिभिस्तु ज्ञानैः ।

कान्तिभिरच पुष्टिभिरच, अभ्यधिकः तेभ्यः मनुजेभ्यः ।)

वे प्रभु महापद्म जातिस्मर ज्ञान तथा कभी क्षीण न होने वाले मति-श्रुति-अवधि-इन तीन ज्ञान से युक्त तथा उस समय के सभी मनुष्यों की अपेक्षा अत्यधिक कान्ति एवं पुष्टि वाले होंगे । १०४८।



तत्पश्चात् माता-पिता शुभ तिथि श्रीर शुभ करण में महापद्म का बड़े सामन्त कुल में उत्पन्न हुई यशोदा नामक एक सुन्दर राज-कुमारी के साथ विवाह करेंगे । १०५२।

भर हंमि पढम राया, हय-गयरह-जोह संकुलं सेणं ।

तो माणि भद्द देवो, काहिति पुण्णभद्दो य १०५३।

(भरते प्रथमो राजा, हय गज रथ योध संकुलं सैन्यम् ।

ततः भणिभद्रदेवः करिष्यति पूर्णभद्रश्च ।)

महापद्म आगामी उत्सर्पिणी काल में भरत क्षेत्र के प्रथम राजा होंगे । मणिभद्र और पूर्णभद्र देव उन राजा महापद्म के लिये अश्व-गज एवं रथारोही योद्धाओं की एक अति विशाल सेना संगठित करेंगे । १०५३।

जम्हा देवा सेणं, पडियग्गंति उ पुच्च संगहया ।

तम्हा उ देवसेणो, देवासुर पूजितो नामं । १०५४।

(यस्मात् देवाः सैन्यं, प्रत्यग्रन्ति तु पूर्वं संगतिकाः ।

तस्मात् तु देवसेनः, देवासुरपूजितः नाम)

पूर्व भव के मित्र देवों द्वारा सेना के संगठित किये जाने कारण महापद्म का दूसरा नाम देवासुर पूजित देवसेन भी प्रसिद्ध होगा । १०५४।

धवलं गयं महंतं, सत्तांग पइड्डितं चउद्दंतं ।

वाहेति विमल जसो, नामं तो विमलवाहणोत्ति १०५५।

(धवलं गजं महान्तं, सत्तांगप्रतिष्ठितं चतुर्दन्तम् ।

वाहयति विमलयशः, नाम अतः विमलवाहन-इति ।)

विमल यश के भागी राजा महापद्म सर्वांग सुन्दर चतुर्दन्त नामक एक महान् एवं श्वेत रंग के हाथी पर आरोहण करेंगे इस लिये उनका तीसरा नाम विमलवाहन भी प्रसिद्ध होगा । १०५५।

सो देव-पतिग्गहीओ, तीसं वासाइं वसति गिहवासे ।

अंमापितीहिं भगवं, देवत्ति गतेहि पच्चइत्तो । १०५६।

विज्ञापित करते हैं—“भगवन् ! तीर्थ का प्रवर्तन कीजिये” । १०६५।

एवं अभियुणन्तो, बुद्धो फुल्लारविन्द सरिसमुहो ।

लोगंतिय देवेहिं, सयदारंमि य महा पउमो । १०६६।

(एवं अभिस्तूयमानः, बुद्धः फुल्लारविन्द सदृशमुखः ।

लोकान्तिक देवैः, शतद्वारे च महापद्मः ।)

लोकान्तिक देवों द्वारा शतद्वार नगर में इस प्रकार की स्तुति की जाने पर कमल के खिले पुष्प के समान नेत्रों वाले भगवान् महापद्म बुद्ध—(विज्ञप्त) हुए अर्थात् प्रभु को तीर्थ—प्रवर्तन का ध्यान आयेगा । १०६६।

मणपरिणामो य कतो, अभिनिक्खमणंमि जिणवरिंदेण ।

देवेहिं य देवीहिं य, समंतओ उच्छुयं गयणं । १०६७।

(मन परिणामश्च कृतः, अभिनिष्क्रमणे जिनवरेन्द्रेण ।

देवैश्च देवीभिश्च, समन्ततः उत्सृतं गगनम् ।)

भगवान् महापद्म अपने मन में अभिनिष्क्रमण का हृदय निश्चय करेंगे और देवों तथा देवियों द्वारा आकाश दिव्य घोषों से गुंजरित कर दिया जायेगा । १०६७।

भवणवह वाणमंतर, जोइसवासी विमाणवासी य ।

धरणियले गयणयले, विज्जुज्जो ओ क ओ खिप्पं । १०६८।

(भवनपतिः वाणव्यन्तर, ज्योतिषवासी विमानवासीभिश्च ।

धरणितले, गगनतले, विद्युदुद्योतः कृतः क्षिप्रम् ।)

भवनपति, वाणमन्त्रर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव तत्क्षण पृथ्वीतल पर और आकाश में विजली का प्रकाश करेंगे । १०६८।

जेडं नल्लिणिकुमारं, रज्जेठविच्चुं तं महापउमो ।

उत्तकणगवण्णो, मगसिर बहुलस्स दसमीए । १०६९।

(ज्येष्ठं नल्लिणिकुमारं, राज्ये स्थापयित्वातं महापद्मः ।

उत्तम कनकवर्णः, मार्गशीर्ष बहुलस्य दशम्याम् ।)

पण्णासमायामा, धरणी वीसाय पणवीसायाया ।

छ्वीसइतुस्सेहा, सीता चंदप्पभा भणिया । १०७४।

(पञ्चाशदायामा, धनूपि विंशतिश्च पंचविशत्यायाता ।

पड्विंशत्युत्सेधा, सीता चन्द्रप्रभा भणिता ।)

वह चन्द्रप्रभा नाम वाली पालकी ५० धनुष लम्बी, मध्य में २५ श्रीरक्षेप आगे पीछे के भागों में २० धनुष चौड़ी तथा छत्तीस धनुष ऊँची बतलाई गई हैं । १०७४।

सीयाए मज्झयारे, दिव्वं मणिरयणकणग विंवइयं ।

सीहासणं महरिहं, सपाय पीठं जिणवरस्स । १०७५।

(सीतायाः मध्यद्वारे, दिव्यं मणिरत्नकनकविम्बितम् ।

सिंहासनं महाद्यं, सपादपीठं जिनवरस्य ।)

उस चन्द्रप्रभा शिविका के बीचोबीच उन भगवान् महापद्म तीर्थंकर के लिये पादपीठ सहित दिव्य मणियों, रत्नों एवं स्वर्ण से निर्मित एक महा मूल्यवान् सिंहासन होगा । १०७५।

आलइय भाल मउडो, भासुर वोदी [१] पलंबवणमालो ।

सियवत्थ संनियत्थो, जस्त य मोल्लं सयसहस्सां । १०७६।

(आललित भालमुकुटः, भासुर वौदि प्रलम्बवनमालः ।

सितवस्त्र सन्न्यस्तः, यस्य च मूल्यं शतसहस्रम् ।)

सुविशाल भाल पर अति ललित मुकुट धारण किये हुए प्रकाशमान देह छवि वाले आजानु विशाल वनमालाओं से विभूषित एवं लाख स्वर्ण-मुद्राओं के मूल्य वाले श्वेत वस्त्र को धारण किये हुए — १०७६।

छट्ठेणं भत्तेणं, अज्झवसारणेण सोहणेण जिणो ।

लेसाहि विसुज्झंतो, आरुमती उत्तमं सीयं । १०७७।

(पठेन भक्तेन, अध्यवसायेन शोभनेन जिनः ।

लेश्याभिः विशुद्ध्यमानः, आरोहति उत्तमां सीताम् ।)

(वनखण्ड इव कुसुमितः पद्मसरो वा यथा शरत्काले ।

शोभते कुसुमभरेण, एवं गगनतलं सुरगणैः ।)

जिस प्रकार प्रफुल्लित सुविशाल पुष्प वन अथवा शरद् ऋतु में पद्म-सरोवर यत्र तत्र-सर्वत्र खिले फूलों से सुशोभित होता है, उसी प्रकार सुरों एवं सुरवालाश्रों के समूहों से व्याप्त वहाँ का गगन मण्डल बड़ा सुशोभित ही उठता है । १०८१।

अह सिद्धत्थवणं व जहा, अमणवणं सणवणं असोगवणं ।

चूतवणं व कुसुमियं, इय गयणयलं सुरगणेहिं । १०८२।

(अथ सिद्धार्थवनं वा यथा, अशनवनं सणवनं अशोकवनम् ।

चूतवनं वा कुसुमितं, एवं गगनतलं सुरगणैः ।)

देव-देवी वृन्द से व्याप्त गगन मण्डल इस प्रकार शोभायमान होने लगगा मानो सिद्धार्थ वन अशनवन, सुरण वन, अशोक वन, और आम्रवन एक साथ ही वहाँ कुसुमित हो उठें हों । १०८२।

अलसिवणं व कुसुमितं, कणियारवणं व चंपयवणं वा ।

तिलगवणं सुकुसुमियं, इय गयणयलं सुरगणेहिं । १०८३।

(अलसिवनं वा कुसुमितं, कर्णिकारवनं वा चम्पकवनं वा ।

तिलकवनं सुकुसुमितं, एवं गगन-तलं सुरगणैः ।)

देवों एवं अप्सराओं के समूहों से व्याप्त वहाँ का गगन मण्डल उस समय ऐसा शोभायमान हो रहा होगा, मानो अलसी, कनेर, चंपक और तिलों के वन विविध सुन्दर पुष्पों से भरे पूरे हो लहलहा रहे हों । १०८३।

वरपटहभेरि झल्लरि, दुंदुहि संखसतेहिंतुरीहिं ।

धरणि यलगयणयल्लै, तुरिय निनाओ परम रम्मो । १०८४।

(वर पटह-भेरि-झल्लरि-दुंदुभि-शंख शतैः तुरीभिः ।

धरणितल गगनतले, तूर्य निनादः परम रम्यः)

सैंकड़ों अत्युत्तम पटहों भेरियों झल्लरियों, दुंदुभियों शंखों एवं तूर्यों के कर्णांत्रिय अतिरम्य निनाद वरातल पर और गगन मण्डल में होने लगेंगे । १०८४।

जिणवरमरणुण्णवित्ता, अंजणघणरूयगव्भमर संकासा ।
 केसा खणेण नीता, खीर सरीस नाम यं उदहिं । १०८८।
 (जिनवर मनुज्ञाप्य, अंजन घन रुचक भ्रमर संकासा ।
 केशा क्षणेन नीता क्षीर-सरिदीश नामकं उदधिम् ।)

शक्र प्रभु महापद्म की आज्ञा प्राप्त कर काजल, काले-वादल,
 रुचक तथा भ्रमर के समान काले उन लुब्धित केशों को क्षण मात्र में
 क्षीर सागर में डाल लौट आयेगा । १०८८।

दिव्वो मणुस्स-घोसो तुरिय निनाओ य सक्क वयणेणं ।
 खिप्पामेव निलुक्को, ताहे पडिवज्जइ चारित्रं । १०८९।
 (दिव्यो मनुष्यघोषस्तुरहीनिनादर्च शक्रवनेन ।
 क्षिप्रमेव निलुप्त, ततः प्रतिपद्यते चारित्रम् ।)

तदनन्तर शक्र के कथन से तत्काल देवों तथा मनुष्यों द्वारा
 किये जाने वाले जयघोष और तूर्य आदि वाद्यों की ध्वनि वन्द हो
 जायगी और प्रभु निर्ग्रन्थ चारित्र ग्रहण करेंगे । १०८९।

काऊण नमोक्कारं, सिद्धाणमभिग्गहं तु सो गिण्हे ।
 सव्वं मे अकरंगिज्जं, पावंति चरित्तमारूढो । १०९०।
 (कृत्वा नमस्कारं, सिद्धेभ्योऽभिग्रहं तु स गृह्णोत् ।
 सर्वं मे अकरणीयं, पापमिति चारित्रमारूढः ।)

वे सिद्धों को नमस्कार कर यह प्रतिज्ञा करेंगे:—“मेरे लिये
 सब प्रकार के पाप अकरणीय हैं” (अर्थात् मैं यावत्कीव अब किसी
 प्रकार का पाप नहीं करूँगा) और इस प्रकार की प्रतिज्ञा द्वारा
 वे चारित्र (पंच महाव्रत) ग्रहण करेंगे । १०९०।

तिहिं नाणेहिं समग्गा, तित्थयरा जाव होंति गिहवासे ।
 पडिवण्णम्मि चरित्ते, चउनाणी जाव छउमत्था । १०९१।
 (त्रिभिर्ज्ञानैः समग्राः तीर्थकराः यावत् भवन्ति गृहवासे ।
 प्रतिपन्ने चारित्रे, चतुर्ज्ञानी यावत् छद्मस्था ।)

वइसाह सुद्धदसमीए, केवलं नाम साल हेट्टं मि ।
 छट्ठेणुक्कडुय सबो, उप्पण्णं जंभिया गामे । १०९५।
 (वैशाख शुद्धदशम्यां. केवलं नाम सालस्य अधः ।
 षष्ठेन उत्कुट सतः, उत्पन्नं जृम्भिका ग्रामे)

वैशाख शुक्ला दशमी के दिन जृम्भिका नामक ग्राम के बाहर शालवृक्ष के नीचे उकडू (गोदोहिका) आसन से बैठे हुए वृत्ते की तपस्या से केवल ज्ञान प्राप्त करेंगे । १०९५

सेसाणंपि नवण्हं, एवं वइसाह सुद्धद समीए ।
 हत्थुचराहिं नाणं, होही जुगवं जिणंदाणं । १०९६।
 (शैपानामपि नवानां, एवं वैशाख शुद्ध दशम्याम् ।
 हस्तोत्तराभिर्ज्ञानं, भविष्यति युगपज्जिनेद्राणाम्)

इसी प्रकार शेष ६ क्षेत्रों के ६ (प्रथम) तीर्थंकर भी वैशाख शुक्ला दशमी के दिन हस्तोत्तरा नक्षत्र के योग में एक साथ (एक ही समय में) केवल ज्ञान प्राप्त करेंगे । १०९६।

उप्पणंमि अणंते, नट्टंमिउ छाउमात्थिए नाणे ।
 राइए संपत्तो, महसेणवणं तु उज्जाणं । १०९७.
 (उत्पन्ने अनन्ते, नष्टे तु छात्रस्थिके ज्ञाने ।
 रात्रौ सम्प्राप्तः, महासेन वनं तु उद्यानम् ।)

अनन्त ज्ञान अनन्त दर्शन और अनन्त चारित्र के उत्पन्न होने और छात्रस्थिक ज्ञान के नष्ट होने पर जम्बू द्वीपस्थ भरत क्षेत्र के आगामी उत्सर्पिणी काल के) प्रथम तीर्थंकर भगवान् महापद्म रात्रि के समय में ही विहार कर महासेन वन नामक उद्यान में समवसृत होंगे । १०९७।

अमरनर राय महिओ, पत्तो धम्मवर चक्कवाट्टित्तं ।
 वीयम्मि समोसरणे, पावाए मज्झिमाए उ । १०९८।
 (अमरनरराजमहितः, प्राप्तः धर्मवर चक्रवर्तीत्वम् ।
 द्वितीये समवसरणे, पावायां (अपायायां) मध्यमायां तु ।)

बहुत से केवलियों, मनःपर्यवज्ञान और अवधिज्ञान की ऋद्धि से सम्पन्न श्रमणों के समूह से परिवृत्त—सेवित वे त्रिभुवननाथ तीर्थंकर (अपने अपने क्षेत्रों में) विचरण करेंगे । ११०६।

वड्ढति जणवयवंसो, * नलिणिकुमार रायवंसो उ ।

सवभावो वि य वड्ढति, एवं कालाणुभावेण १११०।

(वद्धते जनपदवंशः, नलिनीकुमार राजवंशस्तु ।

सद्भावोऽपि च वद्धते, एवं कालानुभावेन ।)

इस प्रकार उत्सर्पिणी काल के ऊर्ध्वगामी वर्द्धमान काल प्रभाव से, जनपदों की संख्या-श्री-समृद्धि नलिनी कुमार का राज-वंश और सद्भाव (आगमज्ञान-सम्यग्ज्ञान) की उत्तरोत्तर अभिवृद्धि होगी । १११०।

निट्ठविय कम्मजालो, कत्तियवहुलस्स चरम रातीए ।

सिज्झिहिति नाम पउमो, अण्णाए पावा नगरीए । ११११।

(निष्ठापित कर्मजालः, कार्तिकवहुलस्य चरम रात्रौ ।

सेत्स्यति नाम पन्नः, अन्यायां अपापा नगर्याम् ।)

अन्त में जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र के आगामी उत्सर्पिणी काल के प्रथम तीर्थंकर महापद्म कार्तिक की मास के कृष्णपक्ष की अन्तिम रात्रि में शेष अघाती चार कर्मों के जाल को भी पूरांतः समाप्त कर अपर अपापा नगरी में सिद्ध, बुद्ध एवं मुक्त होंगे । ११११।

नवसु वि वासे सेवं, सिद्धत्थादीय जिणवरिंदाउ ।

साहंमि जोग-जुत्तो, कत्तियवहुलस्स अंतम्मि । १११२।

(नवस्वपि वर्षेत्वेवं, सिद्धार्थादियश्च जिनवरेन्द्राम्भु ।

स्वार्तौ योगयुक्ते, कार्तिकवहुलस्य अन्ते ।)

इसी प्रकार ढाई द्वीप के शेष चार भरत तथा पांच ऐरवत—इन ६ क्षेत्रों में भी सिद्धार्थ आदि उत्सर्पिणी काल के ६ प्रथम तीर्थंकर

* घाहोर ग्रामस्य श्री राजेन्द्रसूरि ग्रन्थागारादुपलब्ध प्रती तु 'वड्ढति जिणवयणवंसो'—इति पाठः विद्यते ।

(नवरं प्रतिलोमानि, तीर्थोद्गालिकेव्रीर भणितानि ।

तीर्थकरण् आगमिष्यतः नाम नामभिः कीर्तयिष्यामि ।)

इस अवसर्पिणी काल के २४० तीर्थंकरों के अन्तराल, आयु उत्सेध आदि का जो अनुक्रमशः वर्णन किया गया है, जिनेश्वर महावीर ने व्यतिक्रम अर्थात् प्रतिलोमात्मक अनुक्रम से वही अन्तर आयु उत्सेध आदि आगामी उत्सर्पिणी काल की दश चौबीसियों के तीर्थंकरों का भी तीर्थ-ओगाली (प्रवाहों) में बताया है । अब मैं आगामी उत्सर्पिणी काल के तीर्थंकरों का नामस्मरण-पूर्वक कीर्तन करूँगा । १११५।

महापउमे हिय सुरदेवे सुपासे य सयंपभे ।

सव्वाणुभूति अरहा, देवगुत्तो य होहिहि । १११६।

(महापद्मः हि च सुरदेवः सुपार्श्वश्च स्वयं प्रभः ।

सर्वानुभूति अर्हत्, देवगुप्तश्च भविष्यति ।)

महापद्म (१) सुरदेव (२), सुपाश्वं (३), स्वयंप्रभ (४),
सर्वानुभूति जिन (५) देवगुप्त (६) और--१११६।

उदग पेढाल पुत्ते य पोट्टिले सत्त गीत्तिय ।

मुणिसुव्वते य अरहा सत्त्वभाव विउज्जिणे । १११७।

(उदकः पेढालपुत्रश्च, प्रोट्टिलः शतकीर्तिश्च ।

मुनि सुव्रतश्च अर्हत्, सर्वभावविदो जिनाः ।)

उदक (७), पेढाल पुत्र (८) पोट्टिल (९), शतकीर्ति (१०),
मुनि सुव्रत अर्हत् (११)—ये त्रिकालवर्ती भावों को देखने जानने वाले
जिनेश्वर--१११७।

अममे णिक्कसाए य, निप्पुलाए य निम्ममे ।

चित्तपुत्ते समाही य, आगमिस्साए ते होहिति । १११८।

(अममः निष्कपायश्च, निष्पुलाकश्च निर्ममः ।

चित्रगुप्तः समाधिश्च, आगमिष्यायां भविष्यन्ति ।)

अमम (१२), निष्कपाय (१३), निष्पुलाक (१४), निर्मम (१५)
चित्रगुप्त (१६), समाधि (१७)—ये आगामी चौबीसी के तीर्थंकर
तथा--१११८।

(अणंत विजय त्रियक् (?), एते उक्ता चतुर्विंशतिः ।

भारते वर्षे केवलिनः, आगमिष्यायां भविष्यन्ति ।

। धर्मतीर्थस्य देशका ।)

अनन्त विचय (२३) और तियए [त्रियक् ?] (२४)- ये आगामी उत्सर्पिणी काल में भरत क्षेत्र में चीवोस धर्मतीर्थ के उप- देशक अथवा प्रवर्तक तीर्थ कर होंगे । ११२०।

एत्तो परंतु वोच्छं, तित्थगगणं तु नाम संखेवं ।

एरवते आगमिस्से, शिरसा वंदित्तु कित्तेहं । ११२१।

(इतः परं तु वक्ष्ये, तीर्थकराणां तु नाम संक्षेपम् ।

एरवते आगामीनां, शिरसा वन्दित्वा कीर्तयिष्येऽहम् ।)

अब इससे आग में आगामी उत्सर्पिणी काल के एरवत क्षेत्र में होने वाले तीर्थ करों को शिरः नमनपूर्वक वन्दन कर नामस्मरण के साथ संक्षेपतः कीर्तन कहूँगा । ११२१।

सिद्धत्थे पुण्ण घोसेव, महाघोसे य केवली ।

सुयसागरे य अरहा, समाहिं पडिदिसंतु मे । ११२२।

(सिद्धार्थः पुण्यघोषश्च, महाघोषश्च केवली ।

श्रुतसागरश्च अर्हत्, समाधिं प्रतिदिशंतु मे ।)

सिद्धार्थ (१), पुण्य घोष (२), केवली महाघोष (३) अर्हत् श्रुतसागर (४) मुझे समाधि प्रदान करें । ११२२।

सुमंगले अत्थसिद्धे य, निव्वाणे य महाजसे ।

धम्मज्झाए य अरहा, समाहिं पडिदिसंतु मे । ११२३।

(सुमंगलोऽर्थसिद्धश्च, निर्वाणश्च महायशः ।

धर्मध्यातश्च अर्हत्, समाधिं प्रतिदर्शयंतु मे ।)

सुमंगल (५), अर्थसिद्ध (६), निर्वाण (७), महायश (८), धर्मध्यात (९) अर्हत् मुझे समाधि प्रदान करें । ११२३।

सिरिचंदे दढकेत्ते, महाचंदे य केवली ।

दीहपासे य अरहा, समाहिं पडिदिसंतु मे । ११२४।

(विमले उत्तरश्चैव, अर्हच्च महावलः ।
देवानन्दश्च अर्हत्, समाधिं प्रतिदिशन्तु मे ।)

विमल (१८), उत्तर (१९), अर्हत् महावल (२०) और अर्हत् देवानन्द (२१) मुझे समाधि प्रदान करें । ११२७।

[इन पाथाओं में २४ के स्थान पर केवल २१ तीर्थंकरों के ही नाम हैं। बार-बार दुहराए गए—“समाहिं पडिदिसंतु मे”—इस पद में तीन नाम लुप्त हो गए हैं। आहोर से प्राप्त प्रति में तीसरे तीर्थंकर महाघोष का नाम नहीं है. कि लिपिक की असावधानी से वह नाम नहीं लिखा गया है ।]

एते बुत्ता चउव्वीसं, एरवतंमि य केवली ।
आगमेसाए होहिंति, धम्मतित्थस्स देसगा । ११२८।
(एते उक्ताश्चतुर्विंशति, एरवते च केवलिनः ।
आगामिन्यां भविष्यन्ति, धर्मतीर्थस्य देशकाः ।)

ये जो २४ तीर्थंकर बताये गये है वे आगामी उत्सर्पिणी काल में ऐरवत क्षेत्र में धर्मतीर्थ की स्थापना करने वाले होंगे । ११२८।

- सुमंगले य सिद्धत्थे, शिवाणो य महाजसे ।
धम्मज्झए य अरहा, प्रागमिस्साण होवखई । ८७
सिरिचंदे पुप्फकेऊ, महाचंदे य केवली ।
सुय सागरे य अरहा, प्रागमिस्साण होवखई । ८८
सिद्धत्थे पुण्णघोसे य, महाघोसे य केवली ।
सच्चसेणे य अरहा, प्रागमिस्साण होवखई । ८९
सूरसेणे य अरहा, महासेणे य केवली ।
सव्वाणंदे य अरहा, देवउत्तंम होवखई । ९०
सुपासे सुव्वए अरिहा, अरहे य सुकोसले ।
अरहा अणंतविजए, प्रागमिस्साण होवखई । ९१
विमले उत्तरे अरहा, अरहा य महावले ।
देवाणंदे य अरहा, प्रागमिस्साण होवखई । ९२

(नवस्त्रापि वर्षेण्वेवं, द्वादश द्वादश च चक्रवर्तिनः [चक्रवर्तयः]
एतेषां तु निधीन्, वक्ष्यामि समासतः श्रुणुत ।)

इस प्रकार ढाई द्वीप के पांच ऐरवत और शेष चार भरत—
इन ६ क्षेत्रों में भी प्रत्येक में वारह-वारह चक्रवर्ती होंगे । अब मैं इन
चक्रवर्तियों की निधियों का संक्षेपतः कथन कहूँगा, उसे
सुनिये । ११३१।

नेसप्प पंडु पिंगल, सव्वरयणवर तथा महापउमे ।

काले य महाकाले, माणवक महानिही संखे । ११३२।

(नैसर्पः पाण्डुकः पिङ्गलः, सर्वरत्नवर तथा महापद्मः ।

कालश्च महाकालः, माणवकः महानिधिः शंखः ।)

नैसर्प, पाण्डुक, पिङ्गल, सर्वरत्नवर, महापद्म, काल, महा-
काल, माणवक और शंख—ये चक्रवर्तियों की ६ निधियां होती
हैं । ११३२।

नेसप्पमि निवेशा, गामागरनगर पट्टणाइं तु ।

द्रोणमुहमडंवाणं, खंधाराणं गिहाणं च । ११३३।

(नैसर्पे निवेशाः, ग्राम-आकर-नगर-पत्तनानि तु ।

द्रोणमुख-मडम्बानि, स्कन्धावाराणि गृहाणि च)

नैसर्प निधि द्वारा निवेशों, ग्रामों, आकरों, नगरों, पत्तनों,
द्रोणमुखों, मडम्बों, स्कन्धावारों और गृहों का (तत्काल) निर्माण
किया जाता है । ११३३।

गणियस्स य उप्पत्ती, माणुम्माणस्स जं पमाणं च ।

धण्णस्स य वीयाण य, उप्पत्ती पंडुए भणिया । ११३४।

(गणितस्य च उत्पत्तिः, मान-उन्मानस्य यत् प्रमाणं च ।

धान्यस्य च वीजानां च, उत्पत्तिः पाण्डुके भणित्वा ।)

पाण्डुक निधि में गणित, मान, उन्मान, परिमाण, धान्य
एवं बीज आदि की उत्पत्ति बताई गई है । ११३४।

मन्त्राभ्यां विधिः, महिलानां वाच्यं होतृ पुत्रिणां ।

अथवाच्यं च इत्येषां च, विद्युत्कर्म विधिः मा भविष्यति ॥१३७॥

मन्त्राभ्यां विधिः, महिलानां वाच्यं होतृ पुत्रिणां च ।

अथवाच्यं च इत्येषां च, विद्युत्कर्म विधिः मा भविष्यति ॥

विद्युत्कर्म विधिः मा भविष्यति इत्येवमत्रोक्तं । अथवाच्यं च इत्येषां च इत्येवमत्रोक्तं । अथवाच्यं च इत्येषां च इत्येवमत्रोक्तं ।

(काले [कालनिधौ] कालज्ञानं, नव्यं पुराणं जचत्रिपु वर्षेषु = ।

शिल्पशतं कर्माणि च, त्रीणि ॐ प्रजायाः हितकराणि ।)

काल नामक निधि में वर्तमान वस्तु विषयों भावी तीन वर्षों के वस्तु विषयों का तथा अतीत तीन वर्षों के वस्तु विषयों का नवीन और पुरातन कालज्ञान तथा प्रजा के लिये हितकारी सैंकड़ों प्रकार के शिल्पों, कृषि वाणिज्यादि कर्मों एवं कालज्ञान की उत्पत्ति होती है । ११३८।

लोहाण य उप्पत्ती, होई महाकाले आगराणं च ।

रूपस्स सुवण्णस्स य, मणि मोत्ति सिलप्पवालाणं । ११३९।

(लोहानां च उत्पत्तिः, भवति महाकाले आकराणां च ।

रूप्यस्य स्वर्णस्य च, मणिमौक्तिकशिला [स्फटिक] प्रवालानाम् ।)

महाकाल निधि में सभी प्रकार के लोहों, विविध खनिजों चांदी, सोना, मणि, मौक्तिक, स्फटिक आदि शिलाओं एवं मूंगों (प्रवालों) की उत्पत्ति होती है । ११३९।

सेणाण य उप्पत्ती, आवरणाणं च पहरणाणं च ।

सब्बा य दण्डनीति, माणव्गे रायनीती य । ११४०।

(सैन्यानां च उत्पत्तिः, आवरणानां [संनाहानां], च प्रहरणानां च ।

सर्वा च दण्डनीतिः, माणवके राजनीतिश्च ।)

चक्रवर्तियों की मारुवक नामक निधि में चतुरंग सैन्यों, आवरणों (शत्रु के शस्त्रास्त्रों से रक्षा करने वाले तनुत्राणों, कवचों, ढालों, प्रहार करने योग्य सभी शस्त्रों, अस्त्रों, सब प्रकार की दण्डनीतियों एवं राजनीति की उत्पत्ति होती है । ११४०।

नट्टविही नाउगविही, कव्वस्स चउ व्विहस्स उप्पत्ती ।

संखे महानिहिम्मि, होई तुडियंगाणं च सब्वेसिं । ११४१।

= वर्तमानवस्तुविषय, अनागतवर्षत्रयविषय अतीतवर्षत्रयविषयमित्यर्थः ।

त्रीणि—कालज्ञान-शिल्पशत-कृषिवाणिज्यादिकर्माणि च-इत्यर्थः ।

(पल्योपम स्थितिकाः, निधिसदृशनामानश्च तेषु खलु देवाः।
तेषां ते आवासाः, मनोहर गुणराशिसंपन्नाः ।)

एक पल्योपम की श्रायु वाले तथा उन निधियों के समान नाम वाले देवता उन निधियों में रहते हैं। मनोहर गुणराशियों से सम्पन्न वे निधियां ही उन देवों के आवास होती हैं ॥११४४॥

ए ए ते नवनिहिओ, प्रभूयधणकणगरयणपडिपुण्णा ।

अणुसमयमणुव्वयंति, चक्रीणं सतत कालंमि * ॥११४५॥

(एते ते नवानधयः, प्रभूतधनकनकरत्नप्रतिपूर्णाः ।

अनुसमयमनुव्रजन्ति, चक्रीन् सतत काले ।)

ये, वो नौ निधियां हैं जो विपुल धन स्वर्ण, रत्नादि से परिपूर्ण रहती हैं। ये नौ निधियां चक्रवर्ती के सम्पूर्ण चक्रवर्तित्व काल में प्रतिक्षण चक्रवर्ती का अनुगमन करती हैं ॥११४५॥

आउग उच्चत्ताई, वण्णा रिद्धी य गति विसेसाई ।

ओसप्पिणी ईमीसे, समाई जा वंभदत्ताई ॥११४६॥

(आयु-उच्चत्वादि वर्णाः रिद्धयश्च गति विशेषाणि ।

अवसर्पिण्यामिमायां, समानानि यावत ब्रह्मदत्तः ।)

प्रवर्तमान अवसर्पिणी काल में प्रथम चक्रवर्ती भरत से लेकर अन्तिम चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त के चक्रित्व काल तक इन ६ निधियों को श्रायु ऊंचाई, वर्ण ऋद्धि और गति आदि विशिष्टताएं समान रहती हैं ॥११४६॥

एवं एते बुत्ता, किच्चीपुरिसाउ चक्किणो सव्वे ।

एत्तो परं तुवोच्छं, दसार वंसुब्भवा जेउ ॥११४७॥

(एवं एते उक्ताः, कीर्तिपुरुषास्तु चक्रिणः सर्वे ।

इतः परं तु वक्ष्यामि, दशार्हवंशोद्भवाः ये तु ।)

* स्थानांगे तु—'जे वसमुव गच्छंती, सध्वेसि चक्रवट्टीणं ।' इति पाठः ।
द्वितीय चरणो 'करण' शब्दस्याप्य भावः ।

(तिलकश्च जंघलोहश्च, वज्रजंघश्च केशरी चैव ।
प्रहरको ऽपराजितः, भीमः महाभीमः सुग्रीवः ।)

तिलक, लोहजङ्घ, वज्रजङ्घ, केशरी, प्रहरक, अपराजित
भीम, महाभीम और सुग्रीव—।११५१।—

एते खलु पडिसत्तू, किञ्चि पुरिसाण वासुदेवाणं ।
सव्वे विचक्क जोही, सव्वे वि हता सचक्केहिं = ।११५२।

(एते खलु प्रतिशत्रवः, कीर्तिपुरुषाणां वासुदेवानाम् ।
सर्वेऽपि चक्रयोद्धारः, सर्वेऽपि हताः स्वचक्रैः ।)

कीर्तिपुरुष वासुदेवों के ये ६ प्रतिशत्रु होंगे और अपने ही
चक्रों द्वारा मारे जायेंगे ।११५२।

एवं एते भणिता, उत्सर्पिणीए उ उत्तमा पुरि । ।
गरुय परक्कमपयडा, सम्मदिट्ठी चउप्पणं ।११५३।

(एवमेते भणिता, उत्सर्पिण्यास्त्वुत्तमाः पुरुषाः ।

गरुत् पराक्रमप्रकटाः, सम्यग्दृष्टयश्चतुःपञ्चाशत् ।)

इस प्रकार आगामी उत्सर्पिणी काल में जो कीर्तिपुरुष होंगे,
उनका कथन किया गया । वे चौवन कीर्तिपुरुष सर्वतः विख्यात, महा
पराक्रमी और समदृष्टि होंगे ।११५३।

तेसीतिलकख णवणउत्ति. सहम्सा नवमता य पणनउया ।
(वासा) मासा सत्तद्धुमा; दिणा य, धम्मो चउ समाए ।११५४।

(अथशीतिलक नवनवति सहस्रा नवशताश्च पंचनवतिः ।

(वर्षाः) मासा सप्त अर्द्धाष्टम. दिनाश्च धर्मश्चतुःसमायां ।)

तिरासी लाख निन्यांनवे हजार नौ सौ पच्यानवें (पूर्वांग ?)
साठे सात मास और आठ दिन तक आगामी उत्सर्पिणी काल के

= सम्यामांगे तु "सव्वे वि चक्कजोही, हम्मिहिति सचक्केहिं" अथवि
सर्वेऽपि चक्रयोद्धारः हनिष्यन्ते-धानिष्यन्ते च स्वचक्रैः । भावी प्रतिवायु-
देवैः; अविष्यत्कालक्रिया प्रयोग एव समीचीनः ।

आगामी उत्सर्पिणी काल के दुःषम-सुषम आरक का यह वर्णन किया गया । तृतीय आरक का कथन समाप्त हुआ । अब मैं उत्सर्पिणी काल के सुषम-दुःषम नामक चतुर्थ आरक के सम्बन्ध में कथन करता हूँ । ११५६।

पलितोवम लोहडूढ (?) परमाउं होइ तेसि मणुयाणं ।
उक्कोस चउत्थीए, पवडूढमाणउ रुक्खादी । ११५७।
(पल्योपमं साद्धं (?) परमायुः भवति तेषां मनुष्याणाम् ।
उत्कर्षं चतुर्थ्यां, प्रवद्धं मानास्तु वृक्षादयः ।)

उन (सुषम-दुःषम आरक के) मनुष्यों की उत्कृष्ट आयु एक पल्योपम होती है । ज्यों ज्यों इस चतुर्थ आरक का समय व्यतीत होता जाता है त्यों त्यों कल्पवृक्ष आदि बढ़ते-वृद्धिगत रहते हैं । ११५७।

जह जह वडूढइ कालो, तह तह वडूढंति कप्परुक्खादी ।
एकं गाउगमुच्चा, नर नारी रूव संपण्णा । ११५८।
(यथा यथा वद्धंते कालस्तथा तथा वद्धंन्ते कल्पवृक्षादयः ।
एकं गाउकमुच्चा, नरनार्यः रूपसम्पन्नाः ।)

ज्यों ज्यों समय बीतता जाता है, त्यों त्यों कल्पवृक्षादि की वृद्धि होती रहती है । एक गाउ (माप विशेष क्रोश) की ऊंचाई वाले उस समय के नर-नारीगण बड़े रूप सम्पन्न होते हैं । ११५८।

मूलफलकंदनिम्मल, नाणा विह इड्डगंध रस भ ई ।
ववगतरोगातंका, सुरू य सुर दुंदुहि थणिया । ११५९।
(मूलफलकंदनिर्मल, नानाविधेष्टगंधरसभोजिनः ।
व्यपगत रोगातंकाः. सुरूप-सुरदुंदुभिस्तनिताः ।)

उस आरक के मानव अनेक प्रकार के सुगन्धित गन्ध रस वाले निर्मल कन्द-मूल-फलों का उपभोग करने वाले, रोग अथवा आतंक विहीन, सुन्दर रूप-सम्पन्न और देवदुन्दुभि के निर्घोष के समान मधुर स्वर वाले होते हैं । ११५९।

मन्त्रं यथा विद्वान्, तेषु पुरिमा नाय ह्येति महिलाड ।

निरयोद्धप्रपुष्पकला, तेषु विय मन्त्रा गुणमविदा ॥१६०॥

(मन्त्रान्तरप्रनविदारिणः तेषु पुष्पाम्नादन भवन्ति महिलास्तु ।

निरयोद्धे क पुष्पकलाः, तेषुपि न शूभाः गुणममृदाः ।)

विद्यमानेषु च शब्दाः, नामानि च सात भेदात् विद्यन्ते ।
 एतेषां संज्ञासंज्ञायाः, संज्ञायाः प्रत्ययसंज्ञायाः ११, १२, १३ ।
 (विद्यमानेषु च शब्दाः, नामानि च सात भेदात् विद्यन्ते ।
 एतेषां संज्ञासंज्ञायाः, संज्ञायाः प्रत्ययसंज्ञायाः १)

(एषा उपभोगविधिः, समासतः भवति पंचमे आरके ।
कोट्याकोट्यस्त्रीणिस्तु, पष्ठं आरकं तु वक्ष्यामि ।)

तीन कोटा-कोटि सागरोपम की स्थिति वाले सुःपमा नामक पंचम आरक में, जैसा कि संक्षेपतः बताया गया—इस प्रकार की उपभोग विधि होती है। अब मैं उत्सर्पिणी काल के छठे आरक के सम्बन्ध में कथन करूंगा । ११७०।

सुसम सुसमाए कालो, चत्वारि हवंति कोटिकोटीउ ।
इय सागरोवमाणं, काल प्रमाणेण नायच्चो । ११७१।
(सुपम-सुपमायां कालः, चत्वारि भवन्ति कोटिकोट्यस्तु ।
एवं सागरोपमानां, कालप्रमाणेन ज्ञातव्यः)

सुपम-सुपम नामक (उत्सर्पिणी के षष्ठम) आरक काल प्रमाण से चार कोटाकोटि सागरोपम का होता है । ११७१ः
जह जह वड्डइ कालो, तह तह वड्डंति आउ दीहादी ।
उवभोगा य नराणां, तिरियाणं चैक रुक्खेसु । ११७२।
(यथा यथा वर्धते कालस्तथा तथा वर्द्धन्ते आयुदीर्घतादि ।
उपभोगाश्च नराणां, तिर्यञ्चानां चैव वृक्षेषु)

ज्यों ज्यों समय आगे की ओर बढ़ता जाता है, त्यों त्यों मनुष्यों एवं तिर्यञ्चों की आयु, शरीर की ऊंचाई तथा उन्हें कल्पवृक्षों से प्राप्त होने वाली भोग सामग्री की वृद्धि होती जाती है । ११७२।

सुसम सुसमाए मणुयाणं, तिण्णेव गाउयाइं उच्चत्तं ।
तिन्नि पलिओवमाइं, परमाउंतेसिं होइ बोधच्चं । ११७३।
(सुपम सुपमायां मनुजानां, तिस्त्र, एव गच्युतयः उच्चत्वम् ।
त्रीण्येव पल्योपमानि, परमायुस्तेषां भवति (इति) बोद्धव्यम् ।)

सुःपम-सुःपम नामक आरक में मनुष्यों के शरीर की ऊंचाई तीन गच्युति (कोस) और उत्कृष्ट आयु ३ पल्योपम होती है, यह जानना चाहिये । ११७३।

मदस्य सुखस्यैव स्वप्नं, सोऽमुच्यते सुखस्यैव स्वप्नमिति ॥

अथैवम् सुखस्यैव स्वप्नं, इति चोक्तं सुखस्यैव स्वप्नमिति ॥ ११० ॥

(सुखस्यैव स्वप्नमिति चोक्तं, सोऽमुच्यते सुखस्यैव स्वप्नमिति ॥

अथैवम् सुखस्यैव स्वप्नं, इति चोक्तं सुखस्यैव स्वप्नमिति ॥)

अथैवम् सुखस्यैव स्वप्नं, इति चोक्तं सुखस्यैव स्वप्नमिति ॥
 अथैवम् सुखस्यैव स्वप्नं, इति चोक्तं सुखस्यैव स्वप्नमिति ॥
 अथैवम् सुखस्यैव स्वप्नं, इति चोक्तं सुखस्यैव स्वप्नमिति ॥
 अथैवम् सुखस्यैव स्वप्नं, इति चोक्तं सुखस्यैव स्वप्नमिति ॥

(द्विष्यते वा भवति ० मुञ्जा, पन-स्त्रिय-मुद्रित्यष्ट चद्र मंधिताः ।
वा पीतसंमुद्रित्याः, मनुसंगुण-पद्मसुन्दर मीमाः ।)

मन्त्रात् एव मुद्रित्यात् एव एव मन्त्र के द्वारा की जाती है मन्त्रात्
एव मुद्रित्यात् एव मन्त्रात्, मुद्रित्यष्ट मुद्रित्यष्ट चद्र मन्त्रात्
एव एव एव एव मन्त्रात्, मन्त्रात् एव एव एव
एव एव एव एव मन्त्रात्, मन्त्रात् एव एव एव
एव एव एव एव मन्त्रात्, मन्त्रात् एव एव एव
एव एव एव एव मन्त्रात्, मन्त्रात् एव एव एव

प्रकाशक :

द्वेताम्बर (चार घुई) जैन संघ, जालोर
श्वेताम्बर (चार घुई) जैन संघ तखतगढ (पाली)
श्री अचलचन्द, जोड़तमल बालगोता
घोठवाड़ा (जालोर)

पुस्तक संस्करण ५००

महावीर निर्वाण जयन्ती २५०० वाँ वर्ष

५०

कालिका २०१२

(१) श्री कल्याण विजय शास्त्र मंगलिक,
जालोर

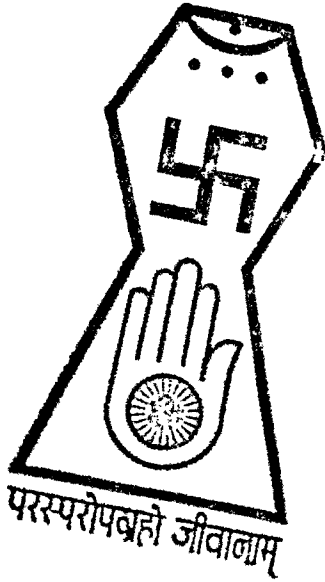
(२) श्री सन्दीपन शर्मा कार्यालय, जालोर

अहिंसा सत्याऽस्तेयादि, ब्रह्माऽपरिग्रहात्मकः ।
प्रोक्तो पंचशिखो धर्म-स्तं वीरं प्रणमाम्यहम् ॥

सुकने : शताब्दिसुमहे तव पञ्चविंशो,
भक्त्या प्रद्वष्ट मनसा च समर्पयामि ।
तीर्थप्रवाहविषये स्फुटमर्थं पूर्णं,
तुभ्यं प्रकीर्णकमिदं श्रमणेन्द्र वीर !

बालोर, १ मई, १९७५

पन्थासः गणिः कल्याणविजयः



परस्परपब्रह्मो जीवानाम्

नाणं च चरित्रमुत्तमं, तुवभै पुव्वपुरिसाणुदिण्णं ।
 लग्गंति जे य पुरिसा, मग्गं निव्वणगमणस्स । ११९७।
 ज्ञानं च चारित्रमुत्तमं, युष्मभ्यं पूर्वपुरुषानुदत्तम् ।
 लग्नन्ति ये च पुरुषाः, मार्गं निर्वाणगमनस्य ।)

पूर्व पुरुषों द्वारा तुम्हें प्रदत्त अर्थात् बताया हुए मोक्षगमन के मार्ग उत्तम ज्ञान और चारित्र में जो पुरुष अग्रसर होते हैं (वे धन्य-हैं) । ११९७।

तह तह करेह सिग्घं, जह जह मुच्चह कसाय-जालेण ।
 किसलदलग्गसंठिय, जललव इव चंचलं जीयं । ११९८।
 तथा तथा कुरुत शीघ्रं. तथा यथा मुच्यते कषाय जालेन ।
 किसलय दलाग्र संस्थित, जल लवेव च चंचल जीवितम् ।)

शीघ्रता पूर्व उस तरह के सब प्रयास करो, जिनके द्वारा कषायों के जाल से मुक्त हो सको क्योंकि किसी पौधे के पत्ते पर पड़े जल-कण के समान जोवन अतोव चञ्चल अर्थात् क्षण विध्वंसी है । ११९८।

धण्णाणं तु कसाया, जगडिज्जंता वि अण्णमन्नं हिं ।
 नेच्छंति समुट्ठेउं, सुणिविट्ठो पंगुलो जेव । ११९९।
 धन्यानां तु कषायाः, जागृह्यमाना अपि अन्योन्यैः ।
 नेच्छन्ति समुत्थातुं, सुनिविष्टः पंगुलः यथैव)

धन्यभाग्य प्राणियों के कषाय परस्पर एक दूसरे द्वारा जगाये जाते रहने पर भी अच्छी तरह सुख पूर्वक बैठे हुए पंगु की तरह उठने की इच्छा नहीं करते । ११९९

उवसाममुवणीयं, गुणमहयाजिणचरित्त सरिसं पि ।
 पडिपाएंति कसाया, किं पुण सेसे सरामत्थे । १२००।
 (उपशममुपनीतं, गुणमहत्तया जिनचरित्रमदृशमपि ।
 प्रतिपातयन्ति कषायाः, किं पुनः शेषान् सरामस्थान् ।)

द्वारों से प्रमाणवत् की दृष्टि से जीवद्वारों के परिवर्तन की सुलभता के लिये कार्य-प्रमाण की-प्रमाण-अनुक्रम-दृष्टिकोण की भी प्रमाण-मौलिक की धारा विद्यमान है, तब से यही धारा शरीरों की कार्य-ही प्रमाण है । १२०५ ।

विश्वामित्रमुपनिषत्सु, यथाया यन्मन्त्र उच्यते ।

यन्मन्त्र उच्यते, निष्कलं तन्मन्त्रं नाममन्त्रम् । १२०६ ।

(विश्वामित्रमुपनिषत्सु, यथाया यन्मन्त्र उच्यते: अर्थम् ।

यन्मन्त्रं नाममन्त्रम् । निष्कलं तन्मन्त्रं नाममन्त्रम् ।)

जह जह दोसोवरमो, जह जह विसयेसु होइ वैरगंग ।
 तह नायव्वं तं खलु, आसन्नं मे पदं परमं । १२०४।
 (यथा यथा दोषो परमः, यथा यथा विषयेषु भवति वैराग्यम् ।
 तथा ज्ञातव्यं तत् खलु, आसन्नं मे पदं परमम् ।)

ज्यों ज्यों दोषों में अनिच्छा अर्थात् दोषों से दूर रहने की वृत्ति होती है और ज्यों ज्यों विषय-कषायों के प्रति वैराग्य भावना जागृत होती है त्यों त्यों समझना चाहिये कि परमपद मोक्ष मेरे निकट आ रहा है । १२०४।

दुग्गमभवकंतारे, भ्रममाणेहिं सुइरं पण्डुहिं ।
 दल्लहो जिणोवदिट्ठो, सोग्गइ मग्गो इमो लद्धो । १२०५।
 (दुर्गम भवकान्तारे, भ्रममानैः सुचिरात् प्रणष्टैः ।
 दुर्लभः जिणोपदिष्टः, सुगति मार्गं अयं लब्धः ।)

भव रूपी इस दुर्गम अटवी में भ्रमण करते करते चिरकाल से भटके-नष्ट हुए हमने, जिनेश्वर द्वारा प्ररूपित सुगति का यह दुर्लभ मार्ग पाया है । १२०५।

इणमो सुगतिगइ पहो, सुदेसिओ उ जओ जिणवरेण ।
 ते धन्ना जे एयं, पंहमणवज्जमोतिण्णा । १२०६।
 (एष मुक्तिगतिपथः, सुदेशितस्तु यत् जिनवरेण ।
 ते धन्याः ये एतं पथं मनवद्यमवतीर्णाः ।)

जो यह मोक्ष का मार्ग जिनवर ने उपदेश द्वारा दिखाया है, उस पर जो व्यक्ति अग्रसर हुए हैं, वे धन्य हैं । १२०६।

जाहे य पावियव्वं, इय परलोणे य होइ कल्लाणं ।
 ताहे जिणवरभणियं, पडिवज्जह भावतो धम्मं । १२०७।
 (यदा च प्राप्तव्यं, इह पर लोके च भवति कल्याणम् ।
 तर्हि जिनवरभणितं, प्रतिपद्यस्व भावतः धर्मम् ।)

(सम्यग्दर्शनं मूलं, द्विविधं धर्मं समासत उक्तम् ।
ज्येष्ठं च श्रमण धर्मं, श्रावक धर्मं च अनुज्येष्ठम् ।)

सम्यक् दर्शन का मूल संक्षेपतः दो प्रकार का धर्म बताया गया है उन दो प्रकार के धर्मों में से ज्येष्ठ धर्म है श्रमण धर्म और उस ज्येष्ठ धर्म के पश्चात् दूसरा धर्म है श्रावक धर्म । १२११।

जा जिणवरदिट्ठानं, भावार्णं सद्वहणया सम्मं ।
अत्तणओ बुद्धीयया, सोऊण व बुद्धि मंताणं । १२१२।
(या जिनवर दृष्टानां, भावानां श्रद्धधनया सम्यक्त्वम् ।
आत्मनः बुद्धू या, श्रुत्वा वा बुद्धिमन्तेभ्यः ।)

या तो त्रिकालदर्शी जिनेश्वरों द्वारा देखे-जाने एवं प्ररूपित भावों पर श्रद्धा करने से सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है या तत्त्वदर्शी ज्ञान स्थावरों से सुनकर अथवा स्वयं की बुद्धि से तत्त्व चिन्तन द्वारा सम्यक्त्व प्राप्त किया जा सकता है । १२१२।

मिच्छाविगप्पिएसु य, अत्थिकुसासणोवदिट्ठेसु ।
एतं मेव मित्तिरुई, सुद्धं तं होइ संमत्तं । १२१३।
(मिथ्या विकल्पितेषु च, अस्ति कुशासनोपदिष्टेषु ।
एतन्मैवमिति रुचिः, शुद्धं तद् भवति सम्यक्त्वम् ।)

मिथ्या विकल्पित कुशासनों द्वारा उपदिष्ट सिद्धान्तों में जो कुछ है, वस्तुतः वह वैसा नहीं है, इस प्रकार की रुचि होने पर शुद्ध सम्यक्त्व होता है । १२१३।

एगंते मिच्छत्तं, जिणाण आणा य होइ योगंतो ।
एगं पि असद्दहिओ, मिच्छादिट्ठी जमालिच्च । १२१४।
(एकान्ते मिथ्यात्वं, जिनानामाज्ञा च भवति नैकान्तः ।
एकमपि अश्रद्दघतः, मिथ्यादृष्टिः जमालीव ।)

वस्तुतः एकान्त में मिथ्यात्व है, जिनेश्वरों की आज्ञा अनेकान्त को स्वीकार करने की है । जिनेश्वर द्वारा प्ररूपित सिद्धान्तों में से

एतन्मोक्षं तद्विदित् विद्वोः पुत्राः सन्त एव भी भवन्त्याः कर्त्तव्याः । तेषां यद्
कदाचिद्दीर्घमात्रं विद्वत्पत्नी भवेत् ॥ १२२४ ॥

विजगत्तमन्त्रं प्रणिमन्तो, परमामिहर्षोऽन्तः प्रियदर्शिनो वि ।

न च निवमन्तो वि ज्ञानो, विजगत्तमन्त्रं चातिरमर्षो ॥ १२२५ ॥

(विजगत्तमन्त्रं प्रणिमन्तो, कश्चिद् इह मोक्षविग्रहोऽपि ।

न च निवमन्तो यतोऽपि ज्ञानः, विजगत्तमन्त्रं चातिरमिह ॥)

विजगत्तमन्त्रं के शब्दं प्रविष्टं यत्रैव वाचा प्रविष्टं तादृशं अर्थगतं
मोक्षं के शब्दितं प्रकृतं विद्वानो वि चोऽप्यर्थं विद्वानो वा वाचमन्त्रं न चो
कश्चिद्दीर्घमात्रं यद् कदाचिद्विजगत्तमन्त्रं के शब्दं प्रविष्टं वाचा प्रविष्टं
विजगत्तमन्त्रं के शब्दं प्रविष्टं ॥ १२२५ ॥ (अर्थो वि ।)

इह विजगत्तं जज्ञे, सुहृद्वर्षिणं मोक्षप्रिया वि शानिर्णं ।

सुहृदां शानिं वि जज्ञे, सुहृद्वर्षिणा जज्ञे मोक्षं ॥ १२२६ ॥

(मोक्षं विजगत्तं जज्ञे यत्पुत्रे, मोक्षं विजगत्तं शानिर्णं ।

सुहृदां शानिं वि जज्ञे, सुहृद्वर्षिणा जज्ञे मोक्षं ॥)

विजगत्तमन्त्रं के शब्दं प्रविष्टं यत्रैव वाचा प्रविष्टं तादृशं अर्थगतं
मोक्षं के शब्दितं प्रकृतं विद्वानो वि चोऽप्यर्थं विद्वानो वा वाचमन्त्रं न चो
कश्चिद्दीर्घमात्रं यद् कदाचिद्विजगत्तमन्त्रं के शब्दं प्रविष्टं वाचा प्रविष्टं
विजगत्तमन्त्रं के शब्दं प्रविष्टं ॥ १२२६ ॥

सुहृदां विजगत्तं सुहृद्वर्षिणं, मोक्षं विजगत्तं शानिर्णं ।

मोक्षप्रियां शानिं वि जज्ञे, सुहृद्वर्षिणा जज्ञे मोक्षं ॥ १२२७ ॥

(मोक्षप्रियां शानिं वि जज्ञे, मोक्षं विजगत्तं शानिर्णं ।

मोक्षप्रियां शानिं वि जज्ञे, सुहृद्वर्षिणा जज्ञे मोक्षं ॥)

मोक्षप्रियां शानिं वि जज्ञे, सुहृद्वर्षिणा जज्ञे मोक्षं ॥ १२२७ ॥

(अष्टेन चारित्रात्, सुष्ठुतरं दर्शनं गृहीतव्यम् ।
सिद्धयन्ति चरणहीनाः, दर्शनहीना न सिद्धयन्ति ।)

यदि कदाचित् कोई व्यक्ति दुर्भाग्यवशात् चारित्र से अष्टभी हो जाय तो उसे दर्शन का अच्छी तरह दृढ़ता पूर्वक पकड़ लेना चाहिए । क्यों कि चारित्र से होन व्यक्ति 'सद्ध (कर्मबन्ध से विमुक्त) हो जाते हैं किन्तु दर्शन हीन व्यक्ति कभी सिद्ध नहीं होते । १२१८।

एत्थ य संका कंखा, वित्तिगिच्छा अन्नदिट्ठिय पसंसा ।
परतित्थिय संथव्वो, पंच हासंति सम्मत्तं १२१९।
(अत्र च शंकाऽऽकांक्षा, विचिकित्सा अन्य दृष्टिक प्रशंसा ।
परतीर्थिक संस्तवः, पञ्च ह्यासन्ति सम्यक्त्वम् ।)

यहां (यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि) शंका आकांक्षा, विचिकित्सा (संशय), अन्य दर्शन को मानने वालों की प्रशंसा और परतीर्थिकों की स्तुति-ये पांच दांप सम्यक्त्व का ह्यास करने वाले हैं । १२१९।

संकादि दोषरहितं, जिण सासण कुशलयाइ गुण जुत्तं ।
एयं तं जं भणियं. मूलं दुविहस्स धम्मस्स १२२०।
(शंकादि दोष रहितं, जिनशासन कुशलतादि गुणयुक्तम् ।
एतत्तद्भूद् भणितं, मूलं द्विविधस्य धर्मस्य ।)

शंका, आकांक्षादि दोषों से सर्वथा दूर रहना और जिनशासन में प्रगाढ़ निष्ठा रखते हुए जिनाज्ञानुसार आचरण-प्रचार-प्रसार आदि गुणों से युक्त कौशल प्रकट करना यही दो प्रकार के धर्म (श्रमण धर्म और श्रावक धर्म) का मूल बताया गया है । १२२०।

जिण सासणे कुशलया, पभावणा य तणसेवणा य ।
विरति भत्ती य गुणा, सम्मत्त दीवगा उत्तमा पंच । १२२१।
(जिन शासने कृशलता, प्रभावना च तणसेवना च ।
विरतिः भक्तिश्च गुणाः, सम्यक्त्वदीपका उत्तमा पञ्च ।)

इति सामने (विष्णुसंहितासूक्त) में वृक्षावना प्रभावना, वृक्ष
वेदना (का वेदना ?), विरचित और वेदित-से पांच वक्ष्य सुगम सम्भ-
वान् वा प्रवीण (प्रकाशित) करने वाले हैं । (१२२२)।

सर्वान् सव्य इतिशेष, वीतगगाय ओ विष्णा ।

सहा विष्णुस्यवर्षा, अविद्वदिति भावतो सुगह । (१२२२)।

(सर्वेषाः सर्वदक्षिणतः, वीतरागद्वय-यजिज्ञसाः ।

सम्पद्युः सितरश्मयन्, अविद्वदिति भावतः ज्ञानीदि ।)

यहाँ कि विष्णुसंहितासूक्त सव्य-समेतनी और वीतराग हीके
है वक्ष्य विष्णुसंहितासूक्त की काफी सादरता प्राप्त होती है पर ह-
सव्यका आन सुगम भावना आदिमें (१२-२२)।

सर्वेषां सव्य, विष्णुस्य सन्निभे महाविद्यया ।

सहास्यवर्षाणां, दृश्यावर्षाणां च मणिपिठम् । (१२२३)।

(सर्वेषां सव्य, सहास्यवर्षाणां च महा विद्यया ।

सहास्यवर्षाणां, दृश्यावर्षाणां च मणिपिठम् ।)

सहास्यवर्षाणां सहास्यवर्षाणां सहास्यवर्षाणां सहास्यवर्षाणां
सहास्यवर्षाणां सहास्यवर्षाणां सहास्यवर्षाणां सहास्यवर्षाणां
है (१२-२३)।

यौ सहास्यवर्षाणां, सहास्यवर्षाणां सहास्यवर्षाणां ।

यौ सहास्यवर्षाणां, सहास्यवर्षाणां सहास्यवर्षाणां । (१२२४)।

(यौ सहास्यवर्षाणां, सहास्यवर्षाणां सहास्यवर्षाणां सहास्यवर्षाणां ।

यौ सहास्यवर्षाणां, सहास्यवर्षाणां सहास्यवर्षाणां सहास्यवर्षाणां ।)

यहाँ की सहास्यवर्षाणां सहास्यवर्षाणां सहास्यवर्षाणां सहास्यवर्षाणां
सहास्यवर्षाणां सहास्यवर्षाणां सहास्यवर्षाणां सहास्यवर्षाणां
सहास्यवर्षाणां सहास्यवर्षाणां सहास्यवर्षाणां सहास्यवर्षाणां
सहास्यवर्षाणां सहास्यवर्षाणां सहास्यवर्षाणां सहास्यवर्षाणां
सहास्यवर्षाणां सहास्यवर्षाणां सहास्यवर्षाणां सहास्यवर्षाणां
है (१२-२४)।

नाणाहितो चरणं. पंचहिं समिद्धिं तिहिं गुत्तीहिं ।
 एयं सीलं भणियं, जिणेहिं तेलोक्कदंसी हि । १२२५ ।
 (ज्ञानेभ्यः चरणं, पंचभिर्समितिभिस्त्रिभिर्गुप्तिभिः ।
 एतत् शीलं भणितं, जिनैस्त्रैलोक्यदर्शिभिः ।

ज्ञान से पांच समितियों और तीन गुप्तियों सहित चारित्र्य की उपलब्धि होती है । त्रैलोक्यदर्शी जिनेश्वरों ने इसे शील बताया है । १२२५ ।

शीले दोन्नि वि नियमा, सम्मत्तं तह य होइ नाणं च ।
 तिण्हं वि समायोगे, मोक्खो जिण सासणे भणिवो । १२२६ ।
 (शीले द्वावपि नियमात्, सम्यक्त्वं तथा च भवति ज्ञानं च ।
 त्रयाणामपि समायोगे, मोक्षाः जिनशासने भणितः ।)

शील में नियमतः सम्यक्त्व और ज्ञान दोनों ही होते हैं । जिन शासन में इन तीनों (शील, सम्यक्त्व और ज्ञान) के समायोग पर मोक्ष की प्राप्ति बताई गई है । १-२६ ।

असरीरा जीव घणा, उवउत्ता दंसणे य नाणे यं ।
 सागारमणागारं. लक्खणमेयं तु सिद्धाणं । १२२७ ।
 (अशरीराः जीवघना, उपयुक्ता दर्शने च ज्ञाने च ।
 सागारमनागारं, लक्षणमेतत्, सिद्धानाम् ।)

अशरीरी अर्थात् अरूपी, शरीर न होने के कारण केवल जीव-स्वरूप—अतः एव घन ज्ञान और दर्शन में उपयुक्त अर्थात् ज्ञान-दर्शन स्वरूप अथवा ज्ञान-दर्शन की सजा वाले तथा सागार अणुगार-यह सिद्धों का स्वरूप है । १२२७ ।

सव्वड्ढ विमाणाओ, सव्वोपरि सा उ भूमिया ।
 बारसहिं जोयणेहिं, इत्तिपभार पुटवीओ । १२२८ ।
 (सर्वार्थ विमानान् सर्वोपरि सा तु स्तूपिका ।
 द्वादशाभिर्योजनै, ईषत्प्राग्भारा नाम पृथिवीतः ।)

सर्वोपनिषद् विभाग में हुए जोड़ने के लिये, लोक में सर्वोपनिषद्
सर्वोपनिषद् के अन्तर्गत पर, ईश्वरप्राप्तकार नाम की यह भूमि (विद्य
विद्य) प्रकाश में लक्षित है । १२२०।

विश्वविद्यालय प्रस्ताव, तुषार गीतों द्वारा लक्षित ।
सर्वोपनिषद् विभाग में, उच्चतम एवं मंत्राणा १२२१।
(विश्वविद्यालय प्रस्ताव, तुषारगीतों द्वारा लक्षित ।
सर्वोपनिषद् विभाग में, उच्चतम एवं मंत्राणा ।)

विश्वविद्यालय द्वारा यह प्रस्ताव, विश्वविद्यालय की लक्षित, तुषार,
सर्वोपनिषद् के अन्तर्गत पर, ईश्वरप्राप्तकार नाम की यह भूमि (विद्य
विद्य) प्रकाश में लक्षित है । १२२२।

विश्वविद्यालय, सर्वोपनिषद् की लक्षित ।
सर्वोपनिषद् की लक्षित, विश्वविद्यालय १२२३।
(विश्वविद्यालय प्रस्ताव, विश्वविद्यालय प्रस्ताव ।
सर्वोपनिषद् विभाग में, विश्वविद्यालय प्रस्ताव ।)

विश्वविद्यालय प्रस्ताव, विश्वविद्यालय प्रस्ताव, विश्वविद्यालय प्रस्ताव
के अन्तर्गत पर, ईश्वरप्राप्तकार नाम की यह भूमि (विद्य
विद्य) प्रकाश में लक्षित है । १२२४।

विश्वविद्यालय प्रस्ताव, विश्वविद्यालय प्रस्ताव ।
विश्वविद्यालय प्रस्ताव, विश्वविद्यालय प्रस्ताव । १२२५।
(विश्वविद्यालय प्रस्ताव, विश्वविद्यालय प्रस्ताव ।
सर्वोपनिषद् विभाग में, विश्वविद्यालय प्रस्ताव ।)

विश्वविद्यालय प्रस्ताव, विश्वविद्यालय प्रस्ताव, विश्वविद्यालय प्रस्ताव
के अन्तर्गत पर, ईश्वरप्राप्तकार नाम की यह भूमि (विद्य
विद्य) प्रकाश में लक्षित है । १२२६।

वह ईषत् प्राग्भारा पृथ्वी ४५,०००० (पैंतालीस लाख) योजन विस्तीर्ण और तीन गुना अधिक योजनों की परिधि वाली है-यह जानना चाहिये ॥१२३१॥

एगा जोयण कोडी, वायालीसं च सयं सहस्साइं ।
तीस च सहस्साइं, दोयसयाअ ऊणवीसाउ ।१२३२।
(एका योजनकोटिः, द्वात्रिंशच्च शत सहस्राणि ।
त्रिंशच्च सहस्राणि, द्वेशते च एकोनविंशतिस्तु)

उस पृथ्वी का, एक करोड़, बयालीस लाख, तीस हजार, दो सौ उन्नीस योजन ॥१२३२॥

[अ] खेत्त समत्थ वित्थिन्ना, अट्टेव जोयणाइं वाहल्लं ।
परिहायइ चरिमन्ते, मच्छि य पत्तउ तणुयतरी ।१२३३।
(क्षेत्र समस्त विस्तीर्णा, अष्टावेव योजनानि वाहल्या ।
परिहीयते चरमान्ते, मक्षिकापत्रात्तनुतरी ।)

विस्तृत क्षेत्रफल और मध्य में आठ योजन वाहल्य (दीर्घता-अथवा मोटाई) है । वह पृथ्वी मध्य भाग से चारों ओर उत्तरोत्तर पतली होते होते अन्त में मक्खी के पंख से अधिक प्रतली है ॥१२३३।(अ)

गंतूण जोयणं तु, परिहाइ अंगुल पहुचं ।
संखतूल संनिगासा +, परंता होति पतणु सा १२३३।
(गत्वा योजनं तु, परि हीयते अंगुल पृथक्त्वं ।
संखतूल संनिकाशा, परं-परंतावत् भवति प्रतनु सा ।)

मध्य भाग से लेकर वह संख अथवा रूई के समान वर्ण वाली ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी क्रमशः एक एक योजन के अन्तर पर एक एक अंगुल प्रमाण पतली होते होते अन्त में नितान्त पतली हो गयी है ॥१२३३।(ब)

(अलोकै प्रतिहताः सिद्धाः, लोकाग्रं च प्रतिष्ठिता ।

इह बोन्दिः (शरीरं) त्यक्त्वा, तत्र गत्वा सिद्धयन्ति ।)

अलोक में सिद्धों की गति प्रतिहत (अवरुद्ध) हुई अर्थात् रुकी । वे लोक के (ऊपरी) अग्र भाग में प्रतिष्ठित हैं । यहां (तिर्यक लोक में) देह त्याग, वहां लोकाग्र में जाकर सिद्ध होते हैं । १२३८।

दीर्घं वा ह्रस्वं वा, जं संठाणं तु आसि पुञ्चभवे ।

तत्रो त्रिभाग हीणा, सिद्धाणोगाहणा भणिता । १२३८।

(दीर्घं वा ह्रस्वं वा, यत् संस्थानं तु आसीत् पूर्वभवे ।

तत्रः त्रिभागहीनाः, सिद्धानामवगाहनो भणिता ।)

पूर्व भव में, दीर्घ अथवा ह्रस्व जो भी शरीर का संस्थान था, उससे तीन भाग कम अर्थात् एक चौथाई अवगाहना कही गई है । १२३८।

जं संठाणं तु इहं, भवं चयन्तस्स चरिम समयम्मि ।

आसी य परासघणं, तं संठाणं तहिं तस्स । १२३९।

(यत् संस्थानं तु इह, भवं त्यजतः चरम समये ।

आसीत् च प्रदेशघनं, तत् संस्थानं तत्र तस्य ।)

यहां अन्तिम काल में भव अर्थात् जन्म-मरण का अन्त करते समय शरीर के प्रदेश घन रूपी शरीर का संस्थान था वही संस्थान उस सिद्धयमान व्यक्ति का सिद्ध हो जाने पर वहां उस ईपत् प्राग्भारा पृथ्वी (सिद्धशिला) पर रहता है । १२३९।

उत्ताण उच्च पासिल्ल, उच्चट्टियओनिसन्नओ चैव ।

ओ जह करेद कालीं (कालं) सो तह उववज्जए सिद्धो । १२४०।

(उत्तान-उच्चपार्श्विल, उच्चस्थितःनियण्णश्चैव ।

यः यथा करोति कालं, स तथा उपपद्यते सिद्धः ।)

व्याख्यात, यह दृष्ट किया जावे पर वेदों, जन्म मंडे और
पदान्त के वेदो भाति किम किम कामन मे जो विदु ह्यमान कीव जन्म
मन्त्रा का मन्त्र कहता है वह सभी कामन मे विद्वान्भावा नामक
विदु कीव पर विद्वान्भावा मे विद्विषय रहता है ॥२४८॥

विद्विषयमे शैवीणा, यथा नि भागो न होइ पौधन्वो ।
एता सन् विद्वान्, उच्यन्ते योगादना भविता ॥२४९॥
(शैवि विद्वानि यथादिदं दृष्टुमिच्छामस्तु भवति षोडश्वयः ।
एता सन् विद्वानास्तदुच्यन्ते योगादना भविता ।)

शैव जो शैवीय जन्म और एक यन्त्र का योगना भाग-यह
विद्वो की उच्यन्ते योगादना उच्यन्ते वर्त है ॥२४९॥

यथादि शैवीणा, यथादि दिनाशुचिना न शैवन्वा ।
एता सन् विद्वान्, यथादि योगादना भविता ॥२५०॥
(यथादि शैवना, यथादिदिनाशुचिना षोडश्वयः ।
एता सन् विद्वान्, यथादि योगादना भविता ।)

यह शैवीय शैवीय जन्म और शैवीय विद्वो की उच्यन्ते योग-
नादना उच्यन्ते वर्त है ॥२५०॥

एता न होइ शैवीणा, यथादि योगादना भविता ।
एता सन् विद्वान्, यथादि योगादना भविता ॥२५१॥
(यथादि शैवना, यथादि योगादना भविता ।
एता सन् विद्वान्, यथादि योगादना भविता ।)

यह शैवीय शैवीय जन्म और शैवीय विद्वो की उच्यन्ते योग-
नादना उच्यन्ते वर्त है ॥२५१॥

(शैवि विद्वानि यथादिदं दृष्टुमिच्छामस्तु भवति षोडश्वयः ।
यथादि शैवना, यथादि योगादना भविता ।)

(यत्र चैकः सिद्धः, तत्र अनन्ताः भवरजोविमुक्ताः ।
अन्योऽन्यं समवगाढाः, स्पृष्टाः लोकान्ताः लोकान्ते)

उस ईपत्प्राग्भारा पृथ्वी पर जहां एक सिद्ध है, वहां जन्म-मरण रूपी भव की रज से सर्वथा विमुक्त अनन्त सिद्ध हैं। लोक (संसार) का अन्त कर देने वाले वे अनन्त सिद्ध लोकान्त अथात् लोक के अग्रभाग पर एक परस्पर एक दूसरे से समवगाढ़ और स्पृष्ट हैं। १२४३ (व)

फुसई अणंते सिद्धे, सच्च पदेसेहिं नियमसो सिद्धा ।
ते वि असंखेज्जगुणा, देस पदेसेहिं जे पुट्ठा । १२४४।
(स्पृशन्ति अनन्तान् सिद्धान् सर्व प्रदेशैः नियमशः सिद्धाः ।
तेऽपि असंख्यात गुणिताः, देशप्रदेशैर्येस्पृष्टाः ।)

नियमतः सिद्ध अपने सर्व आत्म प्रदेशों से अनन्त सिद्धों को स्पर्श करते हैं। इनके अतिरिक्त उनके द्वारा जो सिद्ध उनके दश अर्थात् कतिपय आत्म प्रदेशों से स्पृष्ट हैं वे सर्वात्म प्रदेशों से स्पृष्ट सिद्धों से असंख्यात गुण अधिक हैं। १२४४।

केवलनाणुवउत्ता, जाणंति सच्चभावगुणभावे ।
पासंति सच्चतो खलु, केवलदिट्ठी अणंताहिं । १२४५।
(केवलज्ञानोपयुक्ताः, जानन्ति सर्वभावं गुणभावान् ।
पश्यन्ति सर्वतो खलु, केवलदृष्ट्या अनन्ताभिः ।)

केवल-ज्ञान में उपयुक्त वे लोकालोक के त्रिकालवर्ती भूत, भविष्यत् और वर्तमान सभी भावों और गुणों को जानते तथा अनन्त केवल-दृष्टि द्वारा सब देखते हैं। १२४५।

न वि अत्थि माणुमाणं, तं सोक्खं न वि य सच्च देवाणं ।
त्तं सिद्धाणं सोक्खं, अब्बावाहं उवगताणं । १२४६।

विश्वामित्रं मनुष्याणां, तद् भीष्मं नापि च तत्रै देवानाम् ।
 तद् गिरिवर्यां भीष्मं, अस्मादायं उपगतानाम् ॥

अस्मादायं भीष्म के लिये हुए गिरियों को जो सुख है वह सुख
 अस्मादायं भीष्म के लिये भी मनुष्य को प्राप्त है और न मनुष्य
 देवताओं के लिये गिरियों तक देव को ही ॥२४४॥

सुगन्धं सुहृत्सुभ्यो, मनुष्या विहितं कथं सुखं ।
 तत्रै देवैः सुविभुहं भवेत्तत्रै विश्वामित्रैः ॥२४५॥
 (सुगन्धं-सुहृत्सुभ्यो मनुष्या-विहितं कथं सुखम् ।
 तत्रै देवैः सुविभुहं भवेत्तत्रै देवैः विश्वामित्रैः ॥)

सुगन्ध के अर्थमें वह सुखों के अर्थमें सुख को सुख न कह
 है अस्मादायं सुखों के अर्थ में ही वह गिरियों तक देव सुख सुगन्ध के
 सुख के अर्थमें सुख के अर्थमें सुख को ही सुगन्ध को ही वह
 सुगन्ध के अर्थ में ॥

(यथा नाम कोऽपि म्लेच्छः, नगर गुणान् बहुविधानपि जानन् ।
न शक्यते परिकथयितुं उपमायास्तत्र अभावात् ।)

जिस प्रकार कोई म्लेच्छ (वर्षों तक एक समृद्ध नगर में राजा का अतिथि रहकर पुन अपने म्लेच्छ बन्धुओं के बीच म्लेच्छ देश में जावे तो वह) नगर के बहुत से गुणों अथवा सुखों का भली भांति जानता हुआ भी. उनका कथन करने में असमर्थ ही रहता है, क्यों कि उसके उस म्लेच्छ देश में नगर के गुणों का अथवा सुखों का वर्णन करने के लिये कोई उपमा ही नहीं है । १२४६।

इय सिद्धाणं सोक्खं, अणोवमं नत्थि तस्स उवमंउ ।
किंचि विसेसेणेत्तो, सारिक्खमिणं सुणह वोच्छं । १२५०।
(एवं सिद्धानां सौख्यं, अनुपमं नास्ति तस्य उपमा तु ।
किंचित् विशेषेण इतः, सादृश्यमेतस्य शृणुत वक्ष्यामि ।)

इसी प्रकार सिद्धों का सुख अनुपम है, उसको बताने के लिये समस्त संसार में कोई उपमा है ही नहीं । इस से मिलता जुलता पर कुछ विशेष दृष्टान्त में बताऊंगा, उसे सुनो । १२५०।

जह सव्वकामगुणियं, पुरिसो भोत्तू ण भोयणं कोइ ।
तण्हा छुहाविमुक्को, अच्छेज्ज जहा अमिय तित्तो । १२५१।
(यथा सर्वकामगुणिकं, पुरुषः भुक्त्वा भोजनं कोऽपि ।
तृष्णा-क्षुधाविमुक्तः, तिष्ठेत् यथा अमित तृप्तः ।)

जिस प्रकार कोई पुरुष पुष्टि तुष्टि आदि सब प्रकार के गुणों से सम्पन्न अत्यन्त स्वादु भोजन खाकर तृष्णा तथा क्षुधा से विमुक्त हो पूर्णतः तृप्तावस्था में बैठता है । १२५१।

इय निच्चकालत्तिचा, अतुलं निच्चाणमुवगता सिद्धा ।
सासयमव्वावाहं, चिट्ठंति सुदी सुहं पत्ता । १२५२।

सुं निवृत्तमन्तनाः अतुलं निवर्णमृगणाः मिद्वः ।

नानाममन्ताराणं, निवृत्ति मुच्यतेः तुल्यं प्राप्ताः ।)

यहाँ प्रथम निवर्ण ही प्राण रूप सिद्ध अमृतमन्तना निवृत्त-
कार रूप है, वे सावधान व्यवहार निवृत्त-मूल को प्राण कर परमा-
न्तना के विनाशमान है । १२४८।

नृप वि य मे भवेदा, अवेदना निम्नमा निगंगा य ।

निवर्ण विवृत्तका, अवेदना निम्न एक संघणा । १२४९।

निवर्ण य मे भवेदा, अवेदनाः निर्ममा निगंगाद्य ।

निवर्ण विवृत्तका, अवेदना निम्न एक संघणा ।)

यहाँ यह (विद्वं शब्द में) के अर्थ रहित, वेदना रहित, समस्त
विद्वं निवृत्त, अवेदना में निवृत्तके अर्थों में रहित, निम्न एक ही
संघणा में रहित --- १२४९।

विनिवृत्त मन्तदृश्या, साहं अथा मन्त संघणविमुदका ।

अथवा अर्थ नोक्तं, अन्तर्द्विनि मन्तयं विद्वन् । १२५०।

विनिवृत्तं मन्तदृश्या, साहित्यमन्तयं विमुदकाः ।

अथवा अर्थ नोक्तं, अन्तर्द्विनि सावधानं विद्वान् ।)

यह रूप ही है सावधान रूप ही ही जाति (यान्), अथा, मन्त
के अर्थों में निवृत्त विद्वन् सावधान सावधान मूल ही अमृतमन्तना
रूप ही प्राप्ता है।

मन्त य एव मन्तयित्वा, विनिवृत्त मन्तयित्वा विद्वन् ।

मन्तयित्वा य एव मन्तयित्वा, विनिवृत्त मन्तयित्वा विद्वन् । १२५१।

मन्त य एव मन्तयित्वा, विनिवृत्त मन्तयित्वा विद्वन् ।

मन्तयित्वा य एव मन्तयित्वा, विनिवृत्त मन्तयित्वा विद्वन् ।)

यहाँ यह मन्तयित्वा के अर्थ ही मन्तयित्वा ही ही मन्तयित्वा ही ही
मन्तयित्वा ही ही मन्तयित्वा ही ही मन्तयित्वा ही ही मन्तयित्वा ही ही
मन्तयित्वा ही ही मन्तयित्वा ही ही मन्तयित्वा ही ही मन्तयित्वा ही ही
मन्तयित्वा ही ही मन्तयित्वा ही ही मन्तयित्वा ही ही मन्तयित्वा ही ही

सोडं तित्थोगालिं, जिणवरवेसहस्स वद्धमाणस्स ।
 पणमह सुगइग्गयाणं, सिद्धाणं निद्धितट्ठाणं-।१२५६।
 (श्रुत्वा तीर्थोद्गालिं, जिनवरवृषभास्य वर्द्धमानस्य ।
 प्रणमत सुगतिगतान्, सिद्धान् निष्ठिता थान् ।)

जिनेश्वरों में वृषभ तुल्य वर्द्धमान द्वारा वर्णित तीर्थ प्रवाह
 को सुनकर सुगति-मुक्ति में विराजमान सर्वकाम सिद्ध सिद्धों के
 प्रणाम करो ।१२५६।

भद्दं सव्व जगुज्जोयगस्स, भद्दं जिणस्स वीरस्स ।
 भद्दं सुरासुर नमं सियस्स, भद्दं धुअरयस्य ।१२५७।
 (भद्रं सर्वं जगदुद्योत कस्य, भद्रं जिनस्य वीरस्य ।
 भद्रं सुरासुर नमस्यितस्य, भद्रं धुतरजसः ।)

केवल्यालोक से समग्र संसार को प्रकाशित करने वाले का भद्र
 कल्याण हो, जिनेन्द्र वीर का कल्याण हो, देवासुरों द्वारा वन्दनी
 का कल्याण हो, कर्मरज को नष्ट कर देने वाले का कल्याण
 हो ।१२५७।

गुण गहन भवण सुतरयणं भरित दंसणं विसुद्ध रत्थाणां ।
 संघनगर ! भद्दं ते, अखण्ड चारित्र पागारा ।१२५८।
 (गुण गहन भवन, श्रुतरत्न भरित दर्शन विशुद्ध रथ्याक !
 संघनगर ! भद्रं ते, अखण्ड चारित्र प्राकारः ।)

अमित गुण रूपी भवनों से व्याप्त होने के कारण अति गहन ।
 आचारांगादि अनेक सुखद श्रुतरत्नों से परिपूर्ण ! मिथ्यात्व आवि
 कचरे से रहित विशुद्ध दर्शनों रूपी रथ्याओं वाले ! और अखण्ड
 चारित्र रूपी प्राकार द्वारा सदा सुरक्षित ओ संघ-नगर ! तुम्हारा
 कल्याण हो ।१२५८।

जं उद्धितं सुयाओ, अहव मतीणं य थोव दोसेण ।
 तं च विलुब्ध नाटं, सोद्धियव्वं सुयधरेहिं ।१२५९।

(संस्कृत) धर्मशास्त्र, अथवा मन्व्ये न लोका दोषेण ।

मन्व्ये चित्तवृत्तं शान्ता, मोक्षिकवृत्तं धर्मवृत्तः ॥

मोक्षिके चित्तवृत्तं शान्तं न लोका दोषेण । अथवा अन्वये चित्तवृत्तं शान्तं । अन्वये चित्तवृत्तं शान्तं न लोका दोषेण । अथवा अन्वये चित्तवृत्तं शान्तं । अथवा अन्वये चित्तवृत्तं शान्तं ।

मोक्षिके चित्तवृत्तं शान्तं न लोका दोषेण ।

मोक्षिकवृत्तं शान्तं, अथवा अन्वये चित्तवृत्तं शान्तं ।

मोक्षिकवृत्तं शान्तं, अथवा अन्वये चित्तवृत्तं शान्तं ।

मोक्षिकवृत्तं शान्तं, अथवा अन्वये चित्तवृत्तं शान्तं ।

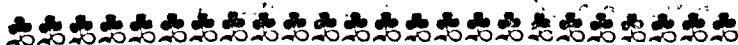
मोक्षिकवृत्तं शान्तं, अथवा अन्वये चित्तवृत्तं शान्तं ।

मोक्षिकवृत्तं शान्तं, अथवा अन्वये चित्तवृत्तं शान्तं ।

मोक्षिकवृत्तं शान्तं, अथवा अन्वये चित्तवृत्तं शान्तं ।

मोक्षिकवृत्तं शान्तं, अथवा अन्वये चित्तवृत्तं शान्तं ।





जम्मणमरणजलोघं दुखयरकिल्लेससोगवीचीयं ।

इय संसार-समुद्दं तरंति चदुरंगणावाए ॥

यह संसार समुद्र जन्म-मरण रूप जल प्रवाह वाला, दुःख, क्लेश और शोक रूप तरंगों वाला है । इसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र्य और सम्यक्तप रूप चतुरंग नाव से मुमुक्षुजन पार करते हैं ।



